DNS-04

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा सामान्य रोगों का उपचार

पाठ्यक्रम अभिकल्प समिति

प्रो. अशोक शर्मा
कुलपति
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय ,
कोटा (राज.)

संयोजक एवं सदस्य

संयोजक
वैद्य नित्यानंद शर्मा
सहायक आचार्य (योग एवं स्वास्थ्य शिक्षा)
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय ,
कोटा (राज.)

सदस्य

डॉ. डी.एन. शर्मा
किच्छा, उत्तराखंड

डॉ. ओ.एन. तिवारी
विलासपुर (छत्तीसगढ़)

डॉ. दुर्गा अरोड़
नई दिल्ली

प्रो. गोविन्द शुक्ला
करवड़ जोधपुर (राज.)

डॉ. जयसिंह यादव
जोधपुर (राज.)

डॉ. राकेश जोशी
उदयपुर (राज.)

डॉ. किरण गुप्ता
जयपुर (राज.)

डॉ. गोविन्द पारीक
एनआईए, जयपुर (राज.)

डॉ. अंजना शर्मा
कोटा (राज.)

संपादक एवं पाठ लेखन

संपादक
वैद्य नित्यानंद शर्मा
BAMS, M.D., Ph.D. (योग एवं आयुर्वेद)
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय ,
कोटा (राज.)

भाषा संपादक
डॉ. अंजना शर्मा
चिकित्साधिकारी ,राज. वैद्य दा.द.जोशी.
जिला आयुर्वेद चिकित्सालय, तलवड़ी,
कोटा (राज.)

पाठ लेखक

डॉ. महेन्द्र कुमार जाजपुरा
योग एवं प्राकृतिक चिकित्सक
निदेशक, राष्ट्रीय स्वास्थ्यवर्धक योग तीर्थ,
जोधपुर (राज.)

वैद्य नित्यानंद शर्मा
आयुर्वेदाचार्य एम.डी.पीएचडी
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय ,
कोटा (राज.)

डॉ. किरण गुप्ता
योग एवं प्राकृतिक चिकित्सक
डाईटिशियन, प्राकृतिक चिकित्सालय,
बापूनगर, जयपुर (राज.)

अकादमिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था

प्रो. अशोक शर्मा
कुलपति
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय ,
कोटा (राज.)

प्रो. लीला राम गुर्जर
निदेशक, अकादमिक
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय ,
कोटा (राज.)

डॉ. शिवकुमार मिश्रा
निदेशक, पाठ्य सामग्री उत्पादन एवं वितरण विभाग
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय ,
कोटा (राज.)

उत्पादन मुद्रण - जनवरी 2018

इस सामग्री के किसी भी अंश की वमखुविवि कोटा की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में मिमियोग्राफी चक्रमुद्रण द्वारा या अन्यत्र पुन: प्रस्तुत कने की अनुमति नहीं है।

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय कोटा

प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा सामान्य रोगों का उपचार

इकाई संख्या	इकाई का नाम	पेज न-
1	पाचन-संस्थान एवं उसके रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा	2-22
2	रक्त परिसंचरण-संस्थान एवं उसके रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा	23-44
3	श्वसन-संस्थान एवं उसके रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा	45-58
4	मूत्र-संस्थान या रीनल प्रणाली एवं उसके रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा	59- 64
5	त्वचा या आच्छदीय संस्थान एवं उसके रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा	65-82
6	प्रजनन संस्थान एवं उसके रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा	83-91
7	तंत्रिका संस्थान एवं उसके रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा)	92-105
8	अस्थि एवं जोड़ संस्थान एवं उसके रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा	106- 118
9	कंकालीय पेशीय संस्थान एवं उसके रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा	119-130
10	लसीका संस्थान एवं उसके रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा	131-143
11	अंत: स्रावी ग्रंथियाँ एवं उसके रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा	144-158
12	संवेदी ज्ञानेन्द्रियाँ एवं उसके रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा	159-177
13	प्राकृतिक चिकित्सा का योग एवं आयुर्वेद से संबंध	178-190
14	विजातीय द्रव्य का सिद्धांत एवं रोग के कारण	191-200
15	रोग निदान (आकृति - मल - मूत्र- पसीना एवं जिव्हा)	201-210

इकाई 1

पाचन-संस्थान एवं उसके रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा

(Digestive system & nature cure for its diseases)

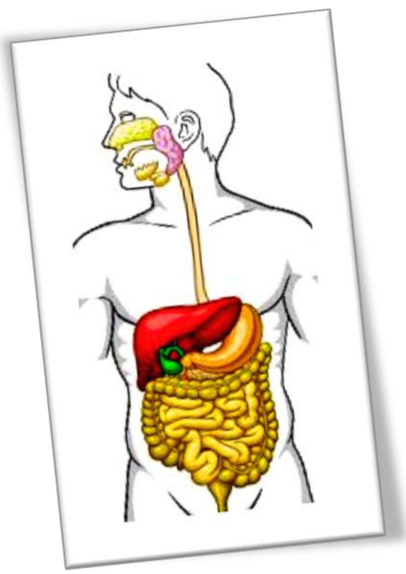

इकाई की रूपरेखा

1.1 उद्देश्य

1.2 प्रस्तावना

1.3 पाचन-संस्थान के रोगों की सूची

1.4 पाचन-संस्थान के प्रमुख रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा

1.5 सारांश

1.6 बोधात्मक प्रश्न

1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ

1.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी-

- पाचन-संस्थान के रोगों की सूची
- पाचन-संस्थान के प्रमुख रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा

1.2 प्रस्तावना

मल जब किसी कारण बड़ी आंत में जमा होकर अपने रास्ते से बाहर नहीं निकलता बल्कि वहीं पड़ा-पड़ा सड़ा करता है तो उसे कब्ज होना कहते है। आंतों में खाद्य पदार्थो का रस चूसने का कार्य अविराम गति से चलता रहता है। कब्ज की अवस्था में आंतें सड़े मल का विष भी चूसकर रक्त में मिला देती है , जिससे रक्त विषाक्त होकर नाना प्रकार के रोगों का कारण बनता है।

1.3 पाचन-संस्थान के रोगों की सूची

क्र.	हिन्दी या संस्कृत नाम	English name	क्र.	हिन्दी या संस्कृत नाम	English name
1.	अम्ल रोग	Acid dyspepsia	28.	स्वरयंत्र की सूजन	Laryngitis
2.	अम्लता	Acidity	29.	अम्ल पित्त, पित्त दोष, यकृत विकार	Liver disease
3.	आन्त्र पुच्छ प्रदाह	Appendicitis	30.	ऑव आना	Mucus
4.	हैजा (विसूचिका)	Cholera	31.	मोटापा (स्थूलता)	Obesity
5.	जीर्ण वृहदान्त्र	Chronic colits	32.	पेट दर्द	Pain in the abdomen
6.	पुराना पेचिश	Colitis	33.	गलनाली की सूजन	Pharyngitis
7.	कब्ज (कोष्ठबद्धता)	Constipation	34.	बवासीर	Piles
8.	मधुमेह	Diabetes	35.	पायरिया	Pyorrhea
9.	दस्त (अतिसार)	Diarrhoea, Loose motion	36.	दुबलापन (कृशता)	Thinness, Emaciation
10.	दँत रोग	Disease of the teeth	37.	टॉन्सिल की सूजन (गलग्रंथि)	Tonsillitis
11.	जलोदर (सूजन)	Dropsy, Oedema	38.	आँतों में घाव	Ulcer
12.	ऊपरी आँत का घाव	Duodenal ulcer	39.	मुख का घाव	Ulcer of the mouth
13.	पेचिश (संग्रहणी), मरोड़	Dysentery	40.	जिह्वा का घाव	Ulcer of the tongue
14.	अजीर्ण (अपच, मंदाग्नि)	Dyspepsia, Indigestion	41.	उल्टी, वमन और मितली	Vomiting
15.	वायु फुल्लता	Flatulent dyspepsia	42.	काँच निकलना	
16.	पित्ताशय की पथरी	Gall bladder stone	43.	बेरीबेरी	
17.	वायु विकार	Gas trouble	44.	पेटूपन (भस्मक) भूख	

				अधिक लगना
18.	पाकस्थली का घाव	Gastric ulcer	45.	प्यास अधिक लगना
19.	पाकस्थली की सूजन	Gastritis	46.	भूख न लगना
20.	मसूड़े का व्रण	Gum boil	47.	प्यास न लगना
21.	पेट से खून गिरना	Haematemesis	48.	मुँह व गले में छाले
22.	आँत उतरना, अंत्रवृद्धि	Hernia	49.	कण्ठमाला
23.	हिचकी	Hiccough	50.	घेंघा
24.	गला बैठना (स्वरभंग)	Hoarseness	51.	तालु में फुँसी व खुश्की
25.	आँतों से खून गिरना	Intestinal haemorrhage	52.	गला बैठना
26.	पेट में कृमि	Intestinal worms	53.	स्वर यंत्र प्रदाह
27.	पीलिया (कामला)	Jaundice	54.	दाँत दर्द

1.4 पाचन-संस्थान के प्रमुख रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा

1. कब्ज (कोष्ठबद्धता) (Constipation)

पाचन संस्थान के सभी रोग अप्राकृतिक आहार-विहार, अनियमित मल-मूत्र त्याग, पूरी नींद न लेने, पानी कम पीने, मानसिक चिन्ता करने, अधिक तली-भुनी चीजें खाने , भूख से अधिक खाने , बिना भूख के खाने, भूख से अधिक खाने, बिना चबाये खाने, उत्तेजक दवाइयों का सेवन करने, नियमित रूप से कोई योगासन-प्राणायाम न करने तथा कभी उपवास न करने से हो जाते है तथा पाचन संस्थान पर मनोविकारों का भी बहुत प्रभाव पड़ता है। मनोविकारों का लगातार बना रहना पाचन संस्थान के किसी न किसी अंग को रोग ग्रस्त बना देता है।

कब्ज सभी रोगों का कारण है। कब्ज को कोष्ठ ांबद्धता, विबंध, मलबंध, मलावरोध, आनाह तथा विष्टांब्धता आदि कई नामों से जानते है। यदि हम पूर्ण स्वस्थ रहना चाहते है तो हमें कब्ज कभी नहीं होने देना चाहिए।

कारण : मल जब किसी कारण बड़ी आंत में जमा होकर अपने रास्ते से बाहर नहीं निकलता बल्कि वहीं पड़ा-पड़ा सड़ा करता है तो उसे कब्ज होना कहते है। आंतों में खाद्य पदार्थो का रस चूसने का कार्य अविराम गति से चलता रहता है। कब्ज की अवस्था में आंतें सड़े मल का विष भी चूसकर रक्त में मिला देती है, जिससे रक्त विषाक्त होकर नाना प्रकार के रोगों का कारण बनता है।

लक्षण : कब्ज के रोगी का पाखाना साफ नहीं होता , हमेशा सुस्ती छाई रहती, पेडू कठोर और पेट भारी रहता, सिर में दर्द रहता , नींद ठीक से नहीं आती , मस्तिष्क खाली-सा जान पड़ता , भूख खुल कर नहीं लगती है तथा शरीर के लगभग सभी रोगों के मूल में कोष्ठ ांबद्धता अवश्य होती है , जिसे दूर करना अतिआवश्यक है। जिससे रोग की तीव्रता कम होकर रोग ठीक हो जाता है।

प्राकृतिक चिकित्सा :

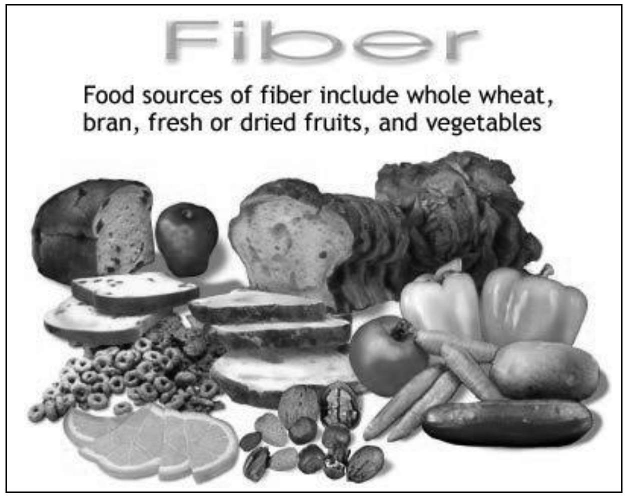

कब्ज को दूर करने के विविध प्रयोग अपनाये और स्वस्थ रहें।

1. कब्ज होने पर बहुधा लोग रेचक दवा लेते है। जो आंतों के लिए अत्यन्त हानिकारक है। इसलिए कब्ज की अवस्था में 8-10 बूंद नींबू रस के साथ गुनगुने पानी के तुरन्त बाद ठंड़े पानी का एनिमा कुछ दिनों तक लिया जाये तो कब्ज दूर हो जायेगी।

2. 10-15 दिनों में एक दिन केवल नींबू-पानी पीकर उपवास करना चाहिए फिर दो दिन तक रसाहार (गाजर और पालक), फिर 10-15 दिनों तक फलाहार करें। प्रतिदिन एनिमा लें। फलाहार के बाद एक वक्त दूध-फल और दूसरे वक्त रोटी कम, सब्जी, दही और सलाद खायें।

3. प्रतिदिन सुबह उषा:पान तथा सोते समय आवश्यकतानुसार शुद्ध जल पीना, भोजन करने के आध घंटा पहले और भोजन के बाद प्यास लगने पर इच्छानुसार गुनगुना पानी पीना, भोजन के साथ बिल्कुल ही न पीना या थोड़ा-सा पीने से कब्ज अति शीघ्र दूर किया जा सकता है।

4. प्रतिदिन नियमित टहलना एक अच्छा व्यायाम है तथा योगासन-प्राणायाम अवश्य करना चाहिए। यदि नित्य सूर्य नमस्कार विधिपूर्वक किया जाये तो कब्ज बहुत जल्दी दूर हो जाती है। पाद हस्तासन और पश्चिमोत्तासन से कब्ज बहुत जल्द दूर हो जाती है।

5. 'बालू' कब्ज की अचूक दवा है। एक चुटकी समुद्री साफ बालू भोजन के बाद दिन में2-3 बार पानी के सहारे निगल लेने से दूसरे ही दिन आंते ढ़ीली पडक़र कुछ ही दिनों में सारा पुराना जमा मल बाहर निकल जाता है। या प्रतिदिन 50 ग्राम गेंहू का साफ चोकर भोजन में मिलाकर खाने से भी कब्ज दूर होती है।

6. प्रात:-सायं शक्ति अनुसार 5-20 मिनट तक कटि स्नान लेना या पेडू पर30 मिनट तक मिट्टी की पट्टी बांधना। पुराने कब्ज में कमर की सूती-ऊनी पट्टी को रात भर लगाकर सोना चाहिए। सप्ताह में1 दिन एप्समसाल्ट बाथ भी लेना चाहिए।

7. प्रतिदिन प्रात:काल 5-10 मिनट नाभि के दायें से बायीं ओर पेट की मालिश करने से कब्ज दूर हो जाती है। नारंगी या पीली बोतल में बनाया हुआ सूर्य-तप्त जल50 ग्राम दिन में 4 बार पीना चाहिए।

2. अजीर्ण (अपच, मंदाग्रि) (Dyspepsia, Indigestion)

कारण : अजीर्ण, बदहजमी, अपच, मन्दाग्नि एवं अग्निमान्द्य सभी एक ही चीज है। यह कब्ज के कारण ही पैदा होता है।

लक्षण : भोजन ठीक से न पचना, खट्टाी डकारें आना, पेट फूलना, उसमें मीठा-मीठा दर्द होना, गले व कलेजे में जलन होना, मुंह में भीतर से पानी आना, जी मचलाना, दिल का तेजी से धडक़ना, घबराहट, दिमागी परेशानी, पाखाना न होना या दस्त लगना एवं भूख न लगना आदि इसके लक्षण है।

प्राकृतिक चिकित्सा : 3 दिनों तक नीबू-पानी पर उपवास करें। फिर2 दिन गाजर, टमाटर, संतरा आदि फलों का रस लें। कुछ दिनों तक अल्पाहार लें, जैसे- सुबह मीठा सेव या दो पके टमाटर, दोपहर में उबली तरकारी और थोड़ा मट्ठाा, 3-4 बजे गाजर, टमाटर या अन्नानास का रस तथा रात में थोड़ी-सी उबली हुई तरकारी लें। भोजन के एक घंटा पहले एक गिलास नीबू-पानी पीवें।

रोज गुनगुने पानी का एनिमा लें। प्रतिदिन योगासन-प्राणायाम करें। धनुरासन और उत्तानपादासन अधिक लाभप्रद है। सप्ताह में एक दिन एप्सम साल्ट बाथ लें। प्रतिदिन दो बार पेट की गरम-ठंडें पानी की तौलिया से 15 मिनट सेंक करें या प्रतिदिन एक बार गरम- ठंडा कटि-स्नान लें। रातभर के लिए पेडू पर मिट्टी की पट्टी रखे या कमर की सूती-ऊनी पट्टी लगाये। सप्ताह में 2 दिन समूचे शरीर की भीगी चादर की लपेट या भाप स्नान लें। नीली बोतल के सूर्यतप्त जल की 4 खुराकें 50 ग्राम की प्रतिदिन पिवें।

3. दस्त (अतिसार) (Diarrhoea, Loose motion)

कारण : भोजन सम्बन्धी नियमों का पालन न करना , ठंड़ लगना तथा शरीर में विजातीय द्रव्य एकत्र होने के फलस्वरूप दस्त लगती है। दस्त का उग्र व पुराना रूप ही संग्रहणी, अतिसार और डायरिया कहा जाता है।

लक्षण : दस्त के साथ कभी-कभी असह्य बदबूदार, श्वास दुर्गन्धयुक्त, पेट में दर्द, उल्टी, सिर दर्द एवं थोड़ा ज्वर भी हो जाता है।

प्राकृतिक चिकित्सा : दस्त को शीघ्र बन्द करने का मतलब शरीर में रोगों को निमंत्रण देकर जीवनी-शक्ति का ह्रास करना है। इसलिए दस्त आरम्भ होते ही दिन में 3-4 बार पेटे पर मिट्टी की पट्टी या पानी की गीली पट्टी का प्रयोग करें। एक दिन का उपवास केवल नीबू-पानी पीकर करें। फिर दही या मठ्ठा , नारियल-पानी, अन्नानास एवं बेल आदि खाद्य पदार्थ लें। दस्त में थोड़ा आराम मिलने पर गुनगुने पानी का एनिमा लें।

दस्त के कारण पेट में दर्द हो तो गरम-ठंड़ी सेंक करें। दस्त जल्दी बन्द करनी हो तो पैरों का गरम स्नान दें। दस्त के साथ यदि उल्टी हो तो वमन कराकर पेट साफ करें तथा नीबू-पानी पीकर पूर्ण उपवास करें। आसमानी बोतल के सूर्यतप्त जल 50-50 ग्राम की 6 खुराकें रोज पीवें।

4. पेचिश (संग्रहणी), मरोड़ (Dysentery)

कारण : कब्ज के कारण बड़ी आंत की दीवारों में जख्म होकर रक्त रिस-रिस कर गिरना ही रक्तामाशय, आंव एवं पेचिस कहलाता है।

लक्षण : शौच साफ न होना, बार-बार शौच जाने की जरूरत पडऩा, हाजत का बना रहना तथा पेट में ऐंठन और दर्द होना पेचिश के प्रधान लक्षण है।

प्राकृतिक चिकित्सा :

इसके इलाज में समय लगता है। इस रोग के लक्षण मालूम पड़ते ही 5 से 10 दिन तक गुनगुने पानी पर उपवास करें। जब तक आंव का गिरना बंद न हो तब तक अन्न को छूना भी नहीं है। रोज गुनगुने पानी का एनिमा लें। सुबह-शाम पेडू पर मिट्टी की पट्टी 30 मिनट तक रखें। पेट में ऐंठन और दर्द की हालत में पेट पर गर्म-ठंडी सेंक दें। रात को सोते समय कमर पर सूती-ऊनी पट्टी बांधें। या पेडू पर भाप देने के बाद सुबह-शाम कटि स्थान लें। प्रतिदिन योगासन-प्राणायाम करें।

उपवास के बाद से लेकर आंव के बिल्कुल साफ हो जाने तक फलों का रस या उबली तरकारियों के रस पर ही रहें और दिन में 2-3 बार 10 ग्राम ईसबगोल आठ-दस घंटे पानी में भिगोकर दी जायें। इसकी चिकनाई से आंतों की जलन में काफी सुधार होगा। उसके बाद धीरे-धीरे मठ्ठा-कल्प शुरू करें। तत्पश्चा **त्** धीरे-धीरे साधारण सात्विक भोजन पर आ जायें जैसे- मठ्ठा , बकरी का दूध, फल, दही, खूब पका केला, पके बेल का गूदा, कच्चा बेल आग में पकाकर, पुराना गुड, बेल की 10-12 पत्तियां, भुना आलू, पुरानी इमली तथा भुना कच्चा केला आदि पेचिश को दूर करने वाले खाद्य पदार्थ जोडऩे चाहिए।

यदि आंव में भी खून जाता हो तो आसमानी रंग की बोतल के सूर्य तप्त जल 50 ग्राम की 4 खुराकें रोज पीयें। नहीं तो हरी+गहरी नीली बोतलों के सूर्य तप्त जल को बराबर मिलाकर उतनी ही खुराक लें।

5. उल्टी, वमन और मितली (Vomiting)

कारण एवं लक्षण : जब खाया हुआ भोजन पाकस्थली से बिना पचे मुख में से वापस बाहर निकल जाता है तो उसे वमन, मितली व उल्टी कहते है। उल्टी को कभी जबर्दस्ती रोकने की कोशिश नहीं करनी चाहिए।

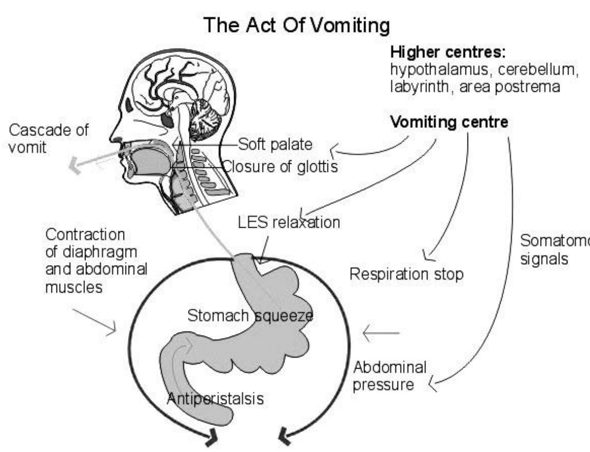

प्राकृतिक चिकित्सा : हल्का गरम पानी पीकर पेट साफ करना चाहिए। ठंड़े पानी में नींबू निचोड़ कर पीयें। साथ ही पेट पर मिट्टी की पट्टी या कपड़े की पट्टी दें।2-3 दिन कटि स्नान लें। रोग की बढ़ी हुई दशा में एक दिन का उपवास केवल नींबू-पानी पीकर करें तथा पेट पर2-3 मिनट भाप देकर कमर में सूती-ऊनी पट्टी बांधें।

6. जीर्ण वृहदान्त्र शोथ (CHRONIC COLITS)

कारण : रहन-सहन और खान-पान के स्वास्थ्य सम्बन्धी नियमों को तोडऩे तथा रेचक दवाओं का परिणाम ही पेट में ऐसे भयानक रोग पैदा होते है।

लक्षण : यह कब्ज व पेचिस का ही विकराल रूप है। जो बड़ी आंत की श्लेष्मिक झिल्ली में प्रदाह् सूजन, जलन होकर घाव बन जाते है। जिसमें से श्लेष्मिक झिल्ली के साथ रक्त आने लगता है। आंतों में मल सडक़र रक्त दूषित होने के कारण अनेक भयानक चर्म रोग, श्वेत कुष्ठ, दाद, खुजली, उच्च रक्तचाप, गुर्दे का दर्द, हृदय रोग, कमर व पीठ दर्द, एपेंडिसाइटिस एवं नेत्र रोग आदि की उत्पति होती है।

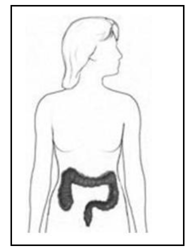

जीर्ण वृहदान्त्र शोथ की तीन श्रेणियां है-

म्यूकस कोलाइटिस- इसमें कष्ठदायक कब्ज, उदर में बैचेनी, सख्त मरोड़ के साथ गुदा मार्ग से श्लेष्मा वृहदान्त्र में स्थित मल को पतला करके बाहर करती है। तभी वृहदान्त्र की पीड़ा व दर्द दूर होता है।

केटेरल कोलाइटिस- वृहदान्त्र में मलविष के कारण श्लेष्मिक झिल्ली भी विषाक्त हो जाती है, फलस्वरूप अत्यधिक प्रदाह से ज्वर, पेट व पेट के निचले भाग में बहुत तेज दर्द पैदा होता हैं तथा शरीर के विभिन्न स्थानों पर असहनीय पीड़ा वाली छोटी-छोटी फुन्सियां निकल आती है। जो किसी भी दवाओं से ठीक नही होती है। दवाओं का उपयोग करते रहने से यह अल्सरेटिव कोलाइटिस का रूप ले लेती है।

अल्सरेटिव कोलाइटिस- यह टाइफाइड़, ज्वर, क्षय रोग, उपदंश, पेचिश आदि का ही विकराल रूप है। विषाक्त मल, जहरीले म्यूकस और विषाक्त आन्त्रिक एसिड़ के स्पर्श से वृहदान्त्र की झिल्ली में क्षतिग्रस्त होने से मरोड़ के साथ पतले खूनी दस्त , पीव और म्यूकस इत्यादि निकलते है। गुदा में कभी-कभी ऐंठन , उदर का प्राय: फूला रहना, अनियमित ज्वर एवं अधिक कमजोरी हो जाती है। इस रोग का उपचार न होने पर उदर में कैंसर रोग की उत्पति होती है।

प्राकृतिक चिकित्सा : इस रोगी को दर्द और वायु विकार बहुत सताते है। दर्द से आराम पाने के लिए गरम-ठंड़ा सेंक के बाद गुनगुने नींबू-पानी का एनिमा के बाद एक पाव दही-पानी का एनिमा लें। तेज दर्द होने पर पूरे उदर पर मिट्टी की पट्टी बांधें। प्रतिदिन नीम के पानी के तुरन्त बाद दही-पानी का एनिमा लें। भोजन में जौ-पानी, हरी सब्जी का जूस या फल जूस दें। रात को साते समय शक्तिदायक एनिमा लें। क्षमतानुसार 2-4 दिन नीबू-पानी पर उपवास व विश्राम करें।

वायु विकार होने पर पेडू का गरम-ठंड़ा सेंक देकर सूती-ऊनी पट्टी की लपेट करें और बाद में थोड़ी-सा मठ्ठापीयें तथा दिन में एक बार अदरक व लहसून का सूप पीयें तथा करेला व परवल आदि की सब्जी दें न कि लौकी या पालक का साग।

5 से 10 दिन तक गुनगुने पानी पर उपवास करें। इसके बाद सुधार होने तक अन्न को त्यागें और सब्जी या फल-जूस (गाजर, कच्चा पपीता, सफेद पेठा, किशमिश, खीरा, लौकी, पत्ता गोभी, पालक, अन्नानास, नाशपाती, सेब, सन्तरा, शलजम इत्यादि) दिन में 3-4 बार लेते रहें। दिन में 2-3 बार 10 ग्राम इसबगोल आठ-दस घंटे पानी में भिगोकर दी जायें। इसकी चिकनाई से आंतों की जलन में काफी सुधार होगा। फिर मठ्ठा-कल्प शुरू करें। तत्पश्चात् बहुत अच्छी तरह सुधार हो जाने के बाद धीरे-धीरे साधारण सात्विक भोजन पर आ जायें जैसे- अंकुरित अनाज, मठ्ठा, बकरी का दूध, मुलायम सलाद व फल, दही, खूब पका केला, कच्चा बेल आग में पकाकर, बेल की 10-12 पत्तियां, पपीता तथा भुना कच्चा केला आदि पेचिश को दूर करने वाले खाद्य पदार्थ जोडऩे चाहिए।

उषा:पान 2-4 गिलास गुनगुना नींबू-पानी पीकर टहले तथा ताड़ासन, उत्तानपादासन, हस्तासन, शलभासन, भुजंगासन, सर्वांगासन, मत्स्यासन, पवन मुक्तासन, वज्रासन, सुप्त वज्रासन, पश्चिमोत्तासन अर्ध-चक्रासन, धनुरासन, योगमुद्रा एवं पवनमुक्तासन आदि करें। 3-4 बजे खाली पेट बैठकर जालन्धर व उड्डियान बन्ध लगायें। खाली पेट शरीर की मालिश करायें। तत्पश्चात पेडू पर गर्म-ठंड़ा सेंक लेकर गुनगुने पानी का कटिस्नान लें।

हरी बोतल का सूर्यतप्त पानी प्रात: 100-200 ग्राम तक पीना शौच आने में लाभकारी है। नीली बोतल का सूर्यतप्त पानी नास्ता या भोजन से आधा घण्टे पूर्व 50 ग्राम की मात्रा में लें और पीली बोतल का सूर्यतप्त पानी भोजन के 15-20 मिनट बाद 50 ग्राम की मात्रा में लें।

7. जलोदर (DROPSY)

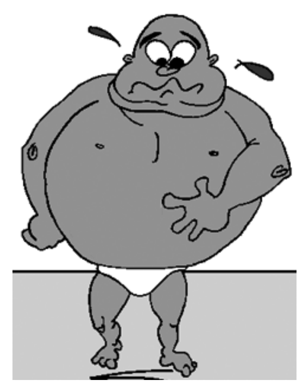

कारण एवं लक्षण : इस रोग का मूल कारण अजीर्ण ही है। यकृत , पित्ताशय, गुर्दे और दिल कमजोर हो जाने के कारण अपना अपना काम ठीक नहीं कर पाते जिसके फलस्वरूप रक्त बनने की गति धीमी हो जाती है और समूचे शरीर या शरीर के किसी अंग विशेष का रक्त विजातीय द्रव्य के कारण पिघल कर पानी हो जाता है। इसका रोगी साधारण जल भी नहीं पचा पाता तथा शरीर के मल का निष्कासन गुदा, मूत्र, श्वास तथा पसीने द्वारा न होने के कारण विष बढ़ जाता और पेट में काफी पानी जमा होकर पेट फूल जाता है। जिससे रोगी का मुंह, पैरों और हाथों पर काफी सूजन आ जाती है। तब अंगुली से किसी जगह पर दबाने पर गड्ढा पड़ जाता है। अक्सर इस अवस्था में जल उदर में जमा होने से इसे जलोदर या शोथ कहते है।

प्राकृतिक चिकित्सा : जलोदर के इलाज में ऐसा पका भोजन और पेय दें, जिससे विकारों के साथ पेशाब आयें तथा पाचन-शक्ति को बिल्कुल काम न करना पड़े। इस हेतु दही का पानी , मखनिया दूध, मक्खन उतरा ताजा मठ्ठातथा रसदार फलों के रस के अलावा और कुछ भी नहीं देना चाहिए। यदि रोगी कमजोर नहीं है तो उसे 1-2 दिन का उपवास करना चाहिए। जहां सूजन हो वहां रोज 1-2 बार मिट्टी की पट्टी

लगायें। प्रतिदिन सुबह-शाम गुनगुने पानी का एनिमा लें। नारंगी रंग की बोतल के सूर्यतप्त जल 50 ग्राम की 6 खुराकें रोज पीयें।

8. पेट का दर्द (ULCER)

कारण : शरीर में अपशिष्टं विषों का स्नायुओं पर अनावश्यक दबाव के कारण कहीं भी प्रदाह, सूजन, जलन एवं दर्द का होना लाल झंड़ी के समान चेतावनी है कि उस भाग में कोई गड़बड़ी है। ऐसा होते ही खाना बंद कर उचित उपचार द्वारा शरीर को पुन: निर्मल बनाओं। अन्यथा सर्वप्रथम कब्ज का शिकार बनना पड़ता हैं।

लक्षण : पेट में निम्न कारणों से दर्द होता है - पेडू में बहुत दिनों तक विकार एकत्र रहने, पेट में उत्तेजक पदार्थ के पहुँचने, पाकस्थली व आंतों में गैस भर जाने, सूजन व घाव हो जाने और अन्न नाली की भीतरी झिल्ली में जलन और प्रदाह होने से। विभिन्न अंगों में घाव के कारण दर्द जैसे- आमाशय में दर्द, वायु विकार से दर्द हैं।

प्राकृतिक चिकित्सा : प्राकृतिक उपचारों द्वारा दर्द के स्थान की अनावश्यक गर्मी को दूर करके रक्त संचालन को तीव्र कर दीजिये तो दर्द छूमन्तर हो जायेगा। मामूली दर्द तो गर्म-ठंड़ी सेंक या सूती-ऊनी पट्टियों के प्रयोग से ही दूर हो जाती है। परन्तु तेज दर्द होने पर समूचे शरीर या अंग विशेष का भाप स्नान, मिट्टी लेप, गीली चादर लपेट, गरम-ठंड़ा कटि स्नान, उपवास या रसाहार एवं थोड़ा मधु मिला गुनगुने पानी का एनिमा आदि उपचार देना पड़ता है। सप्ताह में दो बार एप्सम साल्ट बाथ लें। रात भर के लिए कमर की सूती-ऊनी पट्टी बांधें। नींबू-पानी की मात्रा बढ़ायें। नमक खाना एकदम बन्द कर दें। अपने भोजन में दूध, मिट्ठा फल एवं शाक-तरकारियों का रस या सूप लें।

पेट के सभी प्रकार के दर्द में गहरी नीली बोतल के सूर्य तप्त जल 50 ग्राम की 6 खुराकें रोज पीयें।

9. बवासीर (PILES)

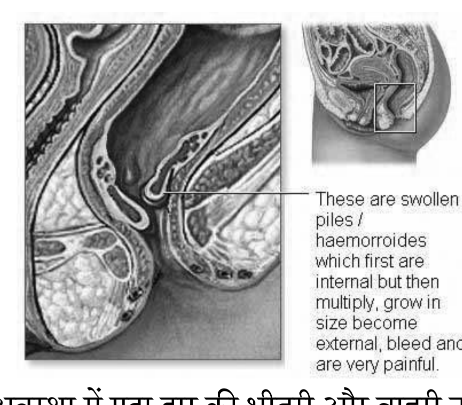

परिचय : इसकी आरम्भिक अवस्था में गुदा द्वार की भीतरी और बाहरी नसों में खुजली और जलन मालूम होती है। उस जगह बिना मुंह के फोड़े की सी छोटी-छोटी गांठे निकली होती है। जो बढक़र बड़ी

हो जाती है। जिनको मस्से या बादी बवासीर के नाम से पहचानते है। ये जब फट जाती है तो उनसे रक्त निकलने लगता है तो खूनी बवासीर कहलाती है।

कारण व लक्षण : यह कोई रोग नहीं , रोग का लक्षण है। यकृत की खराबी , उदर-विकार, रक्त-विकार एवं कब्ज के कारण आंतों में मल के सडऩे से पेट की गर्मी बढ़ जाती है। जिससे आंतों की झिल्ली कमजोर हो जाती, गुदाप्रदेश में भारीपन का अनुभव होता, मलत्याग में कठिनाई व कष्टं होता है तथा गुदा के पास की नसों में दूषित रक्त इकठ्ठाहो जाता है।

प्राकृतिक चिकित्सा : बवासीर का सटीक इलाज पहले कब्ज को दूर करें और फिर उसे कभी न होने दें। बवासीर के रोगी की कमजोर आंतों को मजबूत करने के उपचार लेना चाहिए। सुबह-शाम ठंड़े पानी में भीगी मिट्टी में नींबू निचोड़ कर कटिप्रदेश व गुप्तेन्द्रिय मार्गो पर लगाकर लंगोट बांधकर टहलें।

प्रतिदिन सुबह-शाम 10-15 मिनट मस्सों पर भाप देने के बाद कटि स्नान लें। प्रतिदिन दो बार गुनगुने नींबू-पानी का, उसके बाद ठंड़े पानी का एनिमा लेना चाहिए। रात को सोते समय शक्तिदायक एनिमा लें। इससे बड़ी आंत के पर्दे को ठंडक़ पहुँचेगी और मल ढ़ीला पड़ जायेगा। गरम-ठंड़ा कटिस्नान लेकर घर्षन स्नान करें।

तीन से पांच दिनों का नींबू-पानी पर उपवास कर आहार में रसदार फलों का रस और तरकारी का सूप ही अधिक मात्रा में लें। उपचारों से जब मल ढ़ीला आने लगे तो रोगी के आहार में गेहूं का दलिया , चोकर समेत आटे की रोटी , पालक, बथुआ, तोरई, परवल, मूली, पत्तागोभी, हरा पपीता आदि हरी सब्जियां , पका पपीता, पका बेल, पका केला, खरबूजा, सेब, नाशपाती, दूध, किशमिश, मुनक्का, आलू बुखारा, अंजीर तथा पका-कच्चा नारियल आदि। दालें और उत्तेजक खाद्य पदार्थ एकदम त्याग दें। कुछ दिनों तक प्रत्येक भोजन के साथ 2 ग्राम ईसबगोल की भूसी 8 घंटे तक पानी में भिगो कर उपयोग करना चाहिए। खूनी बवासीर में हरी और वादी बवासरी में नारंगी रंग की बोतल के सूर्य तप्त जल50 ग्राम की 4 खुराक लें।

10. पेट में कृमि (WORMS IN ABDOMEN)

रींग वर्म टेप वर्म हूक वर्म पीन वर्म व्हीप वर्म

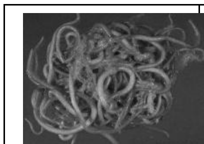	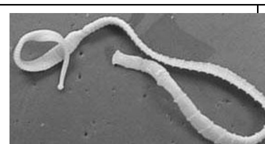			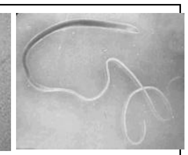
रींग वर्म	**टेप वर्म**	**हूक वर्म**	**पीन वर्म**	**व्हीप वर्म**

कारण व लक्षण : खान-पान की गड़बड़ी और आंतों की सफाई ठीक से न होने पर अक्सर पेट में कीड़े पड़ जाते है जो मल के साथ गुदा द्वार से निकलते है। ये कीड़े चावल की लम्बाई से लेकर दो फीट तक लम्बे होते है और इनकी संख्या पेट में अधिक हो जाती है। शरीर में इसके अलावा एक और विशेष प्रकार का नारू कीड़ा सफेद धागे की शक्ल का छोटा होता है। यह कुएँ और बावडियों के जल में पैदा होता है और उस जल के साथ मनुष्य के पेट में पहुँच कर धीरे-धीरे बढ़ कर लगभग 2-3 फीट लम्बा हो

जाता है और तब शरीर में हाथ, पांव या किसी अन्य अंग को छेद कर अपना मुंह बाहर निकालता है। तब शरीर पर छाला, सूजन होने के साथ ही शरीर की शिराओं में असह्य दर्द होता है।

प्राकृतिक चिकित्सा : पेट में किसी भी प्रकार का कृमि या कीड़ा हो तो प्रतिदिन शहद-पानी के बाद गुनगुने नींबू-पानी या नीम-पानी का एनिमा लें। प्रतिदिन घर्षण स्नान करें। दोनों समय गरम-ठंड़ा कटि-स्नान लें। सप्ताह में दो बाहर एप्सम साल्ट बाथ भी लें। रोज योगासन-प्राणायाम करें।

एक-दो सप्ताह तक केवल फलाहार करें। फिर भोजन में रोटी कम , सब्जी अधिक, कच्ची तरकारी तथा फल लें।

सागरगोटा का बीज या मोर के पंख को जलाकर उस की राख को गुड़ में गोली बनाकर खिलाने से नारू जैसे कीड़े भी भीतर ही नष्टं हो जाता है। पीली 3 + हरी 1 बोतल का सूर्य तप्त जल मिलाकर 50 ग्राम की 6 खुराकें दिन में पीने से पेट के कीड़े नष्ट हो जाते है।

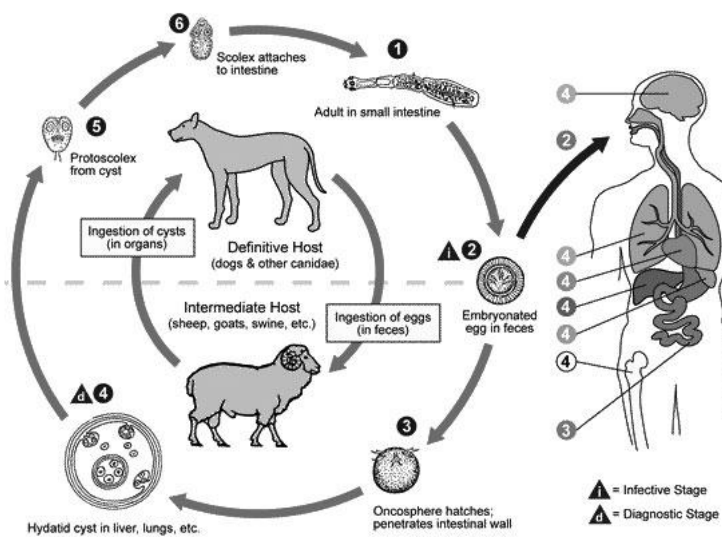

11. आंत उतरना (HERNIA)

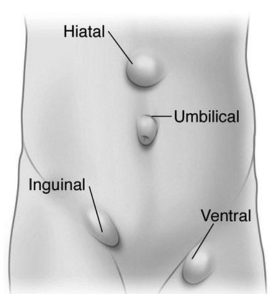

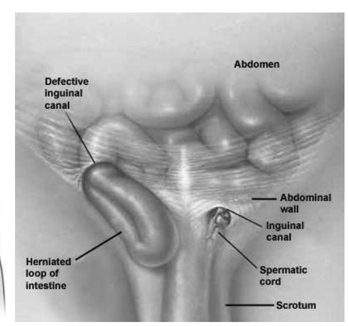

कारण : पेडू में विजातीय पदार्थो का अनावश्यक भार पडने, कब्ज व वायु विकार लगातार बने रहने के फलस्वरूप तलपेट की मांसपेशियाँ कमजोर पड़ जाती है। तब उदरावरण (Peritoneum) निम्न प्रकार के दबाव, धक्के व भार को सहन नहीं कर पाने से यह आंतों के साथ अपने स्थान से नीचे लटक आता हैं, जैसे- कब्ज व वायु विकार होने पर दबाव, मल-मूत्र के वेग को रोकने, कठिन परिश्रम करने, भारी बोझ उठाने, अधिक पैदल चलने, खांसी, छींक, जोर की हंसी,

चीत्कार, कूदने, शरीर को अनावश्यक टेढ़ा-मेढ़ा करने, भोजन सम्बन्धी गड़बड़ी एवं मद्यपान के कारण उदर की पेशियों के फूल जाने से आंत उतरती है।

लक्षण : आंत उतरकर अण्डकोष की संधि में रूककर वहां गांठ जैसी सूजन पैदा करती है। जिसे दबाने पर आंत कों-कों शब्द करती हुआ ऊपर चढ़ती है और छोडऩे पर फिर नीचे उतरकर कोष्ठï को फुला देती है। तब अण्डकोष फूलकर पेडू में भारीपन , असाधारण पीड़ा, बैचेनी और कभी-कभी तो प्राणान्तक कष्ट ï होता है।

प्राकृतिक चिकित्सा : जब आंत उतर आये , तब रोगी को तुरन्त शीर्षासन या सर्वांगासन दीवार के सहारे करें या चित्त लिटाकर नितम्ब को ऊंचा रखते हुए मालिश विशेषज्ञ से आंत को यथास्थान पर बिठावें। बार-बार आंत उतरने के उपचार हेतु मालिश विशेषज्ञ से नियमित मालिश करायें। मालिश के बाद कटि प्रदेश पर मिट्टी की पट्टी 30 मिनट तक लेकर उस भाग पर भाप दें और आराम करें। प्रतिदिन खाली पेट सर्वांगासन, पश्चिमोत्तासन, भुजंगासन, शीर्षासन तथा शलभासन करने चाहिए। सीधे लेटकर घुटनों को मोड़ते हुए पेट से सटाइये फिर पुन: लम्बाई में फैलाइयें। उसके बाद शीतल जल से रीढ़ स्नान देने से उदर की मांसपेशियों को शक्ति प्राप्त होगी और अण्ड़ कोष संकुचित हो जायेगा। शुक्र-ग्रन्थियों पर बर्फ रखने से भी आंत आदि अपने मूल स्थान पर चली जाती है।

1-2 दिन उपवास और विश्राम करने के बाद रोग जाने तक केवल फल , तरकारी एवं मट्ठाही लेवें। कब्ज और वायुविकार तो इस रोग में कभी होने ही न देना चाहिए। उपचार काल में बार-बार उपवास करना चाहिए। प्रतिदिन ठंड़े जल का एनिमा लेना चाहिए। गरम-ठंड़ा कटि स्नान करना चाहिए। सप्ताह में एक बार भाप-स्नान भी लें। रात भर कमर की सूती-ऊनी पट्टी लगायें।

गहरी नीली बोतल के सूर्यतप्त जल 50 ग्राम की 6 खुराक लें।

12. आन्त्र पुच्छ प्रदाह (APPENDIX)

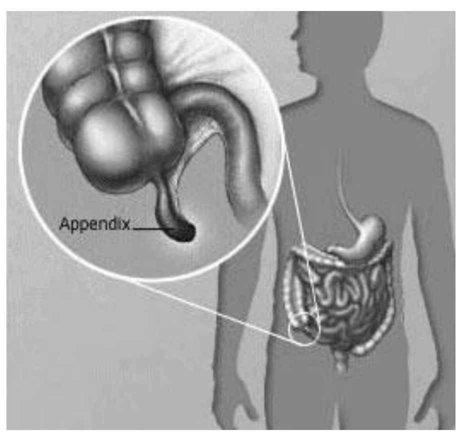

परिचय: पेट के दायीं ओर निचले भाग में छोटी आंत जहां बड़ी आंत से मिलती है, उसके निचले हिस्से पर केंचुए के समान 3 से 9 इंच लम्बी और 1। 4 इंच मोटी आन्त्र पुच्छ स्थित होती है।

कारण व लक्षण : इसका प्रधान कारण पुराना कब्ज है। आंत्र पुच्छ पर कब्ज का प्रभाव पडऩे पर गांठ-सी उभर जाने के कारण पेडू में सूजन और प्रदाह पैदा होने को अपेंडिसाइटिस कहते है। दर्द के साथ ठंड़ज्वर और वमन होने लगता है।

प्राकृतिक चिकित्सा : जब तक पेडू में सूजन और प्रदाह बना रहे कुछ भी न खाये या पीयें अर्था **त्** पूर्ण उपवास और विश्राम करें। अधिक प्यास लगने पर ही पीली और हरी बोतलों का सूर्यतप्त जल बराबर मिलाकर 50 ग्राम की 8 खुराकें पीयें और 100-150 ग्राम गुनगुने पानी का 3-4 बार एनिमा लेने से आन्त्र-पुच्छ पर अनावश्यक एवं अधिक दबाव नहीं पड़ेगा। 3 बार पेडू की गरम-ठंड़ी सेंक के बाद मिट्टी की पट्टी दें या रोगी बैठ सकता हो तो पैरों का गरम स्नान , सुबह कटि-स्नान और शाम को मेहन-स्नान लेवें। उपवास के बाद फलों का जूस , दूध, उबली तरकारी लें। फिर धीरे-धीरे साधारण भोजन पर आ जायें।

13. मधुमेह (DIABETES)

कारण व लक्षण : पाचन संस्थान की अग्राशय ग्रंथि के ठीक ढंग़ से काम न करने पर मधुमेह की उत्पति होती है। इसको प्रमेह, बहुमूत्र, शरीर की दीमक तथा पेशाब में चीनी आना भी कहते है। मेहनत की कमी, कब्ज इस रोग का प्रधान कारण है। शरीर की धमनियां कड़ी पड़ जाती है। मधुमेह पेशाब के आधार पर दो प्रकार का है- बिना चीनी वाला मधुमेह तथा चीनी वाला मधुमेह। यह हाजमें की खराबी के कारण अनेक रोगों का साथी है , जैसे- कब्ज , मन्दाग्नि, बेहद भूख-प्यास , सिर-दर्द, चक्कर, नेत्र विकार , त्वचा की शुष्कता, शक्तिहीनता, मसूढ़ों का फूलना, दांत के रोग, मुंह से दुर्गन्ध का निकलना आदि मुख्य है। वजन में कमी, कमजोरी तथा तापक्रम में वृद्धि से क्लोम , प्लीहा, यकृत एवं गुर्दे अपना काम ठीक से नहीं कर पाते है। इसके बढ़ जाने पर अधिक भयानक शारीरिक विकार , जैसे- समस्त शरीर में खुजली , जल्दी अच्छे न होने वाले फोड़े , रोमकूपों का बन्द हो जाना , फेफड़ों के विकार , राजयक्ष्मा, स्नायुविकार, अंधापन, मूत्रद्वार में जलन, मूच्र्छा तथा एक्जिमा हो जाते है।

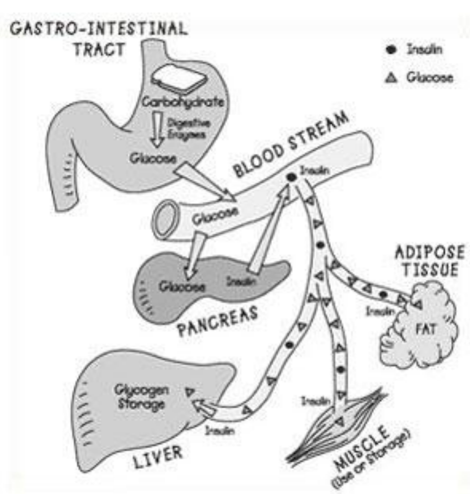

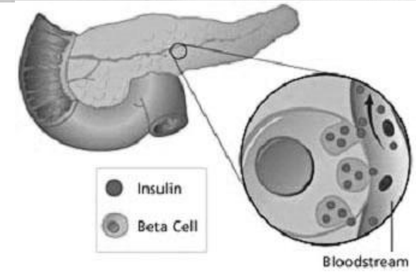

रोगी को अधिक पेशाब आने लगता है। पेशाब साफ , हल्का, पीलापन लिये हुए गाजयुक्त होता है। उसे बोतल में रखने से नीचे कोई चीज नहीं जमती। परन्तु अल्प मात्रा में चीनी होने से मीठी या बू आती है। चिन्ता, क्रोध तथा भय आदि मानसिक विकारों से रोग में वृद्धि हो जाती है।

प्राकृतिक चिकित्सा : 2-3 दिन का उपवास , विश्राम और एनिमा लें। फिर -कल्प करें तथा अन्न का सर्वथा त्याग कर केवल उबली और कच्ची हरी शाक तरकारियों का सूप या रस तथा सन्तरे , मौसम्बी, टमाटर, पपीता, अन्नानास, अंगूर, आम, जामुन, करेला, अनार, अमरूद, नाशपाती एवं सेब आदि फलों का रस पीयें। फिर साधारण भोजन में अतिरिक्त जोड़े- चोकरदार गेहूं या जौ और चना के आटे की रोटी , अंकुरित मूंग-चना , परवल, खीरा, ककड़ी, पालक, बथुआ, चौलाई, सहजन, तोरई, मूली, पत्तागोभी, धनियां, मेथी, पोदीना, सेम, प्याज, गांठ गोभी, लौकी, नेनुआ, फालसा, तरबूज, पका आम एवं मक्खन निकला मट्ठाआदि। प्यास लगने पर नीबू-पानी पीना चाहिए। ताजे आंवले के रस में शुद्ध शहद चाटना , जामुन की गुठली का चूर्ण 2 ग्राम खाना।

मिट्टी की पट्टी के बाद समूचे शरीर की मालिश व रीढ़ स्नान करें या ठंड़ा कटि-स्नान लें। शाम को मेहन-स्नान, पेडू पर सेंक देकर रात भर कमर की सूती-ऊनी पट्टी बांधें। नारंगी 2 तथा आसमानी 1 रंग की बोतल का सूर्यतप्त जल मिलाकर 50 ग्राम की 4 खुराकें प्रतिदिन लें।

14. पित्ताशय की पथरी GALL BLADDER STONE)

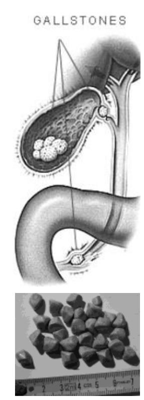

परिचय : पित्ताशय नाशपाती की शक्ल का एक अंग है जो यकृत के दाहिने भाग के नीचे रहता है। इसमें अस्वाभाविक दशा में पथरी बनती है। जिसका दर्द एक कठिन और भयानक रोग है।

कारण व लक्षण : अप्राकृतिक आहार-विहार, अधिक चिकनाई युक्त आहार, दवाओं का अधिक सेवन तथा मेहनत की कमी आदि के कारण यकृत रोगग्रस्त होने से विकार युक्त पित्त का निर्माण होकर पित्ताशय में पहुँचता है। जिससे उसकी श्लेष्मिक कला में सूजन और प्रदाह की गर्मी से दूषित पित्त सूख कर पत्थर-सा कठोर हो जाता है जिसे पथरी कहते है। पथरी बनने पर दायीं पसलियों के नीचे नाभि तक मीठा-मीठा दर्द या बोझ सा मालूम होता है। कब्ज, भूख न लगना, भोजन से अरूचि, पीलिया रोग तथा जाड़ा-बुखार आदि लक्षण दृष्टिंगोचर होते है। जब स्वभाविक पथरी पित्ताशय से बाहर निकलने की कोशिश करती है तो दर्द, ठंड़ और वमन होने लगता है। पर चिंता की कोई बात नहीं है।

प्राकृतिक चिकित्सा : दर्द की अवस्था में रोगी को 30 मिनट गरम स्नान दें। कमजोर व उच्च रक्तचाप के रोगी यह उपचार न लेकर गरम पानी के मोटे कपड़े से वक्ष व उदर प्रदेश की सेंक करें। गुनगुने पानी का एनिमा, गरम कटि-स्नान दें। रोज उषा:पान और रात को सोते समय नींबू-पानी पीयें। 2-4 दिनों का नींबू-पानी पर उपवास करें। इसके बाद रसाहार करें। तत्पश्चा **त्** फलाहार, तरबूज, खीरा, रामदाना, किशमिश, मखाना, अंकुरीत मूंग, धारोष्ण दूध, मक्खन एवं मट्ठाआदि लें।

15. अम्लपित्त और पित्त की कमी (LIVER DISEASE)

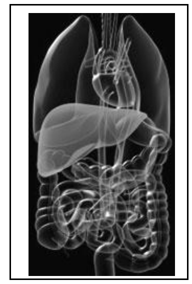

परिचय : यकृत शरीर की सबसे बड़ी रस-वाहिका ग्रन्थि है। इससे निकला पित्त पित्ताशय में जमा होता रहता है। यह पेट की दाहिनी और वक्ष-उदर-मध्य पेशी के निचले भाग में स्थित होकर पित्त द्वारा शरीर की पाचन, अभिशोषण तथा मल विसर्जन आदि आवश्यक क्रियाओं का संचालन करता है। पित्त जबर्दस्त पाचक रस होते हुए भी एक भयंकर क्षारमय विष है।

कारण व लक्षण : यकृत स्वस्थ होने पर शरीर में पित्त की उत्पत्ति पूरी मात्रा में करता है। जिससे भूख खुलकर लगती , पाचन-क्रिया समय पर अच्छी होती तथा शरीर का रक्त स्वस्थ और शुद्ध रहता है, जिसके परिणामस्वरूप मनुष्य पूर्णरूप से स्वस्थ रहता है। इसके विपरीत यदि रक्त में विष की मात्रा यकृत के पित्त की शक्ति से अधिक हुई तो विष यकृत में भर जायेगा। जिससे वह रूग्ण हो जायेगा। तब मनुष्य का यकृत अस्वस्थ होने से पित्त की उत्पत्ति पूरी नहीं होने पर रक्त विषाक्त , मनोविकारी, सिर दर्द, छाती में जलन , पित्त विकार, मितली और वमन आदि अनेकानेक रोगों से ग्रसित रहता है। इसके अलावा जब उत्सर्जी अंग अपना काम पूरा-पूरा नहीं करते तो उनके काम का भार भी यकृत पर होता हैं तथा जब हम खान-पान, रहन-सहन के नियमों का पालन नहीं करते, यौगिक क्रियायें नहीं करते, दवाओं और मादक द्रव्यों का सेवन करते है तो अनावश्यक यकृत का काम बढ़ जाता है। जिससे उसकी कार्य क्षमता में कमी आती है।

प्राकृतिक चिकित्सा : पित्त दोष एवं यकृत विकार और उससे सम्बन्धित सभी रोगों का उपचार सम्भव है। 2-3 दिनों का नीबू-पानी पर उपवास और पेडू पर मिट्टी की पट्टी रखने के बाद एनिमा। 2-3 दिनों तक रसाहार। फिर एक सप्ताह तक फलाहार।

यकृत के स्थान पर मालिश तथा बारी-बारी से गरम-ठंड़ी सेंक या स्थानीय भाप-स्नान। सप्ताह में एक बार एप्सम साल्ट बाथ। रोज टहलें, पश्चिमोत्तानासन और भुजंगासन आदि योगासन-प्राणायाम करें।

आहार में ताजा फल, सलाद, उबली हुई तरकारियां, मठ्ठा, दही, शहद आदि अधिक मात्रा में लेना। पीली बोतल के सूर्य तप्त जल 50 ग्राम की 6 खुराक लें।

16. पीलिया (JAUNDICE)

कारण व लक्षण : जब उत्सर्जी अंग अपना काम पूरा-पूरा नहीं करते तो उनके काम का अतिरिक्त भार यकृत पर पड़ता है। तभी भोजन में प्रोटीन, शर्करा युक्त और स्निग्ध पदार्थो की अधिकता होने की वजह से यकृत अस्वस्थ हो जाता है। यकृत और पित्ताशय की श्लैष्मिक कला में सूजन आ जाती है , श्लेष्मा के अधिक स्राव से पित्त के प्रवाह में रूकावट पड़ती है। फलत: पित्ताशय से छोटी आंत में पित्त प्रवाहित नहीं हो पाता तथा यकृत पित्त से भरकर फूल जाता है। तब यकृत से पित्त छोटी आंत की बजाय सीधा रक्त में मिलने से रक्त संचालन-प्रणाली द्वारा वह सारे शरीर में फैल कर रोगी की त्वचा , नाखून, आंखे और पेशाब आदि सब पर पित्त का हानिकारक प्रभाव पड़ता हैं तथा बदहजमी , खुजली, ज्वर, मितली, वमन, मुंह का स्वाद कड़वा, बेचैनी एवं चिड़चिड़ापन के भी लक्षण प्रकट होते है। जिसे पीलिया रोग कहते है।

यही नहीं पीलिया के लिए अन्य कारण भी जिम्मेदार हैं , जैसे- पित्ताशय या पित्तवाहक नली में पथरी-फोड़ा का होना, पागल कुत्ता तथा सांप आदि का काटना, सीसा या पारा युक्त दवाओं के विष से रक्त दोष के कारण पित्त प्रणाली में बांधा , मलेरिया, टायफायट, भय, क्रोध आदि मानसिक उत्तेजना के कारण यकृत, प्लीहा और पित्ताशय सूजकर पीलिया की सृष्टिं होती है।

प्राकृतिक चिकित्सा : पूर्ण विश्राम के साथ लगभग सप्ताह भर तक संतरा या नीबू-पानी पर उपवास करना चाहिए। फिर गन्ना, मूली, नींबू आदि मौसमी रसदार फल सब्जी का जूस , दही-मठ्ठालें। प्रतिदिन सुबह-शाम एनिमा लें। दोनो हालतों में लेना अत्यन्त आवश्यक है। तत्पश्चा **त्** रोटी कम, शाक तरकारियां धीरे-धीरे शुरू करें।

प्रतिदिन गर्म पानी से स्पंज लें या सप्ताह में एक बार गुनगुने पानी से स्नान करें। प्रतिदिन हल्का योगासन-प्राणायाम करें। यकृत की सूजन दूर करने के लिए उस स्थान पर रोज10-15 मिनट तक गरम-ठंड़ी सेंक दें। खुजली होने पर गिरी के तेल में नींबू का रस फेंट कर लगायें। गरम कटि स्नान, पैरों का गर्म-स्नान एवं भाप स्नान सप्ताह में दो बार लें। उपवास व रसाहार की अवधि में रात को कमर की सूती-ऊनी पट्टी बांधें। हल्की नीली बोतल के सूर्य तप्त जल 50 ग्राम की 6 खुराक लें।

17. दुबलापन (कृश्ता) (THINNESS)

परिचय : शरीर की आयु और लम्बाई के अनुसार वजन का कम होना दुबलापन या कृश्ता कहलाता है। इसके दो प्रकार हैं-

1. बचपन से दुबलापन। 2. किसी रोग के कारण दुबलापन।

कारण व लक्षण : वैसे मुख्य कारण गले में थाइराइड़ ग्रंथि के पास स्थित गिल्टियां जिस मनुष्य में जितनी ही दुर्बल और छोटी होगी, वह उतना ही कमजोर और पतला बना रहेगा और इसके ठीक विपरीत गिल्टियां स्वस्थ और मोटी होने पर वह मनुष्य उतना ही सबल और मोटा होगा।

प्राकृतिक चिकित्सा : इन गिल्टियों को स्वस्थ और मोटी बनाने के लिए आयोडीन वाले ताजा खाद्य-पदार्थो जैसे- सिंगाड़ा , कमलगट्ट, अन्नानास, ककड़ी, गाजर, आलू, केला, नाशपाती और गोभी आदि का अधिकाधिक उपयोग करना चाहिए। कम मिर्च-मसाला खायें। छिलका समेत उड़द की दाल , चना, आलु, दूध, घी, तेल आदि मोटापा बढ़ाने वाली वस्तुयें है। इनसे शरीर में अधिक चर्बी इकट्ठाहोकर स्वास्थ्य के लिए खतरा पैदा करती है। ऐसे चर्बी बढ़ जाने पर मालिश , योगासन-प्राणायाम के साथ प्राकृतिक जीवन यापन करने पर विजातीय चर्बी शरीर से निकलती रहेगी तथा शरीर के सभी अवयव अपना कार्य सुचारू रूप से करते हुए शरीर को हल्का-फुल्का, सुडौल, सुन्दर और स्वस्थ बनाये रखेंगे। प्रतिदिन पर्याप्त मात्रा में निद्रा-सुख का न मिलना, चिन्ता भी शरीर को मोटा होने में बाधक है। जो मनुष्य चिन्ताओं के वशीभूत है वे कभी मोटे नहीं हो सकते।

दुबले लोगों को स्वस्थ व मोटा बनने के लिए पूरे प्रयास के साथ अपनी पाचन-शक्ति को तीव्र और सशक्त बनाना होगा। इस हेतु 1-2 सप्ताह केवल फल पर रहें। फलों के साथ दिन भर में 50-100 ग्राम तक चोकर खाकर एवं एनिमा लेकर अपनी कब्ज को दूर करें। यह भिगोया हुआ चोकर मीठे फलों के जूस या पपीता जैसे गुदेदार फलों के साथ लेना चाहिए। ऐसा करने पर भूख बढ़ जायेगी तथा वजन बढऩा शुरू हो जायेगा।

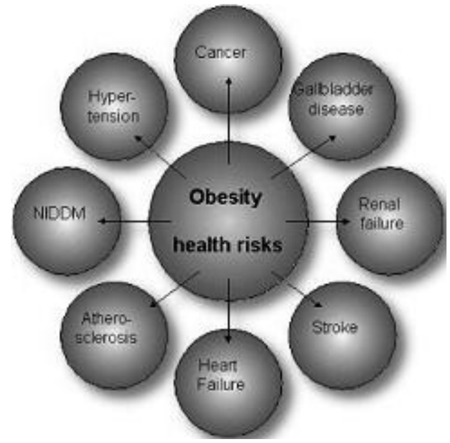

श्वेतसार खाद्य जैसे- चोकर आटा , कण समेत चावल, मीठे फल, किशमिश, मुनक्का, अंजीर, खजूर एवं सभी चिकनाइयां वजन बढ़ाने वाली है। वजन बढ़ाने के लिए मांस का सर्वथा त्याग कर देना चाहिए। अंकुरित गेहूं की दलिया वजन बढ़ाने के लिए बड़ी उपयोगी है। अंकुरित गेहूं को सिलपर पीसकर दूध में या सादा ही पकाकर खाया जा सकता है। पानी भी वजन बढ़ाने में उपयोगी है। उषा:पान, सोते समय तथा भोजन के दो घंटे बाद या आधा घंटे पहले थोड़ा-थोड़ा पानी पीना चाहिए। इसके अलावा खुली हवा टहलना , योगासन-प्राणायाम करना भी वजन बढ़ाने में सहायक है।

दूध-कल्प से भी वजन बढ़ता है। दूध-कल्प किसी विशेषज्ञ की देखरेख में करने से वजन बढ़ाने के साथ शरीर के कई रोगों की भी सफल चिकित्सा भी हो जाती है। इस प्रकार आसानी से मन चाहा वजन बढ़ाया जा सकता है।

18. मोटापा (OBESITY)

कारण : रहन-सहन, आलस्यमय जीवन, परिश्रम न करना, शरीर में क्षार की कमी का होना , अधिक सोना, अधिक खाना तथा पाचन क्रिया असंतुलित होने के कारण शरीर का मोटा हो जाना स्वभाविक है। इस प्रकार अप्राकृतिक रूप से बढ़ा मोटापा बड़ा ही कष्ट ïदायक होता है।

लक्षण : शरीर में अनावश्यक चर्बी जमा होने, थायराइड़ व पिट्यूटरी ग्रन्थि का असन्तुलित होने से शरीर के अवयवों की क्रिया में बाधा पड़ती है। शरीर का अपशिष्ट ï रक्त व चर्बी में सड़ता रहता है। जिससे कब्ज , मधुमेह, उच्च रक्त-चाप, हृदय-रोग, मिरगी, चर्म-रोग एवं सभी संस्थानों को बीमारियां सताती रहती हैं और मोटी स्त्रियां प्राय: बन्ध्या होती है। क्योंकि उनकी बच्चे-दानी चर्बी से भर जाती है। अधिकांश मोटे लोगों को अपना जीवन बोझिल और निरानन्दमय प्रतीत होता है।

प्राकृतिक चिकित्सा : जो लोग क्षारयुक्त भोजन और व्यायाम-योगासन-प्राणायाम करने के आदी है , वे मोटापा से बचे रहते है। मोटे लोगों के रोग और मोटापा थोड़ा मुश्किल से जाता है। मोटापा धीरे-धीरे घटाना चाहिए। चावल, दूध, घी, दही, बासी भोजन, चना, दाल, मिर्च-मसालों, तेल, चाय, दूध, दही, मक्खन तथा आम आदि मोटापा बढ़ाने के साथ वजन और रोग बढ़ाते है। इसलिए मोटे लोगों को इनका सर्वथा त्याग कर देना चाहिए, साथ ही नाश्ते का भी।

मोटे आदमी बार-बार एक-एक दिन के उपवास नींबू-पानी-शहद पर करें तथा पेडू पर मिट्टी पट्टी के बाद एनिमा और सप्ताह में दो बार एप्सम साल्ट बाथ , सारे बदन की गीली पट्टी एवं भाप स्नान करके पसीना निकालने से मोटापा बहुत जल्दी दूर हो जाता है। प्रतिदिन मेहन या कटि-स्नान एवं धूप स्नान लें।
शाम-सुबह नियमपूर्वक एवं क्षमतानुसार टहलें, योगासन-प्राणायाम करें और प्रतिदिन मालिश करावें। सुबह उठते ही उषा:पान, हल्का व्यायाम कर शौचादि से निवृत होवें। सोते समय गुनगुना पानी में नींबू-शहद मिलाकर पीयें। शहद-पानी, शहद-रोटी, फलों का जूस, चिकनाई रहित दूध-मठ्ठा, चोकर मिला आटे की रोटी, लौकी, खीरा ककड़ी, भीगी मेथी, करेला एवं पालक के जूस से मोटापा दूर होता है।
पीली बोतल के सूर्य तप्त जल 50 ग्राम की 3 खुराक लें। इस जल के पीने से शरीर की गर्मी बढ़ें तो आधा नीली बोतल का सूर्य तप्त जल भी मिला दें।

19. अम्ल रोग (DISEASE OF ACIDITY)

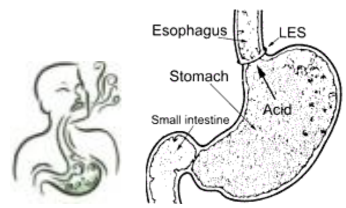

कारण व लक्षण : असंयमी जीवन और गलत खान-पान के फलस्वरूप शरीर में प्रतिदिन अम्लीय विजातीय द्रव्य एकत्र होता रहता है जो कालान्तर में कुपित होकर शरीर के समस्त रक्त को विषाक्त कर देता है। जिससे गले का जलना, पेट का पानी मुंह में आना, वमन, गठिया, फोड़ा, पेट का छाला, खाना खाने पर पेट भारी होना, पेट में दर्द होना एवं भूख अधिक लगना आदि लक्षण प्रकट होते है।
प्राकृतिक चिकित्सा : गुनगुने पानी का एनिमा, कटि स्नान, सुबह-शाम पेडू पर मिट्टी पट्टी, रातभर कमर की सूती-ऊनी पट्टी तथा सप्ताह में एक बार भाप स्नान, चादर की लपेट लें। नींबू-पानी-शहद प्रचुर मात्रा में पीना चाहिए। भोजन में ताजे फल और कच्ची-पक्की साग-सब्जियां, मठ्ठा, दही, मक्खन तथा धारोष्ण दूध आदि क्षारधर्मी खाद्य लें।

20. भगन्दर (FISTULA)

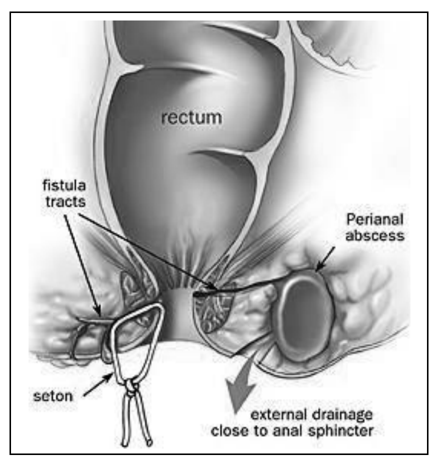

कारण व लक्षण : कड़े कब्ज के कारण गुदाद्वार के पास सूजन होकर फोड़े के रूप में भगन्दर की उत्पत्ति होती है जो बाद में फूट जाता है और उसमें से बहुत-सा मवाद और दूषित रक्त निकलता है। घाव कभी-कभी बहुत गहरा और चौड़ा होने पर असह्य पीड़ा दायक होता है।
प्राकृतिक चिकित्सा : सप्ताह भर का उपवास करके12-15 दिनों का रसाहार कर लें। शेष सभी उपचार फोड़ा के उपचार की भांति ही करें। इस रोग में पीली और हरी बोतल का सूर्यतप्त जल बराबर मिलाकर 50 ग्राम की 8 खुराक लें।

21. दांत के रोग (DENTAL DISEASE)

कारण व लक्षण : मसूड़ा फूलना, उससे खून आना, दांत हिलना, दांत गिरना, दांत में दर्द होना एवं पायरिया आदि दांतों के रोग है। ये रोग उन्हीं लोगों को सताते है जो अपने दांतों को साफ नहीं रखते, उनका उचित व्यायाम नहीं होने देते है। जिनका खान-पान अनियमित एवं अप्राकृतिक है। जो बहुत गर्म या बहुत ठंड़ी चीजों को खाने के आदी है तथा जिनका पेट साफ नहीं रहता है। दांतों के रोगों में पायरिया महाभयानक रोग माना जाता है, पर असाध्य नहीं है। इस रोग में मुंह खारा रहता है, मसूढ़े फूले हुए तथा उनसे पीव और खून निकलता रहता है, मुंह से बदबू आती रहती है। दांतों को उखाड़ फेंकना इसकी चिकित्सा नहीं है।

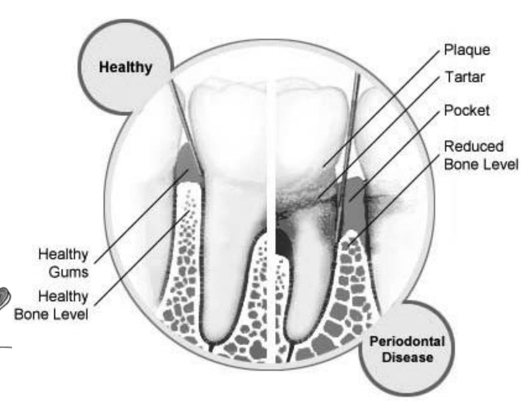

प्राकृतिक चिकित्सा : दांत में दर्द आरम्भ होते ही सबसे पहले सिर धोकर तथा उस पर भीगा हुआ गमछा रखकर दो मिनट तक सहने लायक गरम जल में नमक मिलाकर कुल्ली करना चाहिए। तत्पश्चा**त्** तुरन्त ठंड़े जल से कुल्ली करें। इस क्रिया को दिन में 3-4 बार करना चाहिए। दांतों पर लौंग का तेल या अदरक या प्याज का रस लगाना चाहिए।

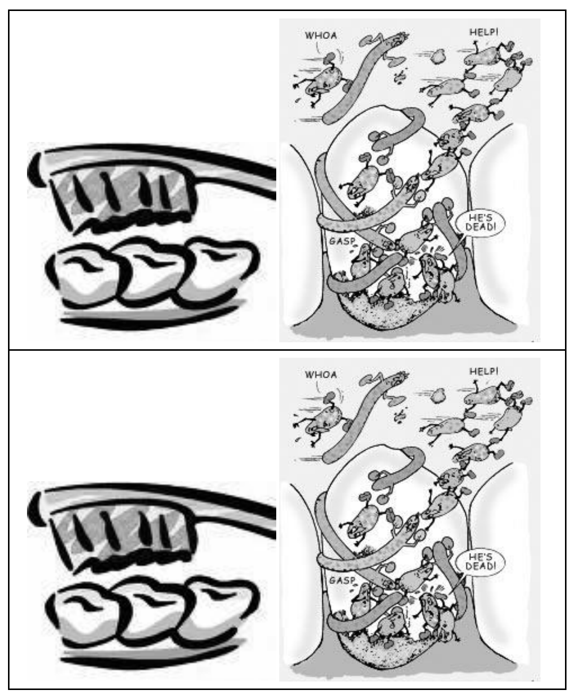

जो लोग प्राकृतिक सादा भोजन करते हैं , प्रत्येक ग्रास को खूब चबाते हैं , सुबह-शाम दोनों समय नीम या बबूल की दातून , बलुई मिट्टी , सरसों का तेल-नमक या नींबू रस से दांतों की मालिश करके उनको साफ रखते है तथा कैल्शियम , फास्फोरस एवं विटामिन-सी वाले खाद्य पदार्थो जैसे- कच्चा

दूध, अंकुरित गेहूं, सेम जाति के बीज, फूल व पतागोभी, करेला, पपीता, आंवला, बैंगन, परवल, लेटिस, मूली, पालक, टमाटर, किशमिश, खूबानी, खजूर, बादाम, नींबू जातीय फल , प्याज, लहसुन, अनानास तथा अंगूर आदि को अपने भोजन में स्थान देते हैं, उन्हें दांतों का कोई भी रोग कभी नहीं सताता।
रोगी 2-3 दिनों तक रसाहार करें और कब्ज टूटने तक एनिमा लें। तत्पश्चा त् 14-15 दिनों तक अत्यन्त सादे भोजन पर रहें। घर्षण के साथ साधारण स्नान करें तथा नींबू-जल प्रचुर मात्रा में पीयें। मसूढ़ों पर रोज 2-3 बार 5 मिनट तक भाप दें तथा बीच-बीच में 2-3 बार ठंड़े पानी से कुल्ला करना चाहिए। दिन में दो बार कटि-स्नान तथा रात भर के लिए कमर की सूती-ऊनी पट्टी लें। सप्ताह में दो दिन एप्सम साल्ट बाथ तथा रोज हल्का योगासन-प्राणायाम करें।
गहरी नीली बोतल का सूर्यतप्त जल 2 + हरी 1 + पीली का 1 भाग मिलाकर 30 ग्राम की 6 खुराकें दिन में पीना चाहिए।

1.5 सारांश

पाचन संस्थान के सभी रोग अप्राकृतिक आहार-विहार, अनियमित मल-मूत्र त्याग, पूरी नींद न लेने, पानी कम पीने , मानसिक चिन्ता करने , अधिक तली-भुनी चीजें खाने , भूख से अधिक खाने , बिना भूख के खाने, भूख से अधिक खाने , बिना चबाये खाने, उत्तेजक दवाइयों का सेवन करने , नियमित रूप से कोई योगासन-प्राणायाम न करने तथा कभी उपवास न करने से हो जाते है तथा पाचन संस्थान पर मनोविकारों का भी बहुत प्रभाव पड़ता है। मनोविकारों का लगातार बना रहना पाचन संस्थान के किसी न किसी अंग को रोग ग्रस्त बना देता है।

1.6 बोधात्मक प्रश्न

1. पाचन-संस्थान के पाँच रोगों के नाम बताइये?
2. कब्ज क्या है, इसके कारण व लक्षणों का वर्णन करते हुए प्राकृतिक चिकित्सा बताइए?
3. अजीर्ण की प्राकृतिक चिकित्सा बताइए?
4. जीर्ण वृहदान्त्र शोथ क्या है , इसके कारण व लक्षणों का वर्णन करते हुए प्राकृतिक चिकित्सा बताइए?
5. बवासीर क्या है, इसके कारण व लक्षणों का वर्णन करते हुए प्राकृतिक चिकित्सा बताइए?
6. मधुमेह क्या है, इसके कारण व लक्षणों का वर्णन करते हुए प्राकृतिक चिकित्सा बताइए?
7. पीलिया के कारण व लक्षणों का वर्णन करते हुए प्राकृतिक चिकित्सा बताइए?
8. मोटापा के कारण व लक्षणों का वर्णन करते हुए प्राकृतिक चिकित्सा बताइए?

1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ

संदर्भ साहित्य	लेखक	संदर्भ साहित्य	लेखक
नवीन मेडिकल प्रवेश परीक्षा	नवीन ग्रुप ऑफ पब्लिकेशन्स्- इलाहाबाद	जीवनी शक्ति कैसे जगायें	डॉ. चन्द्र दीप सिंह
मानव शरीर रचना एवं क्रिया-विज्ञान	डॉ. अनन्त प्रकाश गुप्ता	आपका आरोग्य आपके हाथ में	देवेन्द्र वोरा
प्राकृतिक स्वास्थ्य एवं योग	डॉ. बृज भूषण गोयल	प्राकृतिक चिकित्सा एवं योग वैज्ञानिक प्रयोग	डॉ. नागेन्द्र कुमार नीरज
प्राकृतिक आयुर्विज्ञान	डॉ. राकेश जिन्दल	जीवेम् शरद शतम्	पं. श्री राम शर्मा आचार्य

			वाड्मय
वृहद प्राकृतिक चिकित्सा	डॉ. ओ. पी. सक्सेना	बिना औषधियों के कायाकल्प	पं. श्री राम शर्मा आचार्य
स्वस्थवृत विज्ञान	प्रो. रामहर्ष सिंह	निरोग जीवन का राज मार्ग	पं. श्री राम शर्मा आचार्य
प्राकृतिक स्वास्थ्य शास्त्र	आचार्य शेषांद्रि स्वामीनाथन	दीर्घ जीवन की प्राप्ति	पं. श्री राम शर्मा आचार्य
आदिऊर्जा प्राण	अमश्ता भारती	पंच तत्वों द्वारा सम्पूर्ण रोगों का निवारण	पं. श्री राम शर्मा आचार्य
स्वास्थ्य के सोपान	धनरूपमल सुराणा	रोगों की सरल चिकित्सा	विट्ठलदास मोदी
सरल प्राकृतिक चिकित्सा	डॉ. लक्ष्मी नारायण शर्मा	जीने की कला	विट्ठलदास मोदी
पातंजली योगसूत्र	स्वामी विवेकानंद	आरोग्य प्रकाश	वैद्यराज पं. रामनारायण शर्मा
प्राकृतिक चिकित्सा एवं योग	श्रीमत्ती राज कुमारी गुप्ता	मौलिक चिकित्सा कौन सी?	डॉ. चंचलमल चोरडिया
प्राकृतिक जीवन की ओर	श्री एडोल्फ जस्ट	100 वर्ष कैसे जीयें	आचार्य श्याम सुन्दर सुमन
100 वर्ष निरोगी रहिए	माणेक लाल म. पटेल	प्राकृतिक चिकित्सा दर्शन	हेनरी लिंडलार
रोगों की अचूक चिकित्सा	जानकी शरण वर्मा	Fasting can sour your life	H.N. Shelton
प्रकृति से मैत्री	प्रकाशन विभाग	उपवास चिकित्सा	बर्नर मैकफेडन
आरोग्य की कुंजी	राष्ट्रपिता महात्मा गांधी	प्राकृतिक चिकित्सा	डॉ. सतीश गोयल
कुदरती चिकित्सा	राष्ट्रपिता महात्मा गांधी	Diet and diet reform	Sebastian kneipp
प्रेक्टिकल नेचर क्योर	डॉ. के. लक्ष्मण शर्मा	Food combining made easy	Dr. Herbert m. Shelton
The true healing art	R. T. Trall	The new science of healing, The doctrine of unity of diseases	Louis Kuhne and Benedict Lust
Mucusless diet healing system	Arnold ehret	A complete handbook of nature Cure – edition 4	Dr. H. K. Bakhru
Fasting can save your life	Dr. Herbert m. Shelton	My water-cure	Sebastian kneipp
जीव-विज्ञान भग-1	बी. एस. राम दास, देव ज्योति दास	प्राकृतिक चिकित्सा एवं स्वास्थ्य	डॉ. महेन्द्र कुमार जाजपुरा
जीव-विज्ञान भाग-2	ओसवाल ट्यूटोरियल	मानव शरीर रचना एवं क्रिया-विज्ञान	डॉ. महेन्द्र कुमार जाजपुरा
शरीर रचना एवं क्रिया-विज्ञान	डॉ. विमल कुमार मोदी	रोग, उनके कारण, लक्षण एवं उपचार	डॉ. महेन्द्र कुमार जाजपुरा
बिना दवा परफेक्ट हेल्थ	डॉ. बलराम पटेल	प्राण शक्ति उपचार; प्राचीन विज्ञान कला	चौ. कोक सुई

इकाई 2

रक्त परिसंचरण-संस्थान एवं उसके रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा

(Circulatory system & nature cure for its diseases)

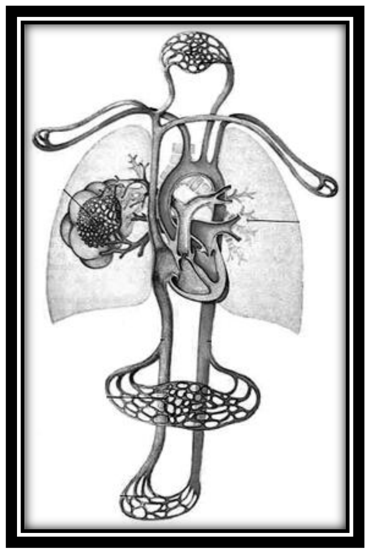

इकाई की रूपरेखा

2.1 उद्देश्य
2.2 प्रस्तावना
2.3 नाड़ी की गति या नब्ज़ (Pulse)
2.4 हृदय रोध (Heart block)
2.5 रक्त चाप या धमनीय रक्त दाब या या शिरीय रक्त दाब (Blood pressure or Arterial blood pressure or Venous blood pressure)
2.6 नाड़ी दाब (Pulse pressure)
2.7 रक्त चाप का मापन (Measurement of blood pressure) :
2.8 रक्त चाप को बनाये रखने के कारक (Factors maintaining blood pressure)
2.9 रक्त की जाँच या रक्त परीक्षण (Examination of the blood or Blood analysis)
2.10 रक्त परिसंचरण-संस्थान के रोगों की सूची
2.11 रक्त परिसंचरण-संस्थान के प्रमुख रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा

2.12 सारांश

2.13 बोधात्मक प्रश्न

2.14 संदर्भ ग्रंथ

2.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी-

- नाड़ी की गति या नब्ज़
- हृदय रोध
- रक्त चाप या धमनीय रक्त दाब या या शिरीय रक्त दाब
- नाड़ी दाब
- रक्त चाप का मापन
- रक्त चाप को बनाये रखने के कारक
- रक्त की जाँच या रक्त परीक्षण
- रक्त परिसंचरण-संस्थान के रोगों की सूची
- रक्त परिसंचरण-संस्थान के प्रमुख रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा

2.2 प्रस्तावना

शरीर का ऐसा परिवहन तंत्र जो रक्त, हृदय एवं रक्त वाहिनियों (blood vessels) के माध्यम से आहार, ऑक्सीजन, पानी एवं अन्य सभी आवश्यक पदार्थो को शरीर की प्रत्येक कोशिकाओं तक पहुँचाता है और प्रत्येक कोशिकाओं में रासायनिक क्रियाओं के फलस्वरूप बने हानिकारक एवं अपशिष्ट पदार्थों को उत्सर्जी अंगों तक पहुंचाता है। ऐसे तंत्र को रक्त परिसंचरण तंत्र कहते है।

2.3 नाड़ी की गति या नब्ज़ (Pulse)

हृदय में तालबद्ध संकुचन (rhythmic contraction) का गुण विद्यमान रहता है। इस तालबद्ध संकुचन की उत्पत्ति मायोकार्डियम के एक विशिष्ट स्थान साइनस-आलिन्द नोड (एस.ए. नोड) से होती है। यह विशेष स्थान गति-प्रेरक (pace maker) कहलाता है। उद्दीपन एस.ए. नोड से आरम्भ होकर ए.वी. नोड में पहुँचता है। यहाँ से यह उद्दीपन कुछ विशेष तंतुओं, बण्डल ऑफ हिज़ (bundle of His) के माध्यम से हृदय के अन्य भागों को संकुचन के लिए प्रेरत और उद्दीप्त करता है। यह स्पन्दन हृदय कक्षों की सभी पेशियों में कम या ज्यादा होता है , जिससे हृदय में पर्याप्त क्रमिक संकुचन एवं फैलाव होता है। जब यह उद्दीपन हृदय के बायें निलय में पहुँचता है तो बायें निलय के संकुचन से रक्त महाधमनी में पम्प होता है। इससे दबाव बढ़ता है और रक्त लहरों या तरंगों की तरह आगे धमनियों में बढ़ता चला जाता है। जिससे धमनियों में फैलाव एवं सिकुडऩ तरंग के रूप में पैदा होती है, जिसे नाड़ी या नब्ज़ कहते है। यह सभी बड़ी धमनियों में आगे चलती जाती है। वैसे तो धमनी शरीर में गहराई में स्थित होती है , परन्तु कुछ जगहों पर

यह त्वचा के ठीक नीचे अस्थि के ऊपर आ जाती है , जहां इसे सुगमतापूर्वक स्पर्श करके या छूकर अनुभव किया जा सकता हैं। ऐसे स्थलों के उदाहरण निम्न है-

1. कलाई पर सामने की ओर रेडियल धमनी (Radial artery),

2. कान के ठीक ऊपर टेम्पोरेल धमनी (Temporal artery),

3. गर्दन में कैरोटिड धमनी (carotid artery) एवं

4. पट्टे पर फीमोरल धमनी (Femoral artery)।

सामान्यावस्था में हृदय (heart rate) गति तथा नाड़ी गति (pulse rate)) दोनों गतियाँ समकालिक (synchronous) ही होती हैं जैसे- हृदय गति (heart rate) यदि 72 प्रति मिनट है तो नाड़ी गति (pulse rate) भी 72 प्रति मिनट होगी। अर्थात् एक मिनट में जितनी बाहर हृदय धडक़ता है, नाड़ी की गति भी उतनी बार होती हैं। परन्तु हृदय में जब स्पंदन होता है, वही स्पंदन उस समय नाड़ी में नहीं होता हैं। वहां कुछ देर पश्चात् ही होगा और वह जिस समय जिस नाड़ी में अनुभव किया जाये वह हृदय से उसकी दूरी पर निर्भर करेगा। कलाई पर स्पंदन एडिय़ों की अपेक्षा जल्दी अनुभव होता है।

नाड़ी की गति का सामान्य	स्पंदन प्रति मिनट
नवजात शिशु में	140 प्रति मिनट
प्रथम वर्ष में	120 प्रति मिनट
द्वितीय वर्ष में	110 प्रति मिनट
पांच वर्ष में	100 प्रति मिनट
दस वर्ष में	80-90 प्रति मिनट
वयस्क व्यक्ति	60-80 प्रति मिनट
स्वस्थ व्यक्ति	72-75 प्रति मिनट

हृदय एवं नाड़ी गति (pulse rate) स्वस्थ व्यक्ति में उसकी आयु , लिंग, उत्तुजना, मनोस्थिति, आहार, श्रमशीलता तथा जीवन की परिस्थितियों आदि कारकों पर निर्भर करती हैं। बच्चों में यह गति अधिक होती है, आयु बढऩे के साथ-साथ यह भी बढ़ती रहती है। जो उक्त सारणी में वर्णित है। जब नाड़ी गति 100 स्पन्दन प्रति मिनट से अधिक हो जाती है तो इस अवस्था को टैकिकार्डिया (pulse rate) कहते है तथा जब नाड़ी गति 60 स्पन्दन प्रति मिनट से कम हो जाती है तो इस अवस्था को ब्रैडिकार्डिया (Bradycardia) कहते है।

मादक-पदार्थो के प्रभाव , रोगग्रस्त अवस्था में , भय या क्रोध के समय नाड़ी की गति बढ़ जाती हैं। निर्बलता, बेहोशी में गति कम हो जाती हैं। शांति , आराम के समय नाड़ी की गति सम बनी रहती है। सामान्यत: निद्रा के दौरान नाड़ी गति घट जाती है। भोजन करने पर और परिश्रम करते समय नाड़ी गति बढ़ जाती है। ज्वर आने पर प्रत्येक डिग्री ताप से नाड़ी गति 10 स्पन्दन बढ़ जाती है। अत्यधिक रक्त बहने (bllod loss) के बाद नाड़ी गति बहुत ज्यादा बढ़ जाती है। तीव्र रक्ताल्पता severe anaemia) के मामलों में प्राय: नाड़ी गति ज्यादा रहती है।

2.4 **हृदय रोध** (Heart block)

कभी-कभी हृदय के संकुचनों की नियमितता में गड़बडी उत्पन्न हो जाती है , जिससे अतालता (arrhythmia) पैदा हो जाती है। ऐसी अवस्था में बंडल ऑफ हिस (bundle of His) साइनस अलिन्द नोड (एस.ए. नोड) पर उत्पन्न तरंगों को आगे नहीं बढ़ा पाता , जिस वजह से अलिन्द व निलय का संकुचन (contraction or systole) और प्रसार (diastole) ठीक तरह से नहीं हो पाता हैं।

2.5 **रक्त चाप या धमनीय रक्त दाब या या शिरीय रक्त दाब** (Blood pressure or Arterial blood pressure or Venous blood pressure)

रक्त चाप या धमनीय रक्त दाब या या शिरीय रक्त दाब (Blood pressure or Arterial blood pressure or Venous blood pressure) उस दाब शक्ति को कहते हैं , जिसके द्वारा रक्त उन रक्त वाहिनी (blood vessel - arterial or venous) की दीवारों या भित्तियों को दबाता है , जिसमें वह प्रवाहित होता हैं। यह दाब हृदय-चक्र की विभिन्न अवस्थाओं से भिन्न होता हैं तथा विभिन्न रक्त वाहिनियों में अलग-अलग होता है।

जब बायां निलय रक्त को महाधमनी (aorta) में बलपूर्वक प्रवाहित करता है तो रक्त दाब सर्वाधिक होता है और धमनियों (arteries) तक पहुँचने पर दबाव धीरे-धीरे कम होता जाता है अर्थात् धमनी हृदय से जितनी दूर होती है उसमें दबाव उतना ही कम होता है। शिराओं में धमनियों की अपेक्ष दबाव कम रहता है।

रक्त चाप निम्न दो प्रकार का होता है-

1. प्रकुंचनीय रक्त चाप **(Systolic blood pressure)** : निलयी प्रकुंचन के दौरान रक्त महाधमनी में धकेलने के लिए बायें निलय के संकुचित होने पर उत्पन्न अधिकतम दबाव प्रकुंचनीय रक्त चाप (Systolic blood pressure) कहलाता हैं, जो एक स्वस्थ वयस्क व्यक्ति में लगभग 120 mm of Hg रहता है।

2. अनुशिथिलन **(Diastolic blood pressure)** : रक्त को महाधमनी में धकेलने के पश्चात् जब हृदय विश्रामावस्था में होता है तो धमनियों के भीतर विद्यमान रक्त का दबाव उनकी भित्तियों पर कम होने से अनुशिथिलनीय रक्त चाप (diastolic blood pressure) कहलाता हैं, जो एक स्वस्थ वयस्क व्यक्ति में लगभग 80 mm of Hg रहता है।

2.6 **नाड़ी दाब** (Pulse pressure)

सिस्टालिक और डायस्टालिक दाब के अन्तर को नाड़ी दाब (श्चह्वद्यह्यद्ग श्चह्म्द्गह्यह्यह्वह्म्द्ग) कहते हैं। यह सामान्यत: 30-50 mg of Hg के बीच रहता हैं। यह हृदय की कार्यक्षमता एवं शक्ति का द्योतक होता है।

2.7 **रक्त चाप का मापन** (Measurement of blood pressure) **:**

रक्त दाब नापने वाले यंत्र को स्फिग्मोमैनो मीटर(sphygmomanometer) कहते हैं। इसमें रबड़ की फूल सकने वाली एक थैली होती है जो कपड़े के एक कफ में बंद रहती है। यह दो रबड़ ट्यूब से संलग्र रहती है। एक ट्यूब का सम्बन्ध हवा भरने वाले रबड़ के बल्ब से तथा दूसरी ट्यूब का सम्बन्ध मैनोमीटर से होता है, जिसमें पारा भरा रहता है। इसी कफ को हाथ के बाँह के चारों ओर लपेटा जाता हैं तथा बल्ब को दबा-दबाकर तब तक हवा भरी जाती है जब तक कि दबाव से रेडियल नाड़ी का स्पन्दन महसूस होना बंद नहीं हो जायें।

इसके बाद क्यूबिटल फोसा (कोहनी के मोड़ पर) में बैक्रियल धमनी पर स्टैथोस्कोप का आला रखकर कान में लगाया जाता है। फिर बल्ब के पास में स्थित रिलीज वॉल्व द्वारा कफ में से धीरे-धीरे दबाव कम किया जाता है। दाब को उस बिन्दु तक लाया जाता है , जहाँ पर नाड़ी अनुभव होने लगती है अर्थात् स्टैथोस्कोप में स्पन्दन स्पष्टत: सुनाई देने लगता है। इस बिन्दु पर मैनोमीटर में पारे के स्तर को नोट कर लिया जाता है, यहीं प्रकुंचनीय चाप (Systolic pressure) होता है। इसके पश्चात् कफ में से लगातार व धीरे-धीरे दबाव कम करते ही रहने पर नाड़ी का अनुभव होना बंद हो जाता है अर्थात् स्टैथोस्कोप में स्पन्दन सुनाई देना बंद हो जाता है। तब मैनोमीटर में पारे के स्तर को नोट कर लिया जाता है, यहीं अनुशिथिलनीय चाप (diastolic pressure) होता है। ब्लड प्रेशर मापने के दो तरीके है-

1. छूकर (Palpatory) 2. सुनकर (Auscultatory)

स्फिग्मोमैनो मीटर
(Sphygmomanometer)

छूकर (Palpatory)

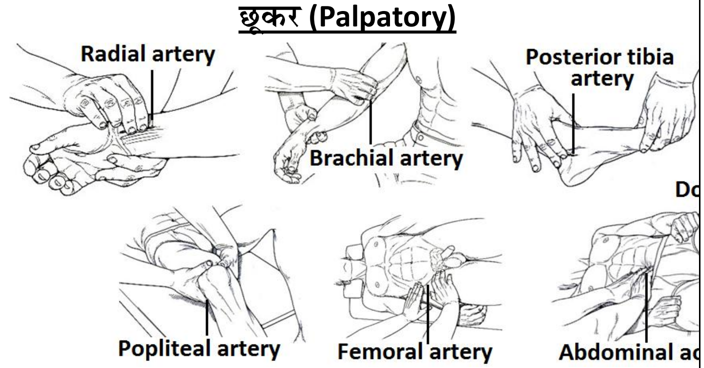

1. परिस्पर्शनीय (Palpatory)

कफ को कोहनी के ठीक ऊपर बांधकर मैनोमीटर में दबाव को150-200 mm of Hg तक बढ़ाया जाता हैं। यह दाब बै्रकियल धमनी को अवरूद्ध करने के लिए साधारणतया काफी होता है जिसके फलस्वरूप कलाई की नब्ज नहीं महसूस होती हैं। फिर धीरे-धीरे दाब गिराया जाता हैं। जैसे ही नब्ज महसूस होने लगे, वह सिस्टालिक ब्लड प्रेशर होता हैं।

2. परिश्रवणीय (Auscultatory)

मैनोमीटर के दबाव को कफ बांधने के बाद 150-200 mm of Hg तक बढ़ाया जाता हैं। फिर आले को ब्रेकियल धमनी पर रखकर धीरे-धीरे दाब को कम किया जाता हैं। एक समय आने पर आले में धमनी का स्पुदन सुनायी पडऩे लगता हैं। जैसे ही यह शुरू हो उसे प्रकुंचनीय रक्त चाप (systolic blood pressure) कहते हैं। फिर धीरे-धीरे इसको घटाते जाते हैं, और एक समय स्पंदन सुनायी पडऩा बंद हो जाता है तो इसे अनुशिथिलनीय रक्त चाप (diastolic blood pressure) कहते हैं।

परिश्रवणीय

(Auscultatory)

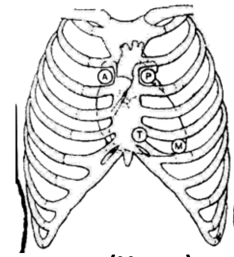

हृदय (Heart)

सिस्टालिक और डायस्टालिक दाब के अन्तर को नाड़ी दाब (pulse pressure) कहते हैं। यह 30-50 mg of Hg होता हैं। एक वयस्क में सिस्टालिक दाब कम से कम 105 mm Hg और अधिकतम 150 mm Hg तक होना चाहिए। स्त्रियों में रक्त दाब पुरूषों की तुलना में5-10 mm of Hg कम होता हैं।

आयु के हिसाब से सामान्य रक्त दाब:

अवस्था	डायस्टोलिक	सिस्टोलिक
शैशव में	50	60 से 90
बचपन में	60	80 से 100
किशोरावस्था में	60	90 से 100
युवा व्यक्ति में	60 से 70	110 से 125
आयु वृद्धि के साथ रक्त दाब में वृद्धि	80 से 90	130 से 150

2.8 रक्त चाप को बनाये रखने के कारक (Factors maintaining blood pressure)

1. हृदय-निकास **(Cardiac output)** : निलय द्वारा एक संकुचन में निष्कासित या पम्प की हुई रक्त की मात्रा को स्ट्रोक वॉल्यूम कहते है और यह लगभग 70 मिली. होता है। जब बायाँ निलय संकुचित होता है तब लगभग 70 मिली. रक्त महाधमनी में जाता है , जो कि पहले से ही रक्त से भरी रहती है और भी यह विस्तारित हो जाती है। रक्त चाप कार्डियक आउटपुट पर निर्भर करता है। हृदय द्वारा पम्प या निष्कासित रक्त की मात्रा जितनी अधिक होती है रक्त चाप उतना ही अधिक होगा।

2. रक्त आयतन **(Blood volume)** : शरीर में परिसंचरित रक्त की कुल मात्रा रक्त आयतन कहलाती है। रक्त का आयतन कम हो जाने पर जैसे- शरीर से रक्त-स्त्राव हो जाने से या रक्त से द्रव की हानि होने से जैसे जलने या निर्जलीकरण में रक्त चाप कम हो जाती है।

3. रक्त का लसलसापन **(Viscosity of blood)** : यह रक्त का चिपचिपापन या गाढ़ापन है , जो रक्त में विद्यमान प्लाज़्मा प्रोटीन्स एवं लाल रक्त कोशिकाओं की संख्या पर निर्भर है। इन दोनों फेक्टर्स में किसी प्रकार के परिवर्तन से रक्त चाप में बदलाव आ जायेगा। उदाहरणार्थ- रक्ताल्पता में लाल रक्त कोशिकाओं की संख्या घट जाने पर अथवा नॉर्मल सैलाइन अधिक मात्रा में आधान करने पर रक्त का लसलसापन कम हो जाता है , फलत: रक्त चाप कम हो जाता है। इसके विपरीत रक्त के अधिक गाढ़े होने पर उसे वाहिकाओं में धकेलने के लिए हृदय को अधिक बल लगाना पड़ता है अत: रक्त चाप बढ़ जाता है।

4. धमनीय भित्तियों का लचीलापन **(Elasticity of arterial walls)** : धमनीय भित्तियों का लचीलापन के कारण निलय में संकुचन एवं शिथिलन होने पर महाधमनी फैलती एवं सिकुड़ती है जिससे रक्त आगे की ओर बढ़ता है। धमनियों में लचीलापन की कमी के कारण रक्त चाप बढ़ जाता है जैसा कि एथीरोमा नामक रोग में होता है।

5. परिसरीय प्रतिरोध **(Peripheral resistance)** : यह वह प्रतिरोध है जो धमनिकाओं द्वारा रक्त के बहाव के प्रति किया जाता है। यह प्रतिरोध केशिकाओं में रक्त के तेज बहाव को रोकता है और इस प्रकार धमनियों में रक्त दबाव सामान्य बनाये रखने में सहायक होता है। वाहिका प्रेरक तन्त्रिकाओं की क्रिया एवं एड्रीनल ग्रंथियों से निकलने वाले एड्रीनलिन एवं नॉरएड्रीनलिन द्वारा आर्टिरियोल्स का ल्यूमेन परिवर्तित हो सकता है। यदि ल्यूमेन सँकरा हो गया है तो रक्त बहाव के प्रति प्रतिरोध बढ़ जाता है जिससे रक्त चाप बढ़ जाता है। यदि ल्यूमेन चौड़ा हो गया है तो केशिकाओं में अधिक रक्त शीघ्रता से प्रवाहित होगा और रक्त चाप कम हो जाता है।

2.9 रक्त की जाँच या रक्त परीक्षण (Examination of the blood or Blood analysis)

क्र.	जाँच (Test)	सामान्य पाठ्याँक	परिणाम (Result)	रोग (Disease)
1.	लाल रक्त कणिकाएँ RBC (Erythrocytes)	पुरूष 4.5–6.5 mill/mm^3 स्त्री 3.9–5.6 mill/mm^3	अधिक (More) न्यून (Less)	निर्जलीकरण (Dehydration), पोलीसीथेमिया (Polycythemia). रक्तहीनता (Anaemia), स्टेरायड हार्मोन कम बनना (Addition's disease).
2.	हिमोग्लोबिन (Haemoglobin)	पुरूष 11–18 gm/100ml स्त्री 11–14 gm/100ml	अधिक (More) न्यून (Less)	पोलीसीथेमिया (Polycythemia), संकुचित हृदयघात। रक्तहीनता (Anaemia), थायराइड का बढ़ना, लीवर सिरोसिस, अधिक रक्तस्त्राव।
3.	रक्तस्त्राव काल	4–8 मिनट	अधिक (More)	प्लेटलेट्स की कमी, गंभीर लीवर रोग, रक्त कैंसर, रक्तहीनता।
4.	Clotting time	10 मिनट तक	अधिक (More)	रक्तस्त्राव अनियमितता
5.	Erythrocytes sedimentation rate (ESR)	पुरूष 1–10/mm/1st hr स्त्री 3–15/mm/1st hr	अधिक (More) न्यून (Less)	संक्रमण, ऊतकों की क्षति, गुर्दों में सूजन, गर्भावस्था, अर्धचन्द्राकार कोशिका, रक्तहीनता, संकुचित हृदयघात।
6.	WBC Total Leucocytes Count (TLC)	5000–10000 /mm^3	अधिक (More) न्यून (Less)	हृदय रोग, मधुमेह, रक्तहीनता, कैंसर रोग, कीमोथैरापी के बाद की स्थिति। तीव्र संक्रमण।

7.	Prothrombin time (PT)	12 से 14 सैकेण्ड	अधिक (More)	विटामिन 'के' एवं प्रोथ्रोम्बिन की कमी, लीवर के रोग, विटामिन 'ए' की अधिकता।
8.	Differential Leucocytes Count (DLC)			
	A. Neurotrophils	60-70 %	अधिक (More)	Infection
	B. Bosophils	0.1 %	अधिक (More)	Allergy
	C. Eosinophils	3-4 %	अधिक (More)	Allergy
	D. Lymphocytes	25-30 %	अधिक (More)	Tuberculosis (T.B.)
	E. Monocytes	5-10 %	अधिक (More)	Infection
9.	Reticulocyte count	2 %	अधिक (More)	रक्तहीनता, कैंसर, रक्त कैंसर।
			न्यून (Less)	आयरन की कमी, रक्तहीनता, गुर्दो के रोग, रेडियेशन थैरेपी के बाद।
10.	Platelates	1.5–5.5 lac/mm^3	अधिक (More)	कैंसर, हृदय रोग, सिरोसिस, कीमोथैरापी के बाद की स्थिति।
			न्यून (Less)	रक्त का थक्का नही जमेगा, डेंगू, रक्तहीनता, एलर्जी, घाव।
11.	Bilirubin			
	संयुग्मित (Conjugated)	<0.5 mg/100ml	अधिक (More)	लीवर के रोग, पीत प्रणाली में रूकावट।
	असंयुग्मित (Unconjugated)	0.2–1 mg/100ml	न्यून (Less)	लाल रक्त कणिकाओं का अधिक विभाजन।
	SGOT	Upto 40 u/l	अधिक (More)	लीवर के रोग।
	SGPT	Upto 40 u/l	अधिक (More)	लीवर के रोग।
12.	Uric acid	पुरूष 4–8.5 gm/100ml	अधिक (More)	गुर्दे का विकार, गठिया, कैंसर, भुखमरी, सदमा।
		स्त्री 2.7–7.3 gm/100ml	न्यून (Less)	
13.	Urea	8.26 mg %	अधिक (More)	गुर्दे के रोग, हृदय रोग, मधुमेह, सदमा, निर्जलीकरण।
			न्यून (Less)	यकृत की खराबी, अवशोषण में कमी, पानी की अधिकता।
14.	Creatine	पुरूष 0.1–0.4 mg/100ml	अधिक (More)	माँसपेशियों का विकार, माँसपेशियों के ऊतकों की क्षति, गुर्दे की
		स्त्री 0.2–0.7 mg/100ml		सूजन, गर्भावस्था।
15.	Creatinine	0.5–1.2 mg/100ml	अधिक (More)	गुर्दे के कार्य में कमी, ग्रोथ हार्मोन से किसी अंग का बढ़ जाना।
			न्यून (Less)	माँसपेशियों का विकार।
16.	Total cholesterol	130–200 mg/dl	अधिक (More)	गुर्दे का विकार, हृदय रोग (CVD), मधुमेह, थायराईड का सिकुड़ना।
			न्यून (Less)	यकृत रोग, थायराईड का बढ़ना, रक्तहीनता, तीव्र संक्रमण, कैंसर की अंतिक अवस्था।
	HDL cholesterol	30–65 mg/dl	न्यून (Less)	हृदयघात की सम्भावना।
	LDL cholesterol	50–120 mg/dl	अधिक (More)	हृदयघात की सम्भावना।
	VLDL cholesterol	12–35 mg/dl	अधिक (More)	हृदयघात की सम्भावना।
	Triglycerides	60–160 mg/dl	अधिक (More)	हृदयघात की सम्भावना।
17.	Total lipids	400–800 mg %	अधिक (More)	मधुमेह, थायराईड का सिकुड़ना।

			न्यून (Less)	वसा अवशोषण में कमी।
18.	Sugar (F) Sugar (PP)	80–120 mg/100ml 140 mg/100ml	अधिक (More) न्यून (Less)	मधुमेह, थायराईड का बढ़ना, तनाव, यकृत रोग, गुर्दे के रोग। थायराईड का सिकुड़ना, पैन्क्रियाज का कैंसर।
19.	थायराईड हार्मोन्स			
	T_3 (ट्राईआयडोथाईरोनीन)	80–200 mg/dl	अधिक (More)	थायराईड का बढ़ना
	T_4 (थाईराक्सीन)	52–141 mm/dl	न्यून (Less)	थायराईड का सिकुड़ना
	TSH	0–6 mm/dl	अधिक (More)	थायराईड का सिकुड़ना
	TBG (ट्रायोक्सिन बाइंडिंग ग्लूकोबुलिन)	130–335 mg/dl	न्यून (Less)	थायराईड का बढ़ना
20.	टेस्टोस्टेरोन हामोन	पुरूष 3.16 mg/ml स्त्री 0.1–1 mg/ml	न्यून (Less)	नपुंसकता, बाँझपन, काम–विषय की गड़बड़ी।
21.	आस्मोलिटी (Osmolity)	285–295	अधिक (More)	सिरोसिस, संक्रमित हृदयघात, उच्च प्रोटीन, उच्च रक्तचाप, मधुमेह, कैल्शियम की अधिकता।
22.	pH	7.35–7.45	अधिक (More) न्यून (Less)	उल्टी, बाईकार्बोनेट की अधिकता, ऑक्सीजन की कमी। गुर्दो की खराबी, मधुमेह, ऊतकों में ऑक्सीजन की कमी, श्वास में रूकावट, सदमा।
23.	Total protein	6–7.8 gms%	अधिक (More) न्यून (Less)	निर्जलीकरण, रूमेटाईड अर्थराइटिस, संक्रमण, यकृत रोग। प्रोटीन की कमी, रक्तस्त्राव, अपच, दस्त, गुर्दे का रोग, जलन, यकृत रोग, रक्त कैंसर, क्षय रोग, एल्बुमिन व ग्लोबुलिन का विपरीत अनुपात।
24.	Albumin : Globulin	1.5:1 – 2.5:1	अधिक (More) न्यून (Less)	निर्जलीकरण, उच्च रक्तचाप, मधुमेह। जलन, उल्टी, दस्त, वृक्क विकार, अधिक पसीना आना।
25.	Calcium	9–11 mg/dl	अधिक (More) न्यून (Less)	कैंसर, पैराथायराइड का बढ़ना, स्टेरायड हार्मोन का कम बनना, थायराईड का बढ़ना। पैराथायराइड का सिकुड़ना, गुर्दा रोग, सुखा रोग, हड्डियों का कमजोर पड़ना, दस्त।
26.	Pottasium	3.5–5.5 mg/l	अधिक (More) न्यून (Less)	स्टेरायड हार्मोन का कम बनना, गुर्दा रोग। उल्टी, गुर्दा रोग, हृदय रोग।
27.	Iron	50–170 mg/dl	अधिक (More) न्यून (Less)	लीवर रोग, हिमोलीसीस। रक्तहीनता।
28.	Sodium	133–146 mg/l	न्यून (Less)	दस्त, हैजा, गुर्दे के रोग।
29.	Phosphorus	2.5–4.5 mg/dl	अधिक (More) न्यून (Less)	गुर्दे खराब, पैराथायराइड का सिकुड़ना, रक्त में कैल्शियम की कमी, अस्थि ट्यूमर। रिकेट्स, हड्डियों का कमजोर पड़ना।
30.	Acidic Phosphate	0.1–5 U/al	अधिक (More) न्यून (Less)	प्रोस्टेटिक कैंसर, यकृत रोग, पैराथायराइड का बढ़ना, रक्तहीनता। डाउन सिंड्रोम।
31.	Alkaline Phosphate	4–13 U/dl	अधिक (More) न्यून (Less)	थायराईड का बढ़ना, गर्भावस्था, यकृत व अस्थि रोग। जड़ बुद्धि या आलोचक, विकास अवरूद्ध, मसूड़ों से खून आना, कार्टिलेज बनने में दोष।

32.	Chlorides	95–103 mm/mg %	अधिक (More) न्यून (Less)	निर्जलीकरण, एड्रीनल हार्मोन की कमी, अल्परक्तता। अत्यधिक उल्टियाँ, जलन, मधुमेह, अम्लता, ज्वर।
33.	Mean Corpuscular Volume (MCV)	76–96 fl	अधिक (More)	यकृत रोग, थायराईड का सिकुड़ना।
34.	Mean Corpuscular haemoglobin (MCH)	27–32 pg	न्यून (Less)	रक्तहीनता।
35.	Mean Corpuscular haemoglobin Concentration (MCHC)	31–35 gm %	न्यून (Less)	रक्तहीनता।

2.10 रक्त परिसंचरण-संस्थान के रोगों की सूची

क्र.	हिन्दी या संस्कृत नाम	English name	क्र.	हिन्दी नाम	English name
1.	रक्ताल्पता, रक्तहीनता	Anaemia	19.	नकसीर	Epistaxis
2.	एन्डो कार्डाइटिस (हृदय में सूजन	Andocordites	20.	ज्वर	Fever
3.	हृदय शूल, हृत्शूल (हृदय की तरफ सीने का दर्द)	Angina pectoris	21.	फाइलेरिया	Filarial
4.	आर्टीरियोस्क्लेरोसीस	Arteriosclerosis	22.	हृदय दौरा	Heart attack
5.	रक्तवाहिनियों का कठिनीकरण	Atherosclerosis	23.	हृदय रोग	Heart disease
6.	बाहरी रक्तस्त्राव	External Haemorrhage	24.	इन्फ्लोइंजा	Influenza
7.	अधिक रक्त कोलेस्ट्रॉल	High Blood cholestrol	25.	प्लेग	Plague
8.	उच्च रक्तचाप	High blood pressure, Hypertension	26.	टायफायट	Typhoid
9.	हृदय का आकार बढ़ जाना	Hyperttrophy, Cardiac enlargement	27.	मलेरिया	Malaria
10.	हृदय का आकार घट जाना	Hypottrophy, Cardiac dilation	28.	आंतरिक रक्तस्त्राव	Internal Haemorrhage
11.	हृदय की धड़कन बढ़ना, हृत्कम्प	Palpitation of the heart			
12.	निम्न रक्तचाप	Low blood pressure, Hypotension	29.	गुच्छेदार नसें, उभरी शिराएँ	Varicose veins
13.	हीन रक्त शर्करा	Low blood sugar, Hypoglycaemia			
14.	मायोकार्डियल इंफ्रेक्शन	Myocardial infection	30.	हृदय की धड़कन का बंद होना	Heart failure
15.	मायो कार्डाइटिस (हृदय में सूजन)	Myocordites			
16.	पेरी कार्डाइटिस (हृदय में सूजन	Parycordites			
17.	हृदय को रक्त देने वाली धमनी में अवरोध या थक्का	Coronary thrombosis	31.	डेंगू	Dengue
18.	गर्दन तोड़ ज्वर	Meningitis, cerebrospinal, Spotted fever	32.	कालाजार और लाल ज्वर	

2.11 **रक्त परिसंचरण-संस्थान के प्रमुख रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा**

1. हृदय रोग **(HEART DISEASE)**

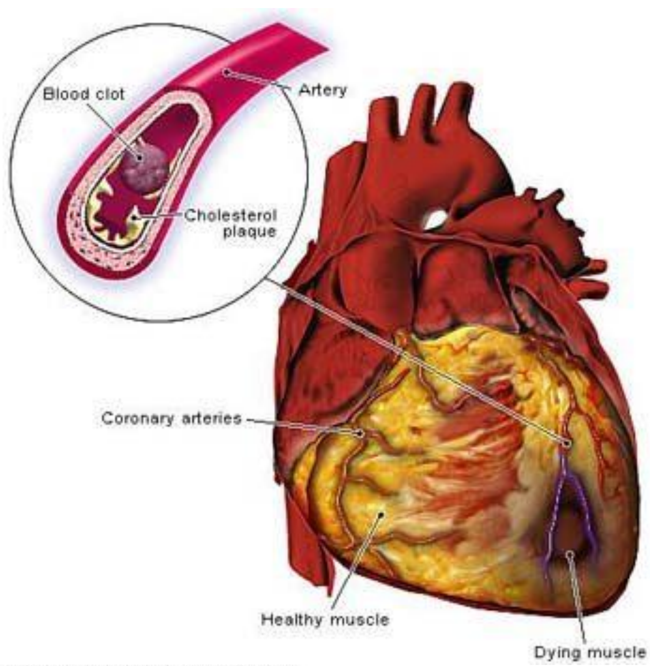

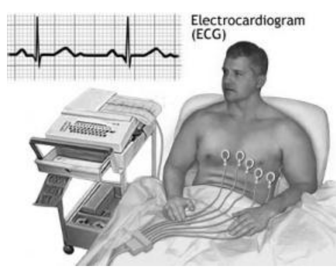

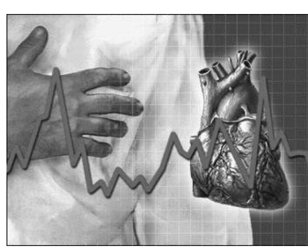

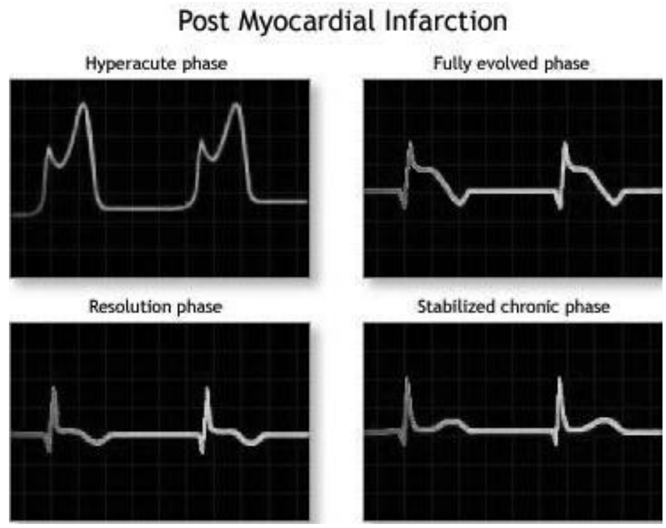

कारण : अधिक गरिष्ठ भोजन करने वाले, अधिक दवाओं का सेवन, अधिक वीर्य क्षय होना, विश्राम न करना, व्यायाम-योगासन-प्राणायाम और परिश्रम न करने वाले ही हृदय रोगी होते है। उनके रक्त में अम्लता की वृद्धि होती है, जो हृदय ही नहीं अनेक रोगों का कारण है।

लक्षण : श्वास फूलना, चेहरे पर उदासीनता और पैरों की सूजन साधारण हृदय रोग के लक्षण है।

हृदय रोग के प्रकार :

1. हृत्कम्प-

हृदय की पेशियों और स्नायुओं की निर्बलता के कारण आकस्मिक घटनाओं , भय या क्रोध की दशा में हृदय तीव्र गति से धडक़ने लगता और घबड़ाहट के साथ ठंड़ा पसीना आता है।

2. दिल की धडक़न का कम या बंद होना-

इससे पूर्व कई लक्षण जैसे- हृदय में दर्द, नाभि के ऊपर कठिन पीड़ा, कलेजे में दर्द, बेचैनी, अचानक बदन में सख्त गर्मी व पसीना आदि।

3. हृदय का आकार में परिवर्तन होना-

हृदय में और उसके आस-पास विजातीय द्रव्य के एकत्र हो जाने से हृदय व रक्त-नलिकायें कड़ी , तंग व मोटी हो जाती है तो हृदय का आकार भी बड़ा हो जाता है। परन्तु जब हृदय में रक्त कम मात्रा में पहुँचता है तो हृदय का आकार छोटा हो जाता है। इन दोनों हालतों में हृदय रोगग्रस्त हो जाता है।

4. हृदयशूल-

जब प्रकृति हृदय में जमे अपशिष्टं को बाहर निकालने की चेष्टा करती है तो तब भयानक दर्द पैदा होता है। जिसे हृदय शूल कहते है। कभी-कभी यह दर्द बढक़र हाथ और छाती तक फैल जाता है। उस वक्त मुंह लाल, बदन ठंड़ा तथा नाड़ी धीमी हो जाती है।

5. हृदय शोथ-

हृदय की झिल्लियों में विजातीय द्रव्य के कारण सूजन हो जाती है।

प्राकृतिक चिकित्सा : हृदय रोग के दौरे आने पर स्थिति बड़ी विकट हो जाती है। उस समय रोगी पूर्ण शारीरिक-मानसिक विश्राम करें। दिन में कई बार 15-30 मिनट तक हृदय पर बदल-बदल कर कपड़े की ठंडी पट्टी रखें। फिर सूखे कपड़े से रगड़ कर गर्मी लायें। कफ के कारण श्वास कष्ट हो तो पैरों को गरम करने के लिए ऊनी पट्टी लपेटें। एक बार हृदय का दौरा पडने पर कुछ दिन उपवास कर लें। दिन में दो बार गुनगुने पानी का एनिमा तथा पूरे शरीर की भीगी चादर की लपेट लें। फिर 15 दिनों तक

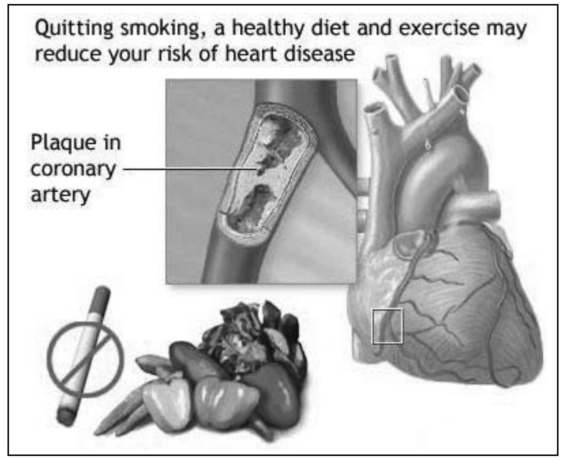

फलाहार व दूध पर रहकर दिन में दो बार घर्षण-स्नान करें। कटि या मेहन-स्नान लें। रात को कमर की सूती-ऊनी पट्टी लें।

यदि हृदय बैठ रहा हो और धडक्न बन्द होने वाली हो तो रीढ़ पर गरम ठंड़ी सेंक दें। बीच-बीच में हृदय पर गरम पानी का स्पंज बाथ देकर सेंक करें। तथा बिस्तर पर लेटे हुए या टब में बैठकर मेहन स्नान लें। लाल रंग की बोतल के सूर्य तप्त तेल की हृदय पर मालिश तथा पीली बोतल के सूर्य तप्त जल 50 ग्राम की 8 खुराकें प्रतिदिन पीयें।

दिल की धडक्न बढने पर दिल पर ठंड़ी पट्टी आधे घंटे के अन्तराल पर 20 मिनट के लिए देकर सूखे कपड़े से रगड़ कर लाल कर दें। हृदय पर नीली रोशनी का प्रयोग करें तथा गहरी नीली बोतल के सूर्य तप्त जल की 4 खुराक लें।

हृदय शूल में 4-5 बार हृदय को 5 मिनट गरम सेंककर 15 मिनट तक ठंड़ी पट्टी दें। या 5 मिनट तक पैरों का गरम नहान देकर हाथ-पैरों में ऊनी पट्टी लपेटें।

हृत्कम्प में प्रात: काल 11-12 पत्ते काली तुलसी के चबाकर थोड़ा जल पी लें। 3-4 दिनों में ही आराम मिलेगा। नमक का त्याग और नींबू-पानी-मधु हृदय रोग के लिए बड़े उपकारी है।

हृदय रोगी को नींद न आने पर पैरों का गरम स्नान लें। हृदय रोगी के शरीर पर सूजन और जलोदर के लक्षण हो तो पूरे शरीर की गीली चादर की लपेट लें। धूप-स्नान लेकर पसीना निकलें। तत्पश्चा**त्** कटि या मेहन स्नान लें।

2. उच्च रक्तचाप (HIGH BLOOD PRESSURE)

परिचय : हृदय दबकर रक्त को रक्तवाहिनी धमनियों में आगे बढ़ाने की क्रिया को रक्तचाप कहते है। यह एक सर्वथा स्वाभाविक सत**त्** शारीरिक क्रिया है जिससे हम जीवित है। यह रक्तचाप निम्न परिस्थितियों में किसी भी व्यक्ति का बढ़ सकता है जैसे- घबराहट या भय होने पर, खाना खाने पर, अत्याधिक खुशी होने पर, मानसिक आवेगों के समय, स्त्री प्रसंग के समय एवं ठंड़े पानी से स्नान करने पर।

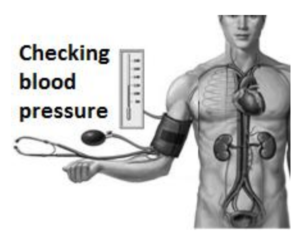

रक्तचाप जानने के लिए बायीं भुजा की धमनी पर स्फाइगनो मैनोमीटर यन्त्र का उपयोग करते है। एक स्वस्थ युवक का रक्तचाप सिस्टोलिक और डायस्टोलिक 120/80 मिलीमीटर होता है। जब रक्तचाप 120/80 मिलीमीटर से अधिक होने पर उच्च रक्तचाप कहते है। यह 140 मिलीमीटर से अधिक होने पर स्वास्थ्य और जीवन के लिए खतरा रहता है।

कारण : उच्च रक्तचाप कई वर्षो का गलत खान-पान और रहन-सहन का परिणाम है। मानसिक विकारों, मादक द्रव्यों का अधिक सेवन, व्यायाम-योगासन-प्राणायाम व परिश्रम न करना तथा शरीर में अपशिष्ठ जमा होते रहने से धमनियां और रक्त नलिकायें अपना लचीलापन खोकर कड़ी हो जाती और उनके छिद्रों के रास्ते तंग हो जाते है। जिसका दुष्परिणाम हृदय को उठाना पड़ता है।

लक्षण : चक्करआना , सिरदर्द, शरीर में शिथिलता , काम में मन न लगना , नींद न आना , श्वास कष्ट, हाजमा बिगड़ जाना , चिड़चिड़ापन, कभी-कभी नाक से खून गिरना , सीने में दर्द एवं जरा सी मेहनत में हाँफने लगना आदि लक्षण उच्च रक्तचाप के है।

प्राकृतिक चिकित्सा : स्वास्थ्य रक्षा के नियमों का नित्य प्रतिपालन करना , भोजन के समय पानी न पीकर प्यास लगे तब पीना , अधिक न खाना , भूख न होने पर न खाना , भोजन चबा-चबाकर करना , भोजन के बाद पेशाब करना तथा सुबह-शाम टहलना , उष:पान करना, नींबू-पानी प्रचुर मात्रा में पीना , शान्त और प्रसन्नचित रहना, कब्ज न होने देना, सप्ताह में 1-2 उपवास करना, एवं गहरी नींद सोना आदि। दवाओं द्वारा रक्तचाप की चिकित्सा करना व्यर्थ ही नहीं है अपितु हानिप्रद है।

इस रोग में प्रतिदिन गुनगुने पानी का एनीमा लें। कुछ दिनों तक उपवास , सप्ताह भर का फलाहार या कच्ची या उबली तरकारियों पर ही रहे। उसके बाद ही अन्न का उपयोग धीरे-धीरे करें , सुबह-शाम फल-दूध या तरकारी-दही और केवल दोपहर में अन्न का उपयोग करें। लहसुन का उपयोग रक्तचाप के रोग में बड़ा उपकारी होता है। आंवला , हरड़ और बहेड़ा का 10 ग्राम पाउडर रात को जल में भिगोकर सुबह छानकर पीये।

सुबह मेहन और शाम को कटि स्नान लेकर रात भर के लिए कमर की सूती-ऊनी पट्टी बांधें। सप्ताह में एक बार एप्सम साल्ट बाथ और दो बार पैरों का गरम स्नान लें। अधिक तकलीफ हो तो 3-4 मिनट तक गुनगुने पानी में स्नान करके पेडू और खोपड़ी पर मिट्टी पट्टी बांधें। सप्ताह में एक बार सारे बदन की भीगी चादर की लपेट लगावे। उस वक्त सिर पर ठंड़े पानी से भीगा गमछा और पैरों के पास गरम पानी से भरी बोतलें जरूर रखें। सारे बदन की हल्की-हल्की मालिश करें।

3. निम्र रक्तचाप (LOW BLOOD PRESSURE)

परिचय : जब रक्तचाप 120। 80 मिलीमीटर से नीचे उतरने पर निम्र रक्तचाप कहते है। यह 110 मिलीमीटर से नीचे उतरने पर स्वास्थ्य और जीवन के लिए खतरा रहता है।

कारण : अनियमित आहार-विहार होते रहने से रक्त का विषाक्त हो जाना, यकृत ठीक से कार्य न करना, पाचन क्रिया ठीक न होना, मोटापे की चिंता, कम खाना, रक्त में लोहा-फास्फोरस की कमी, अधिक सहवास एवं हस्त मैथुन से निम्र रक्तचाप की समस्या होती है। इसके प्रभाव से धमनियां और रक्त नलिकाओं की दीवारें ढ़ीली होकर फैल जाती है। जिससे उनके छिद्र आवश्यकता से अधिक खुल जाते है।

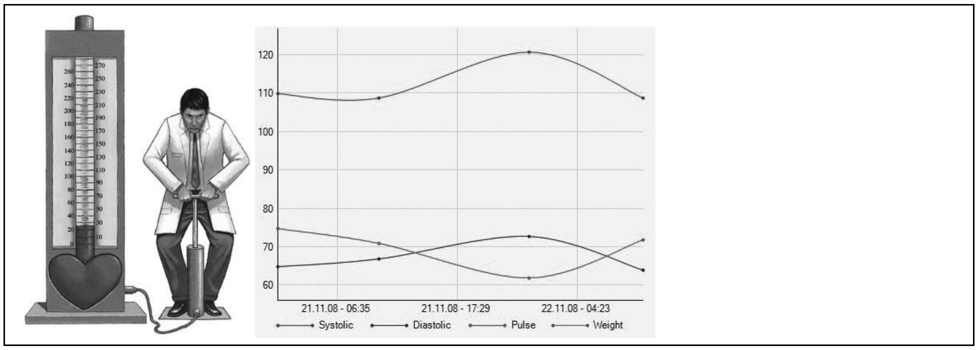

लक्षण : सिरदर्द, चक्कर आना, घबराहट व थकान अनुभव करना, नाड़ी-गति का धीमा होना, मानसिक तनाव, हाथ-पैर ठंड़े रहना एवं भयभीत रहना आदि इस रोग के प्रमुख लक्षण है।

प्राकृतिक चिकित्सा : 4-5 दिनों का उपवास कर लेने पर 15-20 दिनों तक फलाहार करें। कब्ज टूटने तक एनिमा लें। सुबह-शाम उदर स्नान और शाम को मेहन स्नान लें। प्रतिदिन मालिश, टहले-व्यायाम-योगासन-प्राणायाम एवं विश्राम करें, मोजें आदि से पैरों को गरम रखें तथा सोते समय गुनगुना नींबू-पानी पीयें। फल के साथ दूध लेते हुए धीरे-धीरे साधारण भोजन पर आ जायें। लहसुन का सेवन करें।

4. ज्वर (बुखार) एवं उसके विविध रूप **(FEVER & IT'S OTHER TYPES)**

परिचय : कोष्ठबद्धता के कारण जब पेडू में मल सडक़र अति विषैला खमीर बनता है। जो शरीर के रक्त को विषाक्त कर अनुकूल वातावरण मिलने पर उत्तेजित हो जाता है। तब प्रकृति शरीर स्थिति अपशिष्ट विष को भस्म करके शरीर को निर्विष, निर्दोष एवं स्वस्थ करने का प्रयत्न करती है। यही प्रकृति का प्रयास ज्वर कहलाता है। ज्वर के रूप- साधारण ज्वर, मलेरिया, टायफाइड, टायफस, इन्फ्लेइंजा, डेंगू, फाइलेरिया, गर्दनतोड़, कालाजार तथा प्लेग आदि।

ज्वर में भूख बन्द, अधिक प्यास, जीभ मैली, नींद नहीं आती, कमजोरी में बढ़ोतरी, काम करने की शक्ति में कमी, आरम्भ में ठंड़ और कंपकंपी का होना, बदन व सिर दर्द, मितली और वमन, श्वास-प्रश्वास की गति तेज, नाड़ी-गति तेज, दिल की धडक़न अधिक, पेशाब गंदला और गाढ़ा रंगदार, श्वास-पसीना-मल-मूत्र अत्यन्त बदबूदार हो जाता है। ज्वर के साथ-साथ चलने वाले ये सभी क्रियायें भले ही कष्टदायक प्रतीत होती हो पर वास्तव में बड़ी लाभप्रद और रक्षात्मक है।

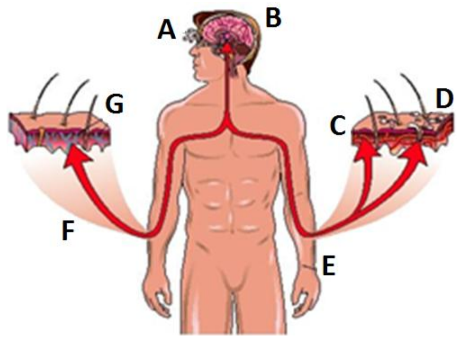

A dramatic rise in body temperature often includes the following symptoms:

A. Loss of fluid results in dehydration.
B. The hypothalamic set-point is increased, raising metabolism.
C. Blood vessels in skin dilate.
D. Sweat glands produce excess perspiration.
E. Increased pulse rate.
F. Increased hypothalmic set-point may introduce chills and shivering to promote heat production from muscles.
G. Skin becomes more heat-sensitive.

5. मलेरिया **(MALARIAL FEVER)**

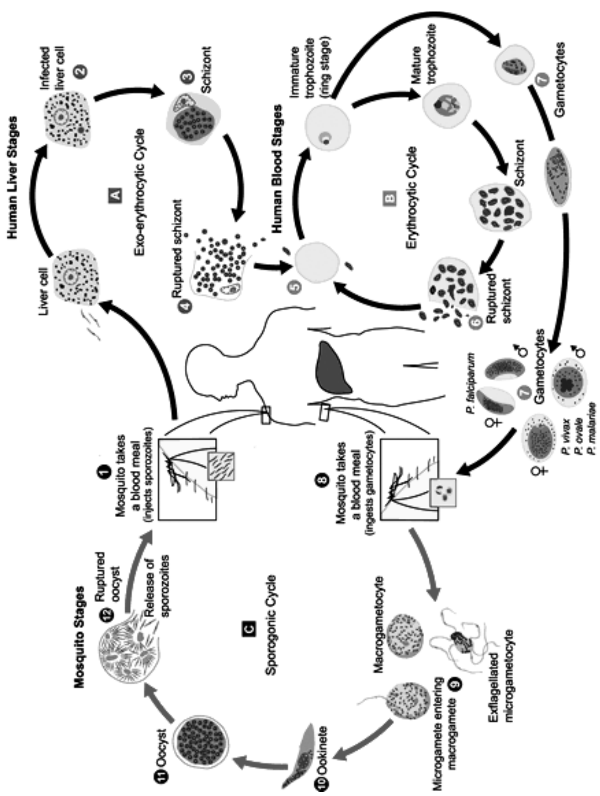

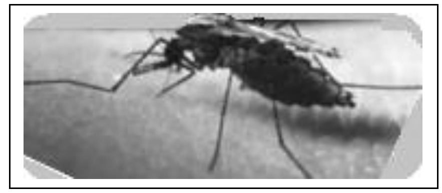

कारण : अनियमित आहार-विहार से शरीर में एकत्र गंदगी पर मच्छर का जहर उभार पैदा कर हमें मलेरिया ज्वर की सूचना देता है। यदि हमारे रक्त में कोई अपशिष्ट ï न हो तो मच्छर के जहर का हम पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। मलेरिया ज्वर को विषम ज्वर, मौसमी ज्वर, मच्छरों से फैला ज्वर, जाड़े का बुखार एवं बरसाती ज्वर के नाम से जानते है। यह लौट-लौट कर रोज आने वाला ज्वर है।

लक्षण : ज्वर चढऩे पर शरीर टूटता या जकड़ जाता , अंगड़ाई पर अंगड़ाई और जम्हाई आती , आंखों में पानी भर जाता , धूप अच्छी और छांव खराब लगती , मितली और वमन होती , सिर-पीठ-बदन दर्द, बेचैनी बढ़ती, हाथ-पैर ठंड़े होकर सारे बदन में कपकपी से दांत बजने लगते, कमजोरी व प्यास बेहद बढ़ जाती, तिल्ली और यकृत विषाक्त रक्त के कारण शरीर पीला पड़ जाता, भूख बंद हो जाती है।

प्राकृतिक चिकित्सा : मलेरिया ज्वर के लक्षणों को प्रकट होते ही नींबू-पानी-शहद पर उपवास करें। पेडू पर मिट्टी पट्टी के बाद गुनगुने पानी का एनिमा , पैरों का गरम स्नान या भाप स्नान देकर कटि स्नान या मेहन स्नान, सारे बदन की भीगी चादर की लपेट लें। सोते समय पैरों का गरम स्नान लें। सिर गरम हो और बैचेनी अधिक बढ़ जाये तो भीगी पट्टी सिर पर बार-बार रखनी चाहिए और घुटने के नीचे टांगों पर सूती-ऊनी पट्टी बाधें। रोगी कमजोर हो तो प्रतिदिन स्पंज बाथ अवश्य दें। रात को कमर की सूती-ऊनी पट्टी बाधें तथा हल्की नीली बोतल के सूर्य तप्त तेल की मालिश करें।

रोगी को गहरी नीली बोतल का सूर्य तप्त जल 50 ग्राम की 3 खुराक दें। परन्तु कब्ज हो तो पहले दो दिन पीली बोतल की खुराक पिलायें।

ज्वर उतर जाने पर टमाटर, संतरा, मौसम्बी, अनार का जूस पानी में मिलाकर पीयें या हरी तरकारियों का सूप लें। फिर 2 दिन बाद फल-दूध लें। तत्पश्चा**त्** धीरे-धीरे सादे भोजन पर आ जायें। घी के साथ लहसुन मिलाकर खाने से ज्वर प्राय: नहीं आता। तुलसी का काठा पीने से मलेरिया ज्वर शीघ्र चला जाता है।

6. टायफायड (TYPHOID FEVER)

कारण : आंत में मल के सडऩे से लसीका ग्रन्थियां विषाक्त होकर आंत में छाले कर देती है। जिसे टायफायड़, मियादी, सान्निपातिक, मंथर एवं मोतीझरा ज्वर के नाम से जानते है। छालों के ठीक होने में समय लगता है। यह बढक़र मस्तिष्क को प्रभावित करता है।

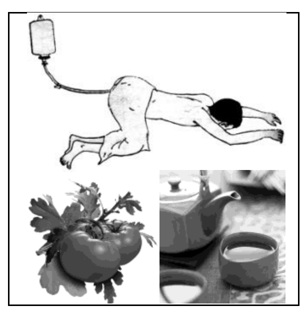

लक्षण : टायफायड़ ज्वर होने पर रोगी बेसुध, कब्ज के कारण दस्त, खून के दस्त, बहुत कमजोरी, वमन एवं अनिद्रा का सामना करना पड़ता है।

प्राकृतिक चिकित्सा : रोगी को पूर्ण विश्राम की सभी सुविधायें दें। रोगी उपवास में खूब पानी पीयें, रोज एनिमा के बाद सारे बदन की गीली चादर की लपेट लेकर स्पंज बाथ लें। सुबह-शाम कटि स्नान, पेडू पर मिट्टी पट्टी, पेडू पर भाप, उपवास के बाद पैरों को गरम पानी में रखकर मेहन स्नान। तत्पश्चा**त्** फलों के जूस, किशमिश का पानी, दूध को फाड़ कर उसका पानी दें। ज्वर उतरने के बाद आहार में सप्ताह भर पानी मिला दूध, फल जूस दें, फिर धीरे-धीरे रोटी कम व उबली सब्जी खायें।

पेट दर्द होने पर ठंड़ी-गरम सेंक करें। गहरी नीली3 + पीली 1 बोतल का सूर्य तप्त जल 50 ग्राम की 4 खुराक लें।

7. डेंगू ज्वर (DENGUE FEVER)

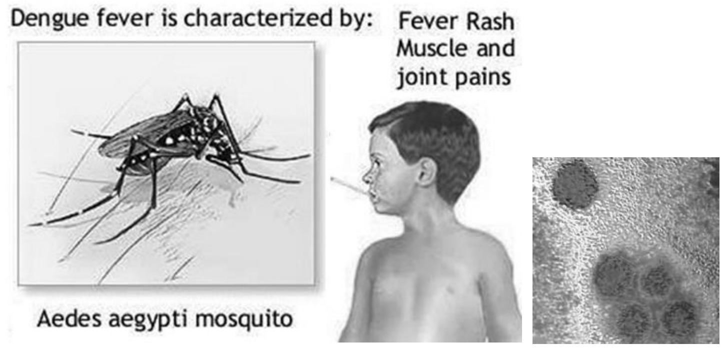

कारण : विजातीय द्रव्य का शरीर में अधिक मात्रा में होने पर से डेंगू मच्छर के काटने पर डेंगू ज्वर आ जाता है।

लक्षण : यह अचानक आकर तेजी से बढ़ता है तथा अच्छा हो-हो कर बार-बार आक्रमण करता है। आरम्भ में जोड़ों में दर्द फिर मुंह लाल होकर सारे बदन पर छोटी-छोटी फुन्सियां निकलने से बेचैनी बढ़ जाती है।

प्राकृतिक चिकित्सा : रोगी को पूर्ण विश्राम की सभी सुविधायें दें। रोगी उपवास में खूब पानी पीयें रोज एनिमा के बाद सारे बदन की गीली चादर की लपेट लेकर स्पंज बाथ लें। सुबह-शाम कटि स्नान, पेडू पर मिट्टी पट्टी, पेडू पर भाप, उपवास के बाद पैरों को गरम पानी में रखकर मेहन स्नान। तत्पश्चा**त्** फलों के जूस, किशमिश का पानी, दूध को फाड़ कर उसका पानी दें। ज्वर उतरने के बाद आहार में सप्ताह भर पानी मिला दूध, फल जूस दें, फिर धीरे-धीरे रोटी कम व उबली सब्जी खायें।

पेट दर्द होने पर ठंड़ी-गरम सेंक करें। गहरी नीली3 + पीली 1 बोतल का सूर्य तप्त जल 50 ग्राम की 4 खुराक लें।

8. प्लेग (PLAGUE)

परिचय : प्लेग अत्यन्त भयंकर रोग है जो संक्रामक और स्पर्शात्मक दोनों होता है। गंदे स्थान पर नामक जीवाणु प्लेग के कारण होते है। प्लेग के निम्न प्रकार होते है-

1. ब्यूबोनिक अर्था**त्** गिल्टी वाला प्लेग।
2. न्यूमोनिक प्लेग से फेफड़ें प्रभावित होते है।
3. सेप्टीसिमिक अर्थात् शरीर में सडऩ पैदा करन वाला प्लेग।
4. इंटेस्टिनल या आंतों का प्लेग।

कारण : इन जीवाणु का पहला हमला काले चूहों के पिस्सूओं पर फिर उनसे विजातीय द्रव्य से भरे मानव शरीर पर होता है।

लक्षण : प्लेग जब होने को होता है तब सुस्ती और कमजोरी बढ़ जाती है। जाड़े के साथ तेज ज्वर, सिरदर्द, हाथ-पैरों में ऐंठन, शरीर में असह्य पीड़ा, मितली, वमन, आंखों का गड्ढें में धसना, चेहरा पीला, नाड़ी व श्वास में तीव्र, आवाज धीमी, भूख न लगना, मूत्र न लगना, मुख व जननेन्द्रिय द्वारा पर रक्तस्राव, अनिद्रा, मुख व जीभ का लाल, एवं गिल्टियों का निकलना आदि अनेक लक्षण प्रकट होते है।

प्राकृतिक चिकित्सा : चुहों के एका-एक मरते ही मकान छोडऩा अच्छा है। सादा और शीघ्र पचने वाला भोजन करे, कब्ज न होने दें। भोजन के साथ प्याज जरूर खायें। उषा:पान नींबू-पानी से करें। प्रात: दूध के साथ एक चम्मच हल्दी या तुलसी के पत्ते, काली मिर्च लें।

आसमानी रंग की बोतल के सूर्य तप्त जल की 50 ग्राम की 4-6 खुराक लें। महामारी के प्रारम्भ होते ही रोज दो बार एनिमा लें, पूरे शरीर का भाप स्नान, मेहन या कटि स्नान, प्लेग में पेडू, छाती, सिर और जहां भी दर्द हो वहां मिट्टी पट्टी या सूती-ऊनी पट्टी बांधें।

यदि गिल्टी निकल आयी हो तो उपवास में आसमानी रंग की बोतल का सूर्यतप्त जल50 ग्राम 10-10 मिनट पर रोगी को पिलायें। 4 घंटे के अन्तराल पर 10-15 मिनट का भाप स्नान लेकर पेडू पर मिट्टी पट्टी या सूती-ऊनी पट्टी बांधें। कमजोर रोगी को पूरे शरीर की भीगी चादर लपेट तथा स्पंज-बाथ दें।

9. रक्ताल्पता (ANAEMIA)

कारण : आहार-विहार की गड़बड़ी, इन्फ्लूएंजा, मलेरिया, क्षय, खूनी बवासीर, अधिक मासिक स्राव एवं उपदंश आदि के कारण रक्त के रंजक कणों की अधिक खपत या क्षति का होना तथा शरीर में उनके निर्माण की पर्याप्त सामग्री का न होने से रक्त में लाल कणों क्र.क्च.ष्ट. की कमी का होना ही वास्तव में रक्ताल्पता कही जाती है। वैसे दुर्घटना में रक्त का निकल जाना भी रक्ताल्पता कहलाता है।

लक्षण : सामान्यत: एक वयस्क मनुष्य में लालकणों की सख्ंया 4-5 मिलियन सेल्स / घन मिली लीटर होती है। किन्तु जब यह संख्या कम हो जाती है, तब वह रक्ताल्पता से आक्रान्त समझा जाता है। जिससे उसके शरीर की त्वचा का रंग पीला, कमजोरी और थोड़ी सी मेहनत से थकावट,

हाथों का कांपना, पैरों का सुन्न होना, कब्ज और मन्दाग्नि, हृदय की धडक़न का बढऩा, स्वप्नदोश, स्त्रियों का मासिक रूकना, श्वास लेने में कठिनाई, गला जलना, भोजन के बाद वमन मालुम होना एवं जवानी में ही बुढ़ापे का अनुभव होने लगता है।

प्राकृतिक चिकित्सा : 2-3 दिनों का उपवास नींबू-पानी-शहद पर करें। गुनगुने पानी का एनीमा लें। कुछ दिन फलों का जूस या साग-सब्जियों का सूप लें। इसके बाद सप्ताह भर फलाहार। फिर दुग्ध-कल्प करें। फिर धीरे-धीरे रसाहार, फलाहार करते हुए साधारण भोजन पर आ जायें। भोजन में सुबह फल-दूध, दोपहर और शाम को चौकर आटे की रोटी, उबली साग-सब्जी तथा सलाद खायें।

प्रतिदिन टहले-व्यायाम-योगासन-प्राणायाम करें। प्रात:काल धूप में मालिश कराकर घर्षण स्नान करें। प्रतिदिन मेहन स्नान या कटि स्नान, सप्ताह में एक बार एप्सम साल्ट बाथ लेना चाहिए। कमर की सूती-ऊनी पट्टी तथा एनिमा लें।

10. नकसीर (NOSE BLEEDING OR EPISTAXIS)

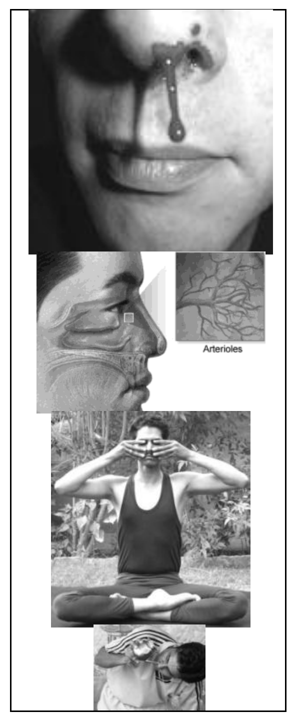

परिचय : नाक से रक्तस्राव होना नकसीर कहलाता है। यह कोई रोग नहीं रोग का लक्षण है।

कारण एवं लक्षण : नाक के पिछले भाग की एडीनायड्स ग्रन्थि में सूजन हो जाने के कारण वहां के रक्त कोषों में रक्ताधिक्य हो जाता है। रक्ताधिक्य के अधिक दबाव के कारण त्वचा के नीचे रक्त फूट पड़ता और बहने लगता है। कभी-कभी रक्तचाप के बढ़ जाने के कारण तथा स्कर्वी रोग में मसूढ़ों के फूल जाने के कारण भी नकसीर फूटता है।

प्राकृतिक चिकित्सा : यदि बार-बार नकसीर फूटता हो तो रोगी को किसी ठण्ड़ी जगह पर आराम करना चाहिए। नकसीर फूटने पर सिर गीलाकर गर्दन के पीछे ठण्ड़े पानी की पट्टी या बर्फ की थैली रखकर लेटा देना चाहिए।30 मिनट बाद पांवों में सूखी गरम पट्टी बांधें या 5-7 मिनट का पैरों को गरम स्नान दें। प्रतिदिन ठंड़े जल से जल नेति करना भी लाभप्रद हैं तथा रोज रात भर के लिए पेडू पर मिट्टी की पट्टी कुछ ही दिनों तक लेने पर इससे छुटकारा पाया जा सकता है।

दोनों हाथों में बर्फ के टुकड़े रखने से भी रक्त का बहना बन्द हो जाता है।

तर्जनी अंगुली और अंगूठे के बीच में दबाने से भी रक्तस्राव बन्द हो जाता है।

पीली बोतल का सूर्यतप्त जल दो भाग + गहरी नीली बोतल का 1 भाग + हरी बोतल का 1 भाग मिलाकर आधी-आधी छटांक दिन में 6 बार पीने से रक्तस्राव बन्द हो जाता है।

2.12 सारांश

कभी-कभी हृदय के संकुचनों की नियमितता में गड़बडी उत्पन्न हो जाती है , जिससे अतालता (arrhythmia) पैदा हो जाती है। ऐसी अवस्था में बंडल ऑफ हिस(bundle of His) साइनस अलिन्द नोड (एस.ए. नोड) पर उत्पन्न तरंगों को आगे नहीं बढ़ा पाता , जिस वजह से अलिन्द व निलय का संकुचन (contraction or systole) और प्रसार (diastole) ठीक तरह से नहीं हो पाता हैं।

शरीर का ऐसा परिवहन तंत्र जो रक्त , हृदय एवं रक्त वाहिनियों (blood vessels) के माध्यम से आहार , ऑक्सीजन, पानी एवं अन्य सभी आवश्यक पदार्थों को शरीर की प्रत्येक कोशिकाओं तक पहुँचाता है हृदय में तालबद्ध संकुचन (rhythmic contraction) का गुण विद्यमान रहता है। इस तालबद्ध संकुचन की उत्पत्ति मायोकार्डियम के एक विशिष्ट स्थान साइनस-आलिन्द नोड (एस.ए. नोड) से होती है। यह विशेष स्थान गति-प्रेरक (pace maker) कहलाता है। उद्दीपन एस.ए. नोड से आरम्भ होकर ए.वी. नोड में पहुँचता है। यहाँ से यह उद्दीपन कुछ विशेष तंतुओं , बण्डल ऑफ हिज़ (bundle of His) के माध्यम से हृदय के अन्य भागों को संकुचन के लिए प्रेरत और उद्दीप्त करता है। यह स्पन्दन हृदय कक्षों की सभी पेशियों में कम या ज्यादा होता है , जिससे हृदय में पर्याप्त क्रमिक संकुचन एवं फैलाव होता है। जब यह उद्दीपन हृदय के बायें निलय में पहुँचता है तो बायें निलय के संकुचन से रक्त महाधमनी में पम्प होता है। इससे दबाव बढ़ता है और रक्त लहरों या तरंगों की तरह आगे धमनियों में बढ़ता चला जाता है।

2.13 बोधात्मक प्रश्न

1. नाड़ी की गति या नब्ज़ (Pulse) किसे कहते है तथा इसे शरीर के किन-किन स्थानों पर छूकर अनुभव किया जा सकता हैं?
2. स्वस्थ व्यक्ति की नाड़ी की गति का स्पंदन प्रति मिनट क्या होता है?
3. प्रत्येक डिग्री ताप से नाड़ी गति कितने स्पन्दन बढ़ती है?
4. बंडल ऑफ हिस (Bundle of His) क्या है?
5. रक्त चाप (Blood pressure) के बारे में विस्तार से समझाइयें?
6. रक्त चाप किस-किस यंत्र से नापा जाता है?
7. रक्त चाप को बनाये रखने में कौन-कौन से कारक है?
8. रक्त परिसंचरण-संस्थान के कोई पाँच रोगों के नाम बताइये?
9. हृदय से सम्बन्धित विभिन्न रोगों का वर्णन करते हुए कारण, लक्षण एवं प्राकृतिक चिकित्सा का वर्णन करो?
10. उच्च रक्तचाप का कारण, लक्षण एवं प्राकृतिक चिकित्सा का वर्णन करो?
11. ज्वर (बुखार) एवं उसके विविध रूपों का वर्णन करते हुए कारण, लक्षण एवं प्राकृतिक चिकित्सा का वर्णन करो?
12. रक्ताल्पता की प्राकृतिक चिकित्सा बताइयें?
13. नकसीर का कारण, लक्षण एवं प्राकृतिक चिकित्सा का वर्णन करो?

2.14 सन्दर्भ ग्रन्थ

संदर्भ साहित्य	लेखक	संदर्भ साहित्य	लेखक
मानव शरीर रचना एवं क्रिया-विज्ञान	डॉ. अनन्त प्रकाश गुप्ता	आपका आरोग्य आपके हाथ में	देवेन्द्र वोरा
प्राकृतिक स्वास्थ्य एवं योग	डॉ. बृज भूषण गोयल	प्राकृतिक चिकित्सा एवं योग वैज्ञानिक प्रयोग	डॉ. नागेन्द्र कुमार नीरज
प्राकृतिक आयुर्विज्ञान	डॉ. राकेश जिन्दल	जीवेम् शरद शतम्	पं. श्री राम शर्मा आचार्य वाङ्मय
वृहद प्राकृतिक चिकित्सा	डॉ. ओ. पी. सक्सेना	बिना औषधियों के कायाकल्प	पं. श्री राम शर्मा आचार्य
स्वस्थवृत विज्ञान	प्रो. रामहर्ष सिंह	निरोग जीवन का राज मार्ग	पं. श्री राम शर्मा आचार्य
प्राकृतिक स्वास्थ्य शास्त्र	आचार्य शेषाद्रि स्वामीनाथन	दीर्घ जीवन की प्राप्ति	पं. श्री राम शर्मा आचार्य
आदिऊर्जा प्राण	अमश्ता भारती	पंच तत्वों द्वारा सम्पूर्ण रोगों का निवारण	पं. श्री राम शर्मा आचार्य
स्वास्थ्य के सोपान	धनरूपमल सुराणा	रोगों की सरल चिकित्सा	विट्ठलदास मोदी
सरल प्राकृतिक चिकित्सा	डॉ. लक्ष्मी नारायण शर्मा	जीने की कला	विट्ठलदास मोदी
पातंजली योगसूत्र	स्वामी विवेकानंद	आरोग्य प्रकाश	वैद्यराज पं. रामनारायण शर्मा
प्राकृतिक चिकित्सा एवं योग	श्रीमत्ती राज कुमारी गुप्ता	मौलिक चिकित्सा कौन सी?	डॉ. चंचलमल चोरडिया
प्राकृतिक जीवन की ओर	श्री एडोल्फ जस्ट	100 वर्ष कैसे जीयें	आचार्य श्याम सुन्दर सुमन
100 वर्ष निरोगी रहिए	माणेक लाल म. पटेल	प्राकृतिक चिकित्सा दर्शन	हेनरी लिंडलार
रोगों की अचूक चिकित्सा	जानकी शरण वर्मा	Fasting can sour your life	H.N. Shelton
प्रकृति से मैत्री	प्रकाशन विभाग	उपवास चिकित्सा	बर्नर मैकफेडन
आरोग्य की कुंजी	राष्ट्रपिता महात्मा गांधी	प्राकृतिक चिकित्सा	डॉ. सतीश गोयल
कुदरती चिकित्सा	राष्ट्रपिता महात्मा गांधी	Diet and diet reform	Sebastian kneipp
प्रेक्टिकल नेचर क्योर	डॉ. के. लक्ष्मण शर्मा	Food combining made easy	Dr. Herbert m. Shelton
The true healing art	R. T. Trall	The new science of healing, The doctrine of unity of diseases	Louis Kuhne and Benedict Lust
Mucusless diet healing system	Arnold ehret	A complete handbook of nature Cure – edition 4	Dr. H. K. Bakhru
Fasting can save your life	Dr. Herbert m. Shelton	My water-cure	Sebastian kneipp
जीव-विज्ञान भाग-1	बी. एस. राम दास, देव ज्योति दास	प्राकृतिक चिकित्सा एवं स्वास्थ्य	डॉ. महेन्द्र कुमार जाजपुरा
जीव-विज्ञान भाग-2	ओसवाल ट्यूटोरियल	मानव शरीर रचना एवं क्रिया-विज्ञान	डॉ. महेन्द्र कुमार जाजपुरा
शरीर रचना एवं क्रिया-विज्ञान	डॉ. विमल कुमार मोदी	रोग, उनके कारण, लक्षण एवं उपचार	डॉ. महेन्द्र कुमार जाजपुरा
बिना दवा परफेक्ट हेल्थ	डॉ. बलराम पटेल	प्राण शक्ति उपचार; प्राचीन विज्ञान कला	चौ. कोक सुई
नवीन मेडिकल प्रवेश परीक्षा	नवीन ग्रुप ऑफ पब्लिकेशन्स्- इलाहाबाद	जीवनी शक्ति कैसे जगायें	डॉ. चन्द्र दीप सिंह

इकाई 3

श्वसन-संस्थान एवं उसके रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा

(Respiratory system & nature cure for its diseases)

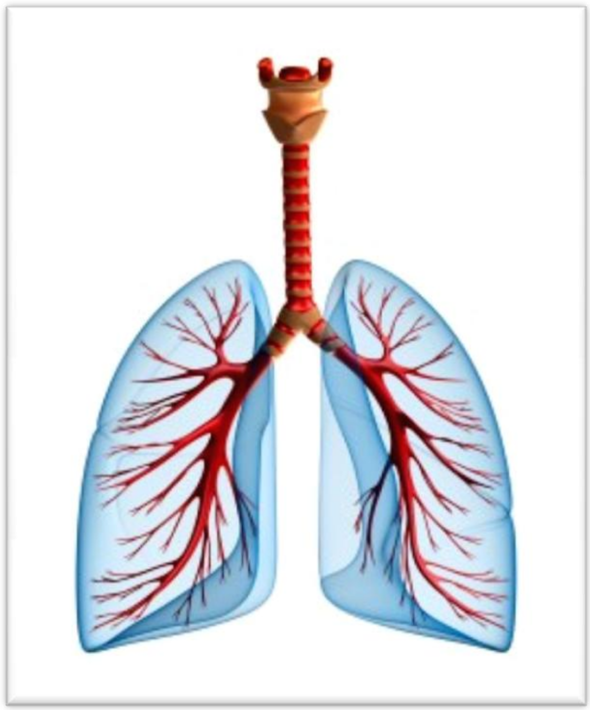

इकाई की रूपरेखा

3.1 उद्देश्य

3.2 प्रस्तावना

3.3 श्वसन संस्थान की कुछ विशिष्ट क्रियाएँ (**Other specific activities)**

3.4 श्वसन-संस्थान के रोगों की सूची

3.5 सारांश

3.6 बोधात्मक प्रश्न

3.7 संदर्भ ग्रंथ

3.1 उद्देश्य

इस अध्याय का मूल उद्देश्य इन बिन्दुओं की जानकारी प्राप्त करना है।

- श्वसन संस्थान की कुछ विशिष्ट क्रियाएँ
- श्वसन संस्थान की कुछ विशिष्ट क्रियाएँ **(Other specific activities)**
- श्वसन-संस्थान के रोगों की सूची

3.2 प्रस्तावना

मनुष्य भोजन एवं जल के बिना तो कुछ समय तक जीवित रह सकता है परन्तु ऑक्सीजन अर्थात् श्वसन के बिना साधारणतया 3-7 मिनट से ज्यादा जीवित नहीं रह सकता। शरीर के लिए भोजन और जल दोनों ही आवश्यक है, पर इनकी पूर्ति निरन्तर हो, ऐसी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि शरीर ग्लाइकोजन और वसा (fat) के रूप में भोजन को यकृत में संचित करके रख लेता है तथा जल भी प्रत्येक कोशा में उपर्युक्त मात्रा में रहता हैं। हानिकारक पदार्थ पैदा होते ही तुरन्त शरीर से निकल जायें , ये आवश्यक नहीं, परन्तु ऑक्सीजन शरीर को निरन्तर चाहिए, क्योंकि शरीर में उसको संचित करने की व्यवस्था नहीं हैं। शरीर की प्रत्येक कोशा को अपना कार्य सुचारू रूप से चलाने के लिए एवं थकान दूर करने के लिए ऊर्जा (energy) की आवश्यकता होती हैं। विशेषकर हृदय एवं मस्तिष्क की कोशाओं को ऑक्सीजन की निरन्तर आवश्यकता पड़ती है , जिसकी आपूर्ति होना अतिआवश्यक है। अन्यथा कुछ ही मिनटों में ऑक्सीजन के अभाव में वहाँ की कोशाएँ एवं ऊतक निष्क्रिय हो जाते है, हृदय धडक़ना बंद हो जाता है तथा मस्तिष्क की तंत्रिकाओं का कार्य भी शिथिल होकर निष्क्रिय होने लगता है। अत: स्पष्ट है कि ऑक्सीजन ही जीवन है।

शरीर को ऊर्जा (energy) पचे हुए भोजन के ऑक्सीकरण से इस प्रकार मिलती हैं-

भोजन + ऑक्सीजन = ऊर्जा + ताप + कार्बन डाई ऑक्साइड + त्याज्य पदार्थ

इस क्रिया के फलस्वरूप कार्बन-डाई-ऑक्साइड गैस बनती है जिसका शरीर से निकलना परम आवश्यक है, क्योंकि यह शरीर के लिए हानिकारक हैं।

वायुमण्डल से ऑक्सीजन के अन्तग्र्रहण करने का कार्य श्वसन-संस्थान करता है। श्वसन-संस्थान के द्वारा शरीर की प्रत्येक कोशिका को ऑक्सीजन की संपूर्ति प्राप्त कराती है और कोशिकाओं द्वारा उसका उपयोग हो जाने के बाद अपशिष्ट पदार्थ के रूप में कार्बन डाइऑक्साइड गैस बाहर निकलती है। अत: श्वसन-क्रिया शरीर की कोशिकाओं तथा वातावरणीय वायु के मध्य होने वाला पारस्परिक विनिमय अर्थात् आदान-प्रदान ही हैं, जो निरन्तर जीवन-पर्यन्त चलती रहती हैं।

3.3 श्वसन संस्थान की कुछ विशिष्ट क्रियाएँ (Other specific activities)

खाँसना एवं छींकना **(Coughing and Sneezing)**: खाँसना एवं छीकना दोनों ही श्वसन-संस्थान की रक्षात्मक प्रतिवर्त क्रियाएँ (protective reflex actions)है, जिनसे क्षोभक पदार्थो (irritant particles) को बाहर फेंक दिया जाता है।

हिचकी आना **(Hiccup)** : हिचकी डायाफ्राम में अचानक होने वाली अनैच्छिक ऐंठन है, जो प्राय: श्वसन क्रिया के सामान्य पेटर्न में गड़बड़ी होने से उत्पन्न होती है। हिचकियाँ पाचन संस्थान की तंत्रिकाओं की उत्तेजना से उत्पन्न हो सकती है, परन्तु श्वसन-संस्थान प्राय: सम्मिलित रहता है। जब डायाफ्राम अचानक संकुचित होता है, तो वायु इतनी शीघ्रता से प्रश्वसित होती है कि कण्ठच्छद(epiglottis) झटके के साथ बंद हो जाता है, जिसके फलत: हिचकी की ध्वनि उत्पन्न होती है। हिचकियाँ प्राय:2 से 5 मिनट तक रह सकती है, परन्तु कुछ मामलों में ये अधिक दिनों तक भी रह सकती है।

खर्राटे लेना **(Snoring)** : निद्रा के दौरान जब गले की पेशियाँ शिथिल(relax) हो जाती है तथा कोमल तालु के ढ़ीले ऊतक एवं काकलक आंशिक रूप से ऊपरी वायुमार्ग को अवरूद्ध कर देते है तो खर्राटे उत्पन्न हो जाते है।

आहें भरना **(Sighing)**, सिसकना **(Sobbing)**, रोना **(Crying)**, जम्हाई लेना **(Yawning)** एवं हँसना **(Laughing)** : ये सभी क्रियाएँ वस्तुत: दीर्घ प्रश्वास के ही विभिन्न रूप है, जो भावावेगी दशाओं के साथ प्रकट होते है।

3.4 श्वसन-संस्थान के रोगों की सूची

क्र.	हिन्दी या संस्कृत नाम	English name	क्र.	हिन्दी या संस्कृत नाम
1.	श्वासरोध	Asphyxia	25.	सुखी खाँसी, काली खाँसी
2.	अस्थमा, दमा	Asthma	26.	नाक पर फुंसियाँ
3.	नाक के भीतर व्रण या मसे या फुँसी	Boil of the nose	27.	नाकड़ा (नाक में सूजन)
4.	ब्रान्काइटिस	Bronchitis	28.	गले में काँटा चुभना
5.	ब्रान्को न्यूमोनिया	Broncho Pneumonia	29.	गले की खराश
6.	सर्दी-जुकाम (नजला-जुकाम)	Cold	30.	कण्ठमाला
7.	खाँसी या कास	Cough	31.	शिरा स्फीति और प्रदाह
8.	रोहिणी रोग	Diptheria	32.	पसलियों में पीड़ा
9.	नकसीर (नाक से रक्तस्त्राव)	Epistaxis, Bleeding from the nose		
10.	फेफड़ों से खून की उल्टी	Haemoptysis		
11.	हिचकी या हिक्का रोग	Hiccup		
12.	गला बैठना, आवाज दब जाना, स्वरभंग	Hoarseness		
13.	स्वरयंत्र प्रदाह (सूजन)	Laryngitis		
14.	गले की सूजन	Mumps		
15.	गलनाली की सूजन	Pharyngitis		
16.	फुफ्फुसावरण-प्रदाह	Pleurisy		
17.	न्यूमोनिया	Pneumonia		
18.	साईनोसाइटिस	Sinusitis		
19.	खर्राटे लेना	Snoring		

20.	हकलाना–तुतलाना	Stammering-Lisping
21.	गले के रोग	Throat disease
22.	टांसिल, गलग्रंथि, काकल की सूजन	Tonsil, Tonsilitis
23.	राजयक्ष्मा, क्षय रोग, टी.बी.	Tuberculosis (T.B.)
24.	कुकुर खाँसी	Whooping cough

1. सर्दी-जुकाम **(COLD & CORYZA)**

परिचय : नाक के रास्ते पतले कफ निकलने को सर्दी-जुकाम कहते है।

कारण : सर्दी-जुकाम शारीरिक जीवनी-शक्ति का परिणाम है, जो हमारे आहार-विहार की बुरी आदतों के कारण शरीर में जमा अपशिष्ठ-मल को बाहर निकालने की क्रिया है। कब्ज रहना भी इस रोग का मुख्य कारण है। कफ तथा वायुकारक वस्तुओं का प्रयोग, शरीर को आवश्यकतानुसार गर्म न रखना, शरीर से पसीना न निकलना आदि के कारण यह रोग होता है।

लक्षण : इससे आंखें लाल , गला खराब तथा सिर भारी रहता है। हम जो कुछ भी खाते है उसकी पाचन क्रिया पूरी होने पर बने रक्त का ऑक्सीजनीकरण होता है। नाक के रास्ते में अपशिष्ट ï जमा होने से पूरी ऑक्सीजन न मिलने पर यह क्रिया पूरी नहीं होती और रक्त में आवश्यक गर्मी न आने से सर्दी-जुकाम होता है। इससे नाक की संूघने की शक्ति तथा जुबान के स्वाद का भी पता नहीं चलता। तीन-चार दिनों के बाद बलगम गाढ़ा हो जाता है और फिर हल्की खांसी या छींकों के साथ कफ निकलता है। यदि सर्दी-जुकाम बना रहे तो आंखे कमजोर, कम सुनाई पडऩा, बालों का झडऩा और सफेद हो जाना आदि लक्षण दिखते है।

प्राकृतिक चिकित्सा : 1. यौगिक क्रिया- सर्दी-जुकाम आरम्भ होते ही रोगी बायां नासाछिद्र बन्द रखकर दायें से धीमी-लम्बी-गहरी श्वास लें। तो थोड़ी ही देर बाद सर्दी-जुकाम ठीक हो जाता है।

यदि रोगी सबल है तो उसे हल्की धूप में थोड़ी देर टहलकर शरीर को गरम करना चाहिए। फिर तुरन्त एक मिनट के लिए स्पंज-स्नान लेकर पुन: शरीर को गरम करें। परन्तु दुर्बल रोगी बिस्तर पर लेटे और आध-आध घंटा पर एक-एक गिलास गुनगुने पानी में नींबू का रस डालकर पीयें। ऐसा करने से नाक खुलकर बहने लगेगी और सर्दी का जोर बहुत कुछ कम हो जायेगा।

जल या रबड़ नेति प्रतिदिन करके सदा के लिए सर्दी-जुकाम से बचा जा सकता है। इसके बाद भस्त्रिका प्राणायाम करना और सफेदे के पत्तों को उबालकर वाष्प लेना लाभप्रद है।

2. उपचार- सर्दी-जुकाम में पेडू पर 20-30 मिनट मिट्टी की पट्टी रखे और कुनकुने पानी का एनिमा लें। या पैरों का स्नान लेने पर छाती साफ होकर जुकाम ठीक हो जाता है।

छाती तथा पीठ की धूप में मालिश तथा दोनों जगह थपकी देने से भी छाती खुलती है। धूप में मालिश के बाद स्नान कर लें।

3. आहार- जिसे सर्दी-जुकाम अधिक दिनों तक बना रहता है। वे सर्दी-जुकाम के

समय उपवास करें। प्रति एक-ड़ेढ़ घण्टे के अन्तराल गुनगुने पानी , नींबू का रस तथा साधारण पानी के साथ नींबू व शहद मिलाकर लें। या एक सप्ताह सिर्फ सन्तरा , रसदार फल व सब्जी का रस या सूप पीयें या दिन में 6 बार अदरक , इलायची, कालीमिर्च की चाय पीयें। इससे पूरे शरीर में परिवर्तन होकर जुकाम का कारण ही दूर हो जाता है।

पुराने और बिगड़े सर्दी-जुकाम : सर्दी-जुकाम में दवायें अपशिष्ट ं विष को शरीर से बाहर नहीं निकलने देती है। जिसका परिणाम निमोनिया , ब्रोंकाइटिस, इन्फ्लोएन्जा, पीनस तथा तपेदिक जैसे भयानक और प्राणलेवा रोगों का जन्म होता है।

पुराने और बिगड़े हुए सर्दी-जुकाम की चिकित्सा : पहले 1-2 दिन का उपवास व उपवास में नींबू रस का उपयोग करें। फिर एक सप्ताह तक रसदार फल लें। प्रतिदिन एनिमा का प्रयोग करें। प्रतिदिन प्रात: योगासन-प्राणायाम , कटि स्नान या पैरों का गरम स्नान लें। पूर्ण विश्राम के साथ हर 1-1 घंटे पर प्रचुर गरम जल पीयें। ज्वर पैदा होने पर एक घण्टे तक छाती और कंधों की पट्टी लगाने के बाद पैरों का गरम स्नान लें। शुद्ध, खुली और हवादार जगह में रहें। प्रतिदिन प्रात: जल व रबड़ नेति का लाभ लें। हल्की धूप लें। एप्सम्ं साल्ट बाथ सप्ताह में एक बार लें। सूर्य तप्त जल 2 नारंगी + 1 गहरे नीला + 1 हरा मिलाकर 25 ग्राम की खुराक से दिन में 6 खुराक पीना चाहिए।

सर्दी-जुकाम के कारण गले की खराश को ठीक करने के लिए गुनगुने पानी में नींबू और नमक मिलाकर दिन में तीन बार गरारा करना चाहिए और गर्दन की सूति-ऊनी पट्टी एक घंटे के लिए बांधें।

सर्दी-जुकाम बंद नाक होने पर श्वास लेने में कष्ट होता है। सिर पर निचोड़ा हुआ भीगा कपड़ा रखकर चेहरे पर 15-20 मिनट तक भाप नहान लें तथा श्वास के साथ भाप को भीतर खींचें। उसके बाद कंधों और छाती पर भीगे कपड़े की पट्टी डेढ़-दो घंटे तक बांधें।

सीने में कफ की रूकावट मालूम होने पर सीने की गरम पानी में तौलिया भिगोकर दो-तीन बार सेंक करें। तत्पश्चात् सीने पर सूती-ऊनी पट्टी बांधें तथा सोते समय सरसों का तेल छाती पर मलने से भी छाती खुलती है।

2. ब्रान्काइटिस **(BRANKAITIS)**

परिचय : जीर्ण जुकाम को श्वास-नली प्रदाह या ब्रान्काइटिस कहते है।

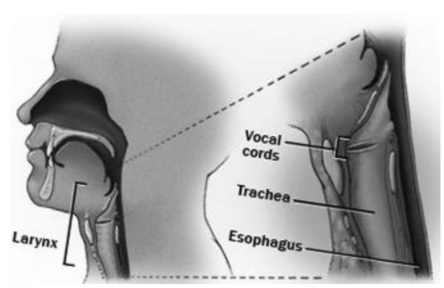

कारण एवं लक्षण : ब्रान्काइटिस में स्वर-नली की झिल्ली में विजातीय द्रव्य की उपस्थिति के कारण जलन होने लगती, वेदनायुक्त सूखी खांसी, स्वरभंग, श्वास-कष्टं, छाती व गले में दर्द, गाढ़ा-गाढ़ा कफ निकलता तथा गला घर्र-घर्र करता तथा कभी-कभी तेज ज्वर आदि लक्षण दिखते है।

प्राकृतिक चिकित्सा : नयी ब्रोन्काइटिस में दो दिन उपवास, फिर रसाहार, तत्पश्चात् फलाहार करें। नित्य एनिमा तथा छाती पर सूती-ऊनी पट्टी लें। गहरी नीली बोतल का सूर्यतप्त जल25 ग्राम की 6 खुराकें दिन में पियें।

पुरानी ब्रान्काइटिस में रोगी को गर्म पानी पिलाकर तथा सिर पर ठंड़े पानी से भीगी एक तौलिया रखकर उसे पैरों का गरम स्नान दो। उसके बाद कटि स्नान या गीली चादर की लपेट दो। तत्पश्चात् कम्बल ओढक़र पूर्ण विश्राम करावें। धूप में शरीर की तेल मालिश लेकर गर्म पानी से स्नान करें। रोग की बढ़ी हुई दशा में छाती पर भाप-स्नान देकर सूती-ऊनी पट्टी बांधें। सूखी खांसी या कफ की हालत में दिन में कई बार गरम नीबू-पानी पीना चाहिए और गरम पानी की भाप लें और खुली हवा में रहना और सोना चाहिए। सप्ताह में दो बार एप्सम् साल्ट बाथ लें। नारंगी रंग की बोतल के सूर्य तप्त जल की 30 ग्राम की प्रतिदिन 4 खुराकें लें।

आहार व व्यायाम- पुरानी ब्रान्काइटिस को दूर करने के लिए क्षारधर्मी आहार तथा उचित व्यायाम की बड़ी आवश्यकता होती है। सर्व प्रथम रोगी को 2-3 दिनों तक फलों के रस या सूप पर रहना चाहिए और कब्ज टूटने तक एनिमा। तत्पश्चात् सादे भोजन पर रहते हुए मौसमी फल, शाक-सब्जी (आलू, केला, कटहल छोडक़र), सूखे मेवे, धारोष्ण दूध, चोकर आटे की रोटी, छिलकेदार दाल, नीबू का रस, मट्ठा या मीठा दही मिलाकर सलाद आदि क्षारधर्मी आहार लें। तला-भूना और मिर्च-मसाला न खायें। नित्य शारीरिक व्यायाम जैसे स्वच्छ वायु में प्रात:काल टहलना तथा गहरी श्वास लेने की कसरतें और प्राणायाम अवश्य करने चाहिए।

3. साईनोसाइटिस **(CYNOSAITIS)**

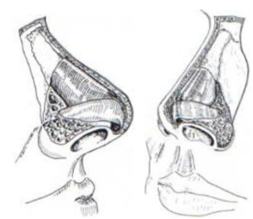

परिचय : नाक की जड़ के पास की हड्डियों के ढ़ांचे में स्थित छिद्र साइनस कहलाते है।

कारण एवं लक्षण : इस रोग का भी कारण विजातीय द्रव्य का साइनस में एकत्र होना है और सूजन उत्पन्न करना है। जिससे आवाज भारी, स्वाद और गन्ध को ग्रहण करने की शक्ति में फर्क, नाक के पिछले भाग में भारीपन तथा थोड़े तनाव की अनुभूति, सिर में दर्द, सर्दी और जुकाम एवं ज्वर का बार-बार होना और सिर में असह्य का पीड़ा होना आदि लक्षण दिखते है।

प्राकृतिक चिकित्सा : इस रोग से छुटकारा पाने के लिए समूचे शरीर के रक्त की शुद्धि करनी पड़ती है। इस रोग के रोगी को अपना इलाज प्रतिदिन जल व रबड़ नेति से करना आवश्यक है। दो दिनों का उपवास करें और कब्ज हो तो एनिमा लें। तत्पश्चात् 14-15 दिनों तक उबली हुई शाक-सब्जी, मौसमी, फल, शहद तथा सूखे मेवों पर रहना चाहिए। प्रतिदिन पेडू पर मिट्टी की पट्टी30 मिनट तक लें। प्रतिदिन दो बार चेहरे पर 5 मिनट तक भाप लें। उसके बाद उसे भीगी और निचोड़ी तौलिया से पौंछना चाहिए। रात को सोते समय पैरों का गरम स्नान 15 मिनट तक लेकर तुरन्त एक मिनट तक ठण्ड़े पानी में पैर रखने चाहिए।

4. खांसी **(COUGH)**

परिचय : खांसी भी रोग का लक्षण है। श्वास नली के द्वार से हवा को झटके के साथ निकलने की आवाज खांसी कहलाती है।

कारण : शरीर की प्रकृति खांसी को उत्पन्न कर गले, कंठ नली अथवा वायु प्रणाली में अटके कफ या विजातिय पदार्थ आदि को बाहर निकालने के लिए जोरदार कोशिश होती है। खांसी के प्रकार-

1. खांसी के साथ कफ निकले तो वह तर खांसी कहलाती है।

2. खांसी के साथ कफ नहीं निकले तो वह सूखी खांसी कहलाती है।

3. एक सप्ताह से अधिक खांसी लगातार आती रहे और खांसते समय सीने में दर्द मालूम हो तो वह दमा कहलाती है।

प्राकृतिक चिकित्सा : 2-3 दिन का उपवास या रसाहार करके कब्ज टूटने तक गुनगुने पानी का एनिमा लें। फिर 2-5 दिन फलाहार या उबली साग-सब्जी पर रहें। नींबू-पानी प्रचुर मात्रा में पीवें।

जब खांसी के साथ ज्वर भी रहे तो पेडू पर मिट्टी की पट्टी रात भर लें। परन्तु ज्वर न हो तो कमर की सूती-ऊनी पट्टी लगावें। सुबह व रात में छाती को बारी-बारी से गरम-ठंडी सेंक देकर एक घंटें के लिए छाती और कन्धों पर भीगी पट्टी बांधे। सुबह उदर-स्नान करें। दोपहर को सिर पर भीगा गमछा रखकर मुंह बन्द करके नाक के नथुनों से भाप खीचें फिर ठंड़े पानी से भीगी तौलिया से सारा शरीर पौंछें। उसके बाद पुन: 10 मिनट तक कटि-स्नान लें। घर्षण स्नान के बाद योगासन-प्राणायाम करें।

तर खांसी में नारंगी रंग तथा सूखी खांसी में गहरी नीली और पुरानी खांसी में पीली बोतल के सूर्य तप्त जल की आधी-आधी छंटाक की 6 खुराकें रोज पीने से कुछ ही दिनों में खांसी ठीक हो जाती है।

लहसुन के रस को रूई में डालकर सूंघना तथा प्याज के अर्क को शहद के साथ चाटना लाभप्रद है।

गर्दन व श्वास सम्बन्धी व्याधियों में गर्दन का व्यायाम उपयोगी है।

5. टांसिल (गलग्रन्थि) **(TONSIL)**

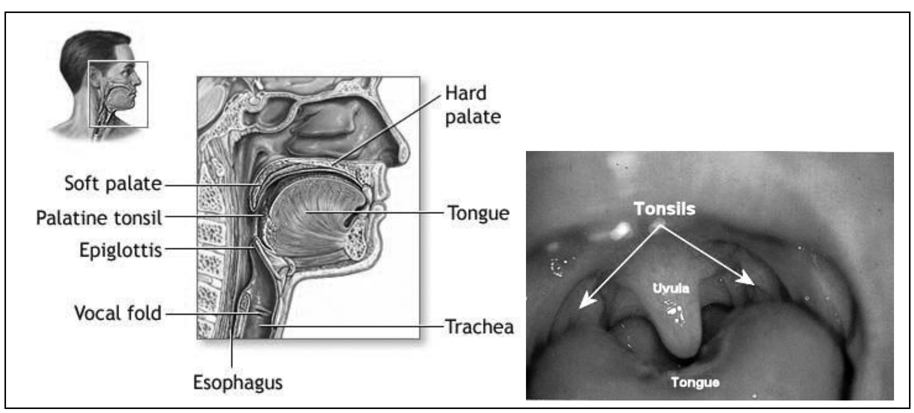

कारण एवं लक्षण : गल ग्रन्थि अर्थात् टांसिल का बढ़ना व फूलना मुख्यतया पेट में विषैले पदार्थों का अधिक मात्रा में एकत्र होना हैं तथा समय-समय पर ठंड़ लग जाना , जल में भीगना , अत्यधिक परिश्रम, बन्द हवा में श्वास लेना तथा स्वरयन्त्र को अधिकाधिक काम में लाना आदि मुख्य कारण है। इसका इलाज आपरेशन कराना नहीं , बल्कि कब्ज को दूर कर शरीर को निर्विकार बनाना है। शरीर की प्रकृति टांसिल वृद्धिकर घेघा , फोड़ा-फुन्सी के रूप में विकारों को बाहर निकालने की पूरी कोशिश होती है।

प्राकृतिक चिकित्सा : 2-4 दिन तक फलों का रस या शाक तरकारी का सूप ही लें। फिर 2 दिन फल और दूध पर रहें। तत्पश्चा **त्** सुबह को फल-दूध दोपहर को चोकरदार रोटी और उबली सब्जी , मीठा दही या मठ्ठा और सलाद और शाम को दूध और फल या सूखे मेवें खायें। तली-भुनी चीजें, मिर्च-मसाला, अधिक नमक, चाय-काफी, तेल, चीनी, खटाई, मांस-मछली, आचार, मैदा, चावल, बर्फ, रबड़ी-मलाई, अति परिश्रम तथा बहुत बोलने से कुछ दिनों तक परहेज करना चाहिए। पानी प्रचुर मात्रा में पीवें।

पेडू पर 30 मिनट मिट्टी की पट्टी रखें और गुनगुने पानी में 8-10 बूंद नीबू का रस निचोड़ कर एनिमा लें, रातभर के लिए कमर की सूती-ऊनी पट्टी लगायें। सप्ताह में एक शाम को सोने से पहले हॉट एप्सम साल्ट्स बाथ लें। दिन में दो बार टांसिल, हलक, गला और गर्दन पर 5-10 मिनट तक भाप दें। उसके बाद गरम नींबू-पानी का गरारा करें। तत्पश्चात् 1-2 घंटे तक गले व टांसिल को ढक़ते हुए सूती-ऊनी पट्टी या मिट्टी पट्टी बांधें।

नींबू व शहद मिलाकर अंगुली से अन्दर की तरफ टांसिलों पर सुबह-शाम मालिश करें तथा मक्खन से कंठ और ग्रीवा की मालिश करें। यदि मालिश करते समय रक्त या पीव निकले तो भय न करें।

नीली बोतल का सूर्य तप्त जल रोगी को प्रतिदिन आधी-आधी छटांक की6 खुराक पिलायें।

6. कण्ठमाला **(GOITER)**

गले की ओर बढ़ते विष की सफाई कण्ठमाला, गलगण्ड़ या गर्दन की गांठे , घेघा के रूप में होती है।

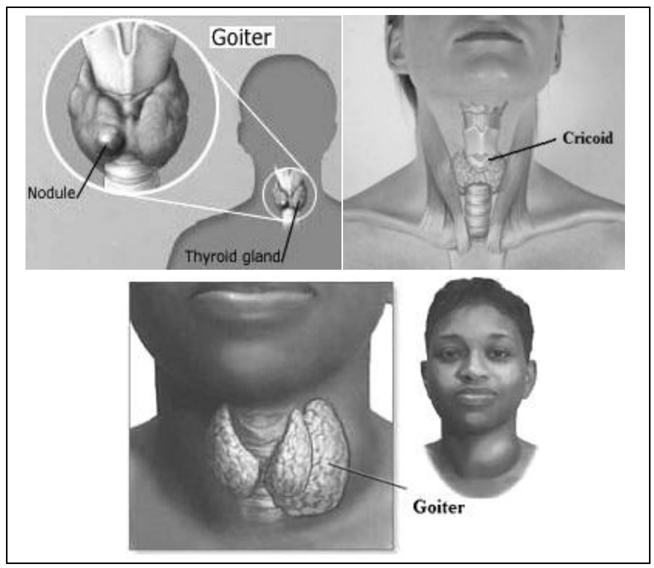

प्राकृतिक चिकित्सा : इसके लिए एक दो दिन उपवास या रसाहार और एनिमा लेकर पेट को साफ करें। प्रति दिन कटि या मेहन स्नान लें। गांठों पर भाप देकर दिन में तीन बार मिट्टी की पट्टी बांधें। सप्ताह में दो बार एक एप्सम साल्ट बाथ भी लेना चाहिए तथा प्रतिदिन योगासन-प्राणायाम करें। गांठों पर 10-15 मिनट तक नीला प्रकाश डालें।

रात में गांठों पर हरी बोतल का सूर्य तप्त तेल लगायें। आसमानी 2 तथा लाल रंग 1 की बोतल का सूर्यतप्त जल मिलाकर 30 ग्राम की तीन खुराकें प्रतिदिन पीनी चाहिए।

7. गला बैठना **(HOARSENESS)**

कारण एवं लक्षण : जोर से भाषण देने, अधिक गाना गाने , चिल्लाने, ठंड़ लगने , सीलन की जगह पर रहने से स्वर नली के स्नायुओं पर अनावश्यक जोर पडऩे के कारण वे निर्बल पड़ जाती है तथा शरीर स्थित विजातीय द्रव्य के किसी तरह हलक तक पहुँचने से कभी-कभी गला बैठ जाता है, फलत: आवाज भारी या आवाज बिल्कुल ही नहीं निकलती , गले की खुश्की, कभी-कभी सूखी खांसी तथा श्वास लेने में कष्ट आदि उपद्रव खड़े हो जाते है।

प्राकृतिक चिकित्सा : सर्वप्रथम दो तीन दिनों तक पेडू पर मिट्टी की पट्टी देकर और उसके बाद एनिमा लेकर पेट को साफ कर लेना चाहिए साथ ही नीचे का चिकित्सा क्रम चलाना चाहिए।

सुबह-शाम डेढ़ घंटे तक गले के चारों तरफ कपड़े की या मिट्टी की गीली पट्टी लगानी चाहिए। दोपहर में गला, छाती और कन्धों तक ठंड़ा और गरम सेंक बारी-बारी से देना चाहिए।

हर दूसरे दिन उष्णपाद-स्नान भी देना चाहिए। रोज नमक मिले गरम पानी से गरारा करना चाहिए तथा सुबह शाम एक-एक गिलास नमकीन गरम पानी फूंक-फंक कर पीना भी चाहिए। एक सप्ताह तक केवल चोकरदार रोटी और उबली सब्जी पर रहना चाहिए या फल और दूध पर। रोज नींबू का रस मिला हुआ पानी कई बार पीना चाहिए। गहरी नीली बोतल का सूर्य तप्त जल दिन में छ: बार पीना चाहिए 50-50 ग्राम की मात्रा से।

9. राजयक्ष्मा (टी.बी.) **(TUBERCULOSIS or TUBERCLE BACILLUS)**

परिचय एवं कारण : खान-पान और रहन-सहन की गलतियों तथा दवाओं के दुष्परिणाम से रोगी का शरीर विजातीय द्रव्य से लद जाता है जिससे उसके शरीर से तत्व या धातु का ह्रास होने लगता है। क्षय रोगी का खाना नहीं पचने से शरीर में रस , रक्त, मांस, मेदा, अस्थि, मज्जा एवं वीर्य आदि धातुओं की एकाएक कमी होना शुरू हो जाती है। यह छूत का रोग है। जो अधिक गर्मी , अधिक प्रकाश, स्वच्छ स्थान, स्वस्थ शरीर एवं शुद्ध रक्त के सम्पर्क में आते ही इनका प्रभाव खत्म हो जाता है।

इसके तीन प्रकार है- फुफ्फुसीय क्षय, पेट का क्षय तथा हड्डी क्षय।

लक्षण : फुफ्फुसीय क्षय का समय पर मालुम न चलने से पीड़ित रोगी बहुत कम बचते है। इससे पीड़ित रोगी को श्वास की बीमारी, कफ के साथ रक्त आना, खांसते समय सीने व सिर में दर्द, भूख नहीं लगना, पाचन की खराबी, हड्डी गलना, कन्धों में पीड़ा, कान या आंख की कोई बीमारी, नाड़ी तेज या असमान गति, पेचिस की शिकायत, अनिद्रा, दुर्बल, चेहरा पीला, अनायास पसीना आना, नींद में बड़बड़ाना, दांत किटकिटाना, वजन घट जाता है।

पेट के क्षय की पहचान भी बड़ी कठिन है। पेट में क्षय की गांठे पड़ जाती है। यह रोग बढने़ पर संग्रहणी कहलाता है, जिसमें रोगी को दस्त आया करती है।

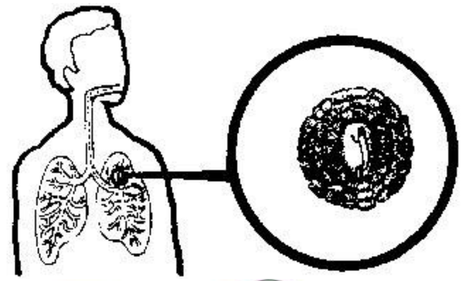

हड्‌डी के क्षय में शरीर पर फोड़े और जख्म बने रहते है, जो ठीक नहीं होते है।

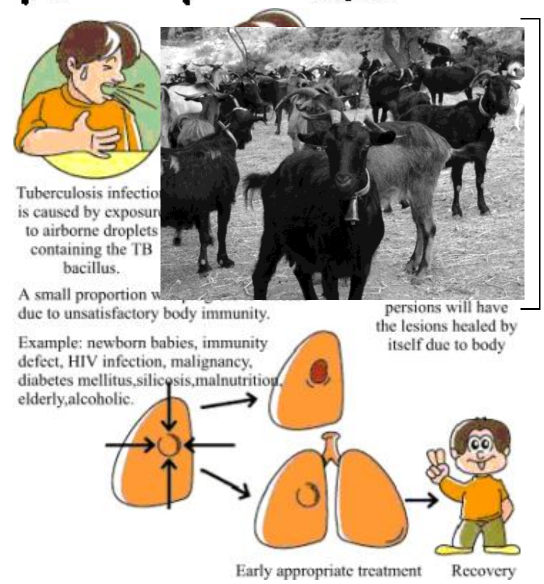

प्राकृतिक चिकित्सा : क्षय रोग से ग्रस्त होने पर कफ व थूक को प्रतिदिन जला दें, बर्तन व कपड़े दूसरा कोई इस्तेमाल न करे, कपड़े व बिस्तर प्रतिदिन धूप में सुखाये, बस्ती से दूर खुले और शुद्ध स्थान पर रहें, जहां वायु, प्रकाश तथा धूप यथेष्टं हो। रोगी जितना विश्राम करेगा, उसका रोग उतनी ही जल्दी भागेगा। देवदार के पेड़ लगाये, बकरियाँ पाले और उसके दूध से दुग्ध-कल्प करें। यदि रोगी को बकरियों के झुंड़ में रखा जाये तो अत्याधिक लाभ होगा, क्योंकि बकरियों की श्वास व महक में जो अमोनिया गैस निकलती है, वह रोगियों के लिए रामबाण का काम करती है। दिन में 4-5 बार बकरी का दूध और फल लें। सन्तरे का नाश्ता या दूध-किशमिश। सिर्फ दोपहर में चोकर आटे की रोटी और उबली भाजी लें। प्रतिदिन एनिमा लें। टहले-व्यायाम-योगासन-प्राणायाम करें। कटि या मेहन स्नान, कभी-कभी मालिश, घर्षण स्नान एवं पेडू पर मिट्टी पट्टीलें।

गहरी नीली बोतल का सूर्यतप्त जल 50 ग्राम की 6 खुराके नींबू-पानी के साथ लें। शहद के साथ प्याज या लहसुन का रस चाटें।

9. दमा **(ASTHMA)**

कारण एवं लक्षण : खान-पान और रहन-सहन की गलतियों से फेफड़ों, हृदय, गुर्दों, आंतों, स्नायु-मण्डल में आई दुर्बलता एवं नाक के पुराने रोग के फलस्वरूप दमा रोग की उत्पति होती है। दमा में श्वास नलिकाओं के संकुचित होने और उनमें कफ बढ़ जाने से रोगी को श्वास-प्रश्वास में कष्ट होता है और सीने की असंख्य ग्रन्थियां कफ से बुरी तरह प्रभावित होती हैं। जब कब्ज होने लगता तब दूषित रक्त शरीर में कफ की उत्पत्ति कर दमा के दौरे को बढ़ाता है। श्वास कष्ठ से पसीना छूटने लगता है।

छोड़े अपनाये

प्राकृतिक चिकित्सा : दमा का दौर शांत होने तक उपवास करें। नमक और चीनी छोड़ दें। प्रात: काल टहले-व्यायाम-योगासन-प्राणायाम करें। मनोरोगों से दूर रहें। धूएं और गंदी हवा से बचें। नित्य प्रात:काल धूप सेवन करें और छाती पर सरसों के तेल की मालिश करावें। प्रतिदिन शाम को एक घंटे के लिए सीने पर सूती-ऊनी पट्टी बांधें। पैरों का गरम स्नान लेकर गर्दन, छाती, कंधों के ऊपरी भाग एवं पीठ पर सूती-ऊनी पट्टी बांधें, साथ ही पूरे पेट, छाती और पीठ की सेंक करें। सोते समय कमर पर सूती-ऊनी पट्टी बांधें। सुबह-शाम पेडू पर मिट्टी पट्टी के बाद गुनगुने पानी का एनिमा लें। सप्ताह में एक बार समूचे शरीर का भाप स्नान लें। सप्ताह में दो बार प्रात: जल धौती तथा एप्सम-साल्ट बाथ लें। सुबह-शाम स्पंज बाथ, सप्ताह में एक बार पूरे शरीर की गीली चादर की लपेट लें।

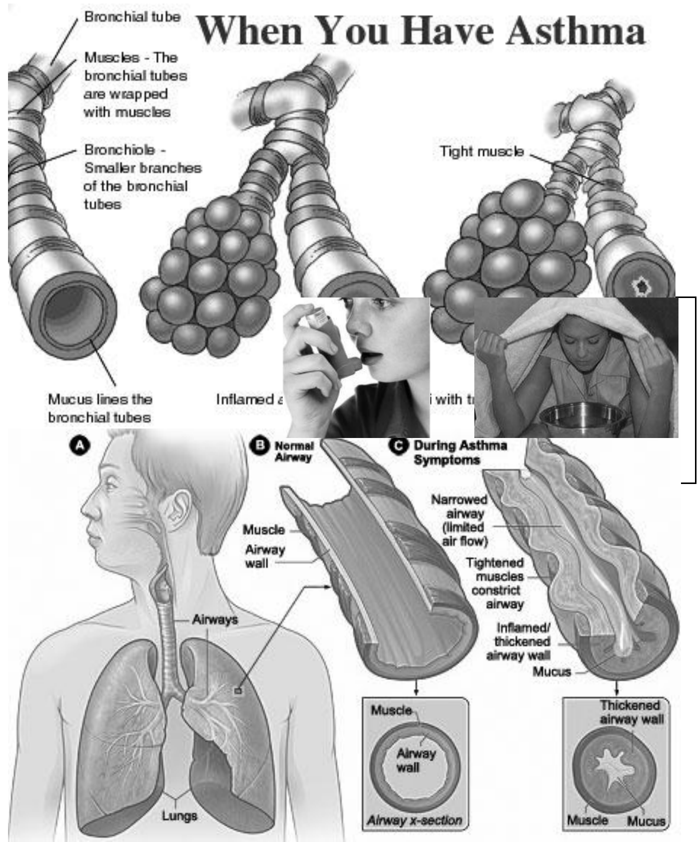

प्यास लगने पर सुनहरी बोतल का सूर्यतप्त जल 50 ग्राम और गुनगुना नींबू-पानी पीयें। शुद्ध शहद चाटें। सूखी श्वास हो तो छाती पर लाल शीशी का सूर्य तप्त तेल मलें। भोजन में दूध, फल, सब्जी, चोकर आटा व दलिया खायें।

10. फुफ्फुसावरण-प्रदाह **(PLEURISY)**

परिचय : फुफ्फुस पर दो आवरण होते है। इन दोनों के बीच लसीका भरा रहता है जो दोनों को परस्पर घर्षण से बचाता है। परन्तु अपशिष्टां के प्रभाव या लसीका का सूख जाने या बह जाने से इन दोनों में घर्षण से दर्द उत्पन्न होता है। तब श्वास लेने में तकलीफ और पीड़ा होती है। उसे ही फुफ्फुसावरण-प्रदाह कहते है। घर्षण की आवाज स्टेथोस्कोप से सुनी जा सकती है। इसके दो प्रकार है- शुष्क और आद्र्र।

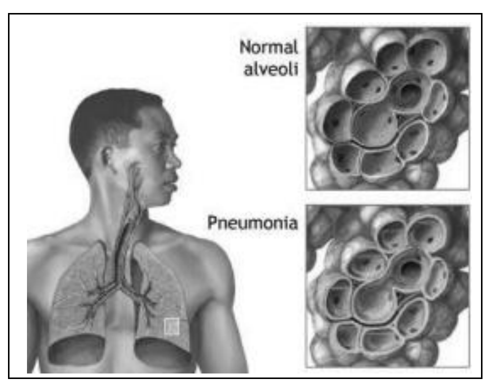

कारण एवं लक्षण : इसका शीघ्र उपचार न होने पर उन आवरणों में सूजन और बीच में जल का संचय होने लगता है, तब कष्टां ओर बढ़ जाता, श्वास दर अस्वभाविक चलने लगती, जल के दबाव से फेफड़े

सिकुड़ जाते, फेफड़ों की कार्यप्रणाली में बाधा उत्पन्न होती, हृदय प्रभावित होता, ज्वर-खांसी-प्यास सताती, मूत्र का रंग लाल हो जाता एवं भूख बन्द हो जाती है। जब उन आवरणों का जल पीव में रूपान्तरित होने लगता तो खतरा ओर बढ़ जाता है।

इसके अलावा राजयक्ष्मा, निमोनिया, फुफ्फुसावरणों में चोट, फुफ्फुसावरण में सूजन, वक्ष की दीवारों में फोड़ा, वक्षास्थि रोग, वक्षास्थि का टूटकर फुफ्फुसावरण में घुसना एवं ठंड़ लगना आदि से भी फुफ्फुसावरण-प्रदाह होने लगता है।

प्राकृतिक चिकित्सा : रोगी को पूर्ण विश्राम करना चाहिए और प्रतिदिन सुबह-शाम एनिमा लें। एक सप्ताह तक रसाहार करें। फिर 1 माह तक फल व तरकारियों पर रहें। कटि-स्नान या पेडू पर मिट्टी पट्टी लें। धूप स्नान लें। प्रतिदिन दो बार पूरे शरीर की गीली चादर की लपेट गुनगुने पानी पीकर लें। उसके बाद छाती व पीठ पर शीतल घर्षण करें। फिर 4 घंटे बाद छाती पर भाप देकर गरम-ठंड़ी सेंक 15-20 मिनट तक दें। तत्पश्चा**त्** डेढ़ घंटे के लिए छाती पर ऊनी पट्टी बांधें।

पुन: छाती पर गरम-ठंड़ी सेंक दें। रोगी को दिन में सोना नहीं चाहिए तथा ठंड़ से बचने के लिए शरीर को गले तक ढंक़ना चाहिए। पैरों को गरम रखने के लिए गरम पट्टी बांधें।

रोगी की छाती पर प्रतिदिन नीला प्रकाश डालना चाहिए। साथ ही पीली बोतल का सूर्यतप्त जल50 ग्राम की 4 खुराक लें। पानी कम पीयें, सोते समय एक गिलास पालक का रस या संतरे या नींबू का रस मिला पानी या दूध फाडक़र उसका पानी पीयें।

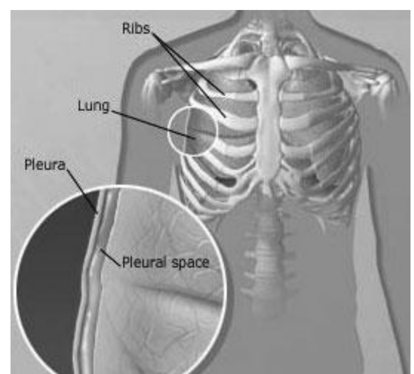

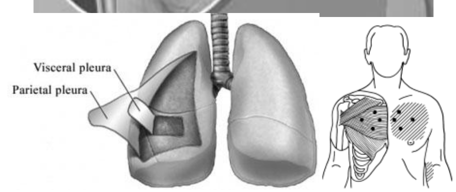

11. फुफ्फुस प्रदाह **(PNEUMONIA)**

परिचय : फुफ्फुसों में विषाक्त रक्त के ठहरने से उत्पन्न प्रदाह न्यूमोनिया कहलाता है।

कारण एवं लक्षण : शीतल पदार्थो के सेवन, शीतल जगह में रहने, उष्ण स्थान से अकस्मा**त्** शीतल जगह पर आने, पसीना न निकलने, सर्दी व ऋतुपरिवर्तन के समय न्यूमोनिया अधिक सताता है। रोगी को पहले अकस्मा**त्** जाड़ा मालूम होकर ज्वर चढ़ता, सूखी खांसी आती, होठों पर फुंसियां निकलती, मुंह का रंग नीलापन लिये लाल हो जाता, श्वास लेने में कष्टा, नथुने फूल जाते, नींद नहीं आती, नाड़ी की गति अनियमित हो जाती, सिर दर्द बढ़ जाता है तथा रोग की बढ़ी हुई अवस्था में फुफ्फुस में पीव पडऩे पर श्वास में बदबू आने लगती है।

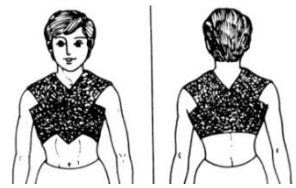

प्राकृतिक चिकित्सा : रोगी अपने बदन को ढ़ंककर पूर्ण विश्राम करें और सफाई का पूरा ध्यान रखें। रोगी के कमरे में शुद्ध वायु का प्रवेश हो, पर उसे हवा के झोंके न लगें। रोगी को आधे या एक घंटे के अन्तराल एक गिलास गरम नींबू-पानी पीयें। सुबह-शाम गुनगुने पानी का एनिमा लें। रोग की वृद्धि और ज्वर रहने तक उपवास करें। सप्ताह में 3 बार पूरे शरीर की गीली चादर की लपेट या पैरों को गरम स्नान लें। पसीना लाने वाले इन स्नानों के बाद स्पंज बाथ लें। दोपहर में रोगी के पेट और पीठ पर भाप देने के बाद दोनों पैर व कंधों, छाती और पेट पर ऊनी पट्टी बांधें और सारे बदन को ढंक़ दें। प्रतिदिन सिर धोकर शीघ्र स्नान करें। ज्वर में पेडू पर मिट्टी पट्टी रखें। पेट दर्द के समय पूरे पेट पर गरम-ठंडी सेंक दें। ज्वर में उपवास, फिर सुबह संतरे या टमाटर या खरबूजे का रस लें, शाम को उबली हुई तरकारी और सलाद लें। गहरी नीली 3 + पीली 1 बोतल का सूर्य तप्त जल 50 ग्राम 8 खुराक लें।

3.5 **सारांश**

मनुष्य भोजन एवं जल के बिना तो कुछ समय तक जीवित रह सकता है परन्तु ऑक्सीजन अर्थात् श्वसन के बिना साधारणतया 3-7 मिनट से ज्यादा जीवित नहीं रह सकता। शरीर के लिए भोजन और जल दोनों ही आवश्यक है , पर इनकी पूर्ति निरन्तर हो , ऐसी आवश्यकता नहीं है , क्योंकि शरीर ग्लाइकोजन और वसा (fat) के रूप में भोजन को यकृत में संचित करके रख लेता है तथा जल भी प्रत्येक कोशा में उपर्युक्त मात्रा में रहता हैं।

हिचकी आना **(Hiccup)** : हिचकी डायाफ्राम में अचानक होने वाली अनैच्छिक ऐंठन है, जो प्राय: श्वसन क्रिया के सामान्य पेटर्न में गड़बड़ी होने से उत्पन्न होती है। हिचकियाँ पाचन संस्थान की तंत्रिकाओं की उत्तेजना से उत्पन्न हो सकती है, परन्तु श्वसन-संस्थान प्राय: सम्मिलित रहता है। जब डायाफ्राम अचानक संकुचित होता है, तो वायु इतनी शीघ्रता से प्रश्वसित होती है कि कण्ठच्छद(epiglottis) झटके के साथ बंद हो जाता है, जिसके फलत: हिचकी की ध्वनि उत्पन्न होती है। हिचकियाँ प्राय:2 से 5 मिनट तक रह सकती है, परन्तु कुछ मामलों में ये अधिक दिनों तक भी रह सकती है।

3.6 **बोधात्मक प्रश्न**

1. सर्दी-जुकाम (Cold) का कारण, लक्षण एवं प्राकृतिक चिकित्सा का वर्णन करो?
2. ब्रान्काइटिस (Brankaitis) का कारण, लक्षण एवं प्राकृतिक चिकित्सा का वर्णन करो?
3. साईनोसाइटिस (Cynosaitis) की प्राकृतिक चिकित्सा बताइये?
4. खांसी (Cough) का कारण, लक्षण एवं प्राकृतिक चिकित्सा का वर्णन करो?
5. टांसिल (गलग्रन्थि) (Tonsil) का कारण, लक्षण एवं प्राकृतिक चिकित्सा का वर्णन करो?
6. गला बैठना (Hoarseness) की प्राकृतिक चिकित्सा बताइये?
7. राजयक्ष्मा (टी.बी.) (Tuberculosis) का कारण, लक्षण एवं प्राकृतिक चिकित्सा का वर्णन करो?
8. दमा (Asthma) का कारण, लक्षण एवं प्राकृतिक चिकित्सा का वर्णन करो?
9. फुफ्फुसावरण-प्रदाह (Pleurisy) का कारण, लक्षण एवं प्राकृतिक चिकित्सा का वर्णन करो?

10. फुफ्फुस प्रदाह (Pneumonia) की प्राकृतिक चिकित्सा बताइये?
11. राजयक्ष्मा कितने प्रकार के होते है? नाम लिखिए।
12. राजयक्ष्मा (टी.बी.) (Tuberculosis) के रोगी को बकरियों के झुंड़ में रखे जाने के पीछे क्या कारण है?

3.7 **सन्दर्भ ग्रन्थ**

क्र	संदर्भ साहित्य	लेखक	क्र	संदर्भ साहित्य	लेखक
1.	जीव-विज्ञान भाग-1	बी. एस. राम दास, देव ज्योति दास	27.	प्राकृतिक चिकित्सा एवं स्वास्थ्य	डॉ. महेन्द्र कुमार जाजपुरा
2.	जीव-विज्ञान भाग-2	ओसवाल ट्यूटोरियल	28.	मानव शरीर रचना एवं क्रिया-विज्ञान	डॉ. महेन्द्र कुमार जाजपुरा
3.	शरीर रचना एवं क्रिया-विज्ञान	डॉ. विमल कुमार मोदी	29.	रोग, उनके कारण, लक्षण एवं उपचार	डॉ. महेन्द्र कुमार जाजपुरा
4.	बिना दवा परफेक्ट हेल्थ	डॉ. बलराम पटेल	30.	प्राण शक्ति उपचार; प्राचीन विज्ञान कला	चौ. कोक सुई
5.	नवीन मेडिकल प्रवेश परीक्षा	नवीन ग्रुप ऑफ पब्लिकेशन्स्- इलाहाबाद	31.	जीवनी शक्ति कैसे जगायें	डॉ. चन्द्र दीप सिंह
6.	मानव शरीर रचना एवं क्रिया-विज्ञान	डॉ. अनन्त प्रकाश गुप्ता	32.	आपका आरोग्य आपके हाथ में	देवेन्द्र वोरा
7.	प्राकृतिक स्वास्थ्य एवं योग	डॉ. बृज भूषण गोयल	33.	प्राकृतिक चिकित्सा एवं योग वैज्ञानिक प्रयोग	डॉ. नागेन्द्र कुमार नीरज
8.	प्राकृतिक आयुर्विज्ञान	डॉ. राकेश जिन्दल	34.	जीवेम् शरद शतम्	पं. श्री राम शर्मा आचार्य वाङ्मय
9.	वृहद प्राकृतिक चिकित्सा	डॉ. ओ. पी. सक्सेना	35.	बिना औषधियों के कायाकल्प	पं. श्री राम शर्मा आचार्य
10.	स्वस्थवृत विज्ञान	प्रो. रामहर्ष सिंह	36.	निरोग जीवन का राज मार्ग	पं. श्री राम शर्मा आचार्य

इकाई 4

मूत्र-संस्थान या रीनल प्रणाली एवं उसके रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा

(Urinary or Renal system & nature cure for its diseases)

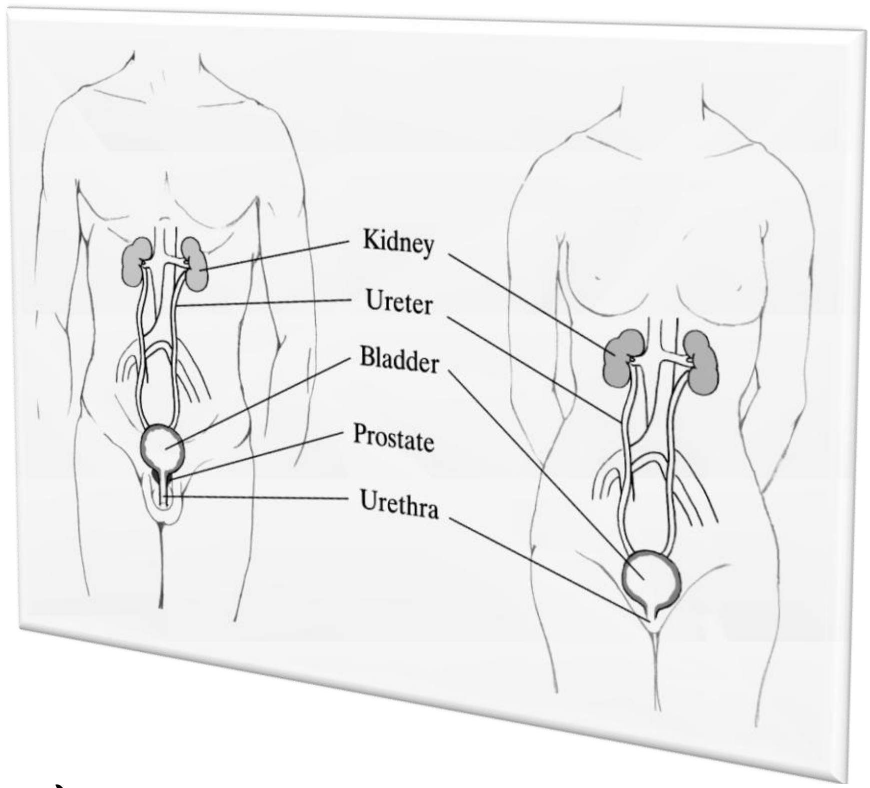

इकाई की रूपरेखा

4.1 उद्देश्य

4.2 प्रस्तावना

4.3 मूत्र संस्थान या रीनल प्रणाली के प्रमुख रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा

4.4 सारांश

4.5 बोधात्मक प्रश्न

4.6 संदर्भ ग्रंथ

4.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्यनन के बाद आप निम्न जानकारी प्राप्त कर सकेगे -

- मूत्र संस्थान या रीनल प्रणाली के प्रमुख रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा
- आहार संस्थान श्वसन संस्थान
- मूत्र संस्थान त्वचा संस्थान
- मूत्रत्याग या मूत्रण (Urination or Micturition)

4.2 **प्रस्तावना**

मनुष्य में प्रतिक्षण कोई-न-कोई ऐच्छिक (voluntary) या अनैच्छिक (non-voluntary) क्रिया होती रहती है, जिसके फलस्वरूप शरीर में रासायनिक क्रिया (chemical reaction) होती हैं, जैसे उपापचय-क्रिया मुख्य है। इस उपापचय-क्रिया में जो चीजें उत्पन्न होती है, वे या तो शरीर के लिए लाभदायक होती हैं या हानिकारक। हानिकारक पदार्थों को शरीर से बाहर निकालना परम आवश्यक हैं और इसे बाहर निकालने की शरीर में पूरी व्यवस्था होती है। इसके अतिरिक्त शरीर में पुरानी कोशाओं का नाश भी होता रहता है और उनके स्थान पर नयी कोशायें बनती रहती हैं। पुरानी कोशाओं के नाश से भी शरीर में हानिकारक पदार्थ उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार हानिकारक पदार्थ में मल, मूत्र, पसीना एवं अशुद्ध वायु तथा स्त्रियों में मासिक आदि मुख्यरूप से सम्मिलित है। वैसे इन पदार्थो में कार्बन-डाइऑक्साइड , यूरिया, यूरिक एसिड, क्रियेटीनिन, कुछ फास्फेट और सल्फेट आदि होते हैं। इन पदार्थों को शरीर से बाहर निकालने में जो अंग काम करते हैं उन्हें उत्सर्जी अंग (excretory organs) और इस क्रिया को उत्सर्जन (excretion) कहते हैं। मानव शरीर में मुख्य उत्सर्जी अंग निम्न है-

आहार संस्थान श्वसन संस्थान

मूत्र संस्थान त्वचा संस्थान

1. बृहदान्त्र (Large intestine): यह आहार संस्थान का उत्सर्जी अंग है, इसके द्वारा अपचित भोजन, विखण्डित खनिज-लवण, सूक्ष्म जीवाणु एवं कुछ मात्रा में जल आदि पदार्थ शरीर से मल के रूप में निकलता हैं।

2. फेफड़ें (Lungs): यह श्वसन संस्थान का उत्सर्जी अंग है, इसके द्वारा कार्बन- डाइऑक्साइड एवं जल-वाष्प आदि अशुद्ध वायु के रूप में शरीर से बाहर निकलती हैं।

3. वृक्क या गुर्दे (Kidneys): यह मूत्र संस्थान का उत्सर्जी अंग है, इसके द्वारा चयापचय के अपशिष्ट, यूरिया, यूरिक एसिड, अतिरिक्त जल एवं विखण्डित खनिज-लवण आदि पदार्थ शरीर से मूत्र के रूप में निकलता हैं।

4. त्वचा (Skin): यह त्वचा संस्थान का उत्सर्जी अंग है, इसके द्वारा विखण्डित खनिज-लवणों, कार्बनिक पदार्थो जैसे- यूरिया एवं अमोनिया तथा कुछ मात्रा में कार्बन-डाइऑक्साइड भी पसीने के रूप में शरीर से बाहर निकलती हैं।

यहाँ नाइट्रोजनीय यौगिकों के उत्सर्जी अंग जैसे- वृक्क एवं त्वचा का उल्लेख निम्नवत् हैं-

मूत्रत्याग या मूत्रण (Urination or Micturition):

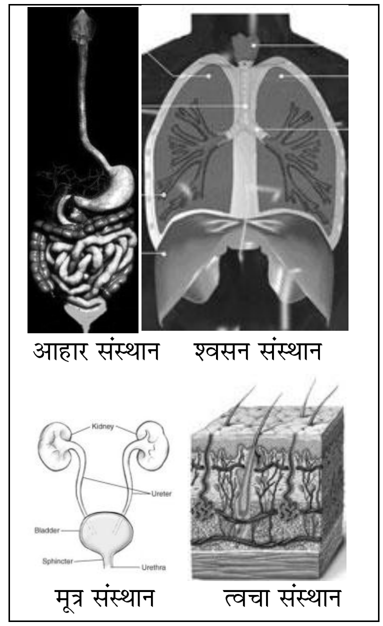

मूत्राशय से मूत्र खाली होने की क्रिया को मूत्रत्याग या मूत्रण कहते है। प्रतिदिन केशिका गुच्छों से होकर रक्त में से लगभग 150 से 180 लीटर जल फिल्टर होता है, लेकिन इसमें से मात्र 1 प्रतिशत अर्थात् 1-1.8 लीटर मूत्र बनकर उत्सर्जित होता हैं। शेष 99 प्रतिशत जल का पुनरावशोषण हो जाता है।

वृक्कों से निर्मित मूत्र, मूत्र नलियों से गुजरता है, तो प्रत्येक 10-20 सेकण्ड के अन्तराल से मूत्र नलियों की पेशीय परत में क्रमाकुंचन तरंगें मूत्र को वृक्कीय श्रोणि से फुहारों के रूप में थोड़ी-थोड़ी मात्रा में मूत्राशय में पहुँचाती है। जब मूत्राशय में 250 से 300 मिली. मूत्र संचित हो जाता है अर्थात् आधा भर जाता है, तभी मूत्राशय की भितियाँ फैल जाने से उनमें विद्यमान पेल्विक तंत्रिका के संवेदी तंत्रिकाएँ उद्दीप्त होकर आवेगों को स्पाइनल कॉर्ड के सैक्रल क्षेत्र में पहुँचा देते है, जहाँ पर पैरासिम्पेथेटिक न्यूरोन्स उद्दीप्त हो जाते है और तंत्रिका आवेग मस्तिष्क के उच्च केन्द्रों तक पहुँचते है।

जहाँ से मूत्र त्याग करने की इच्छा उत्पन्न होते ही संवेदी आवेगों की बारम्बारता से प्रेरक आवेग प्रतिवर्त क्रिया के रूप में मूत्राशय उत्पन्न होकर डीट्रसर पेशी का संकुचन तथा आंतरिक संकोचिनी पेशी का शिथिलन कर देने से आंतरिक मूत्रमार्गीय छिद्र खुल जाता है और मूत्राशय से मूत्र मूत्रनली से होता हुआ बाहर उत्सर्जित हो जाता है। मूत्राशय खाली होते समय साँस के धीमा होने पर डायाफ्राम एवं उदर की भित्तियों के संकुचन से मूत्राशय पर दबाव पड़ता है , जिससे वह पूरी तरह खाली हो जाता है। जैसे ही मूत्रत्याग होना बंद होता है तभी बाह्य संकोचिनी पेशी तथा श्रोणि तल की पेशियों में एक शक्तिशाली संकुचन पैदा होता है। स्त्रियों में मूत्रमार्ग से मूत्र के निष्कासन में गुरूत्वाकर्षण का बल मदद करता है , परन्तु पुरूषों में इसके अतिरिक्त मूत्र की अंतिम बूँदों का निष्कासन बल्वोकैवरनोसस पेशी के ऐच्छिक संकोचनों द्वारा होता है।

शिशुओं एवं कुछ-कुछ बच्चों के मस्तिष्क में उच्चतर केन्द्रों का विकास नहीं होने पर ही उनकी बाह्य संकोचिनी की ऐच्छिक पेशी के तंतुओं पर नियंत्रण नहीं हो पाता है अर्थात् बच्चों में बाह्य मूत्रमार्गीय छिद्र का खुलना इच्छाधीन नहीं होता है तथा स्वत: मूत्र उत्सर्जित हो जाता है। फिर ज्यों-ज्यों शिशु की आयु बढ़ती है , धीरे-धीरे मस्तिष्क के विकास के साथ ही उच्चतर केन्द्रों के विकसित होने पर बाह्य संकोचिनी की ऐच्छिक पेशी के तंतुओं पर नियंत्रण बढ़ता जाता है और मूत्रत्याग की क्रिया इच्छाधीन होना शुरू हो जाती है। तब तक उन बच्चों एवं शिशुओं में मूत्रत्याग मेरूदण्डीय प्रतिवर्त क्रिया के द्वारा ही

सम्पन्न होता रहता है। जिसमें पैरासिम्पैथेटिक न्यूरॉन्स मूत्राशय को संकुचित करते है एवं बाह्य संकोचिनी के ऐच्छिक पेशी के तंतु शिथिल हो जाते है , जिसके फलत: मूत्राशय से मूत्र स्वत: ही निष्कासित हो जाता है।

मूत्र संस्थान या रीनल प्रणाली के रोगों की सूची

क्र.	हिन्दी या संस्कृत नाम	English name	क्र.	हिन्दी या संस्कृत नाम
1.	गुर्दो की कार्य क्षमता बंद	Cronic renal feluor (CRF)	18.	मूत्र मार्ग प्रदाह
2.	मुत्राशय की सूजन	Cystitis	19.	गुर्दे का दर्द, जलन
3.	मधुमेह	Diabetes	20.	पेशाब बार-बार आना, बहुमूत्रता
4.	शोथ	Dropsy	21.	बिस्तर में मूत्र आना
5.	रिनल ग्लोमेरूलि के कपिलरी लुप्स में सूजन	Glomerulonephritis	22.	रक्त मूत्र
6.	मुत्राशय से खून निकलना	Haemorrhage of the bladder	23.	रक्त मूत्र व पस
7.	मूत्रयंत्र से खून निकलना	Haemorrhage of the kidneys	24.	मूत्र का न बनना
8.	गुर्दो की पथरी	Kidney stone (Renal calculi)	25.	प्यास कम
9.	मूत्रयंत्र या गुर्दे की सूजन	Nephritis, Payelitis	26.	प्यास ज्यादा
10.	गुर्दे की कार्य क्षमता में कमी	Nephrosis		
11.	बैक्टिरियल इंफेक्शन व गुर्दे में सूजन	Palonephritis		
12.	गुर्दे में पस व सूजन	Payonephritis		
13.	पेशाब बंद होना, मूत्र की रूकावट	Retention of urine		
14.	मुत्राशय की पथरी	Stone in the bladder		
15.	मूत्र-संस्थान की पथरी	Stone of urinary tract		
16.	मूत्र का न बनना, मूत्रनाश	Suppression of urine		
17.	यूरेमिया	Uraemia		

4.3 मूत्र संस्थान या रीनल प्रणाली के प्रमुख रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा

1. पेशाब बन्द होना (STOPPED URINE)

कारण एवं लक्षण : मूत्र बन्द होने के अनेक कारणों में से मूत्राशय के आसपास विजातीय द्रव्य के कारण मूत्रप्रणाली में सूजन और प्रदाह का होना प्रधान कारण है। जब मूत्र का निष्कासन आभास होने पर भी नहीं करते तो उस वक्त मूत्राशय में बड़ी वेदना होती है तथा ऐसा लगातार होते रहने पर मूत्र आने में परेशानी पैदा होती है।

प्राकृतिक चिकित्सा : दिन में कई बार पेडू पर मिट्टी पट्टी देने से मूत्र निकलने लगता है। गर्म कटि-स्नान या गरम-ठंडा कटि स्नान लें। गर्म जल से भीगी बड़ी पट्टी मूत्राशय और लिंग पर बदल-बदल कर लगायें। गुनगुने जल का एनिमा लें। जब तक मूत्र न निकलने लगे तब तक उपवास करना चाहिए। फिर रसाहार और फलाहार के बाद धीरे-धीरे साधारण सादे भोजन पर आ जाना चाहिए। हल्की नीली बोतल के सूर्य तप्त

जल की 50 ग्राम की 4 खुराक लें।

2. मूत्राशय और वीर्य पथरी (URINATER & SEMEN STONE)

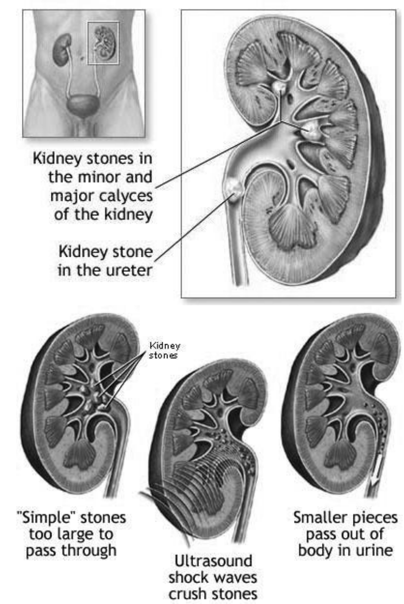

कारण एवं लक्षण : बहुत बार मूत्र आने पर रोके रहने के कारण मूत्राशय की गर्मी बढ़ जाने से गुर्दों से निकला अपशिष्टसूख कर पत्थर-सा कड़ा बनते जाते है। जिसे पथरी कहते है। हस्त मैथुन या मैथुन के समय वीर्य को रोकने से वीर्य रास्ते में ही अटक कर सूख जाते है। जिसे वीर्य की पथरी कहते है। जब पथरी अपने आप निकलती तब मूत्राशय में सूजन-सी आ जाती और पेडू के पास पीड़ा होने लगती है। मूत्र में बकरे के पेशाब की सी बदबू आती है, विच्छिन धार से पेशाब कष्टं से होता है और भोजन की रूचि नहीं होती।

प्राकृतिक चिकित्सा : पथरी पैदा न हो इस हेतु उचित आहार को अपनाये और नित्य नियम से आन्तरिक सफाई की जायें। 2-4 दिनों तक केवल नींबू या नारंगी का रस मिले पानी पर रहें। फिर बीच-बीच में 1-1 दिन का उपवास करें। उसके बाद दो-तीन दिनों तक केवल रसदार खट्टे, मीठे फल लें। इन दिनों नित्य सुबह-शाम एनिमा लेकर पेट साफ करें। प्रतिदिन सुबह या शाम 15-20 मिनट तक कटिस्नान व मालिश, सप्ताह में एक बार पूरे शरीर का स्टीम बाथ लें।

4.4 **सारांश**

मनुष्य में प्रतिक्षण कोई-न-कोई ऐच्छिक (voluntary) या अनैच्छिक (non-voluntary) क्रिया होती रहती है, जिसके फलस्वरूप शरीर में रासायनिक क्रिया (chemical reaction) होती हैं, जैसे उपापचय-क्रिया मुख्य है। इस उपापचय-क्रिया में जो चीजें उत्पन्न होती है, वे या तो शरीर के लिए लाभदायक होती हैं या हानिकारक। हानिकारक पदार्थों को शरीर से बाहर निकालना परम आवश्यक हैं और इसे बाहर निकालने की शरीर में पूरी व्यवस्था होती है।

पुरानी कोशाओं के नाश से भी शरीर में हानिकारक पदार्थ उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार हानिकारक पदार्थ में मल, मूत्र, पसीना एवं अशुद्ध वायु तथा स्त्रियों में मासिक आदि मुख्यरूप से सम्मिलित है। वैसे इन पदार्थो में कार्बन-डाइऑक्साइड, यूरिया, यूरिक एसिड, क्रियेटीनिन, कुछ फास्फेट और सल्फेट आदि होते हैं। इन पदार्थों को शरीर से बाहर निकालने में जो अंग काम करते हैं उन्हें उत्सर्जी अंग (excretory organs) और इस क्रिया को उत्सर्जन (excretion) कहते हैं। मानव शरीर में मुख्य उत्सर्जी अंग निम्र है-

आहार संस्थान   श्वसन संस्थान

मूत्र संस्थान   त्वचा संस्थान

4.5 बोधात्मक प्रश्न

1. मूत्रत्याग या मूत्रण की क्रिया को समझाइये?
2. बच्चों एवं शिशुओं में मूत्रत्याग या मूत्रण की क्रिया को समझाइये?
3. पुरूषों में मूत्र की अंतिम बूँदों का निष्कासन किस पेशी के ऐच्छिक संकोचनों द्वारा होता है?
4. पेशाब बन्द होने (Stopped urine) की समस्या के कारण व लक्षणों का वर्णन करते हुए प्राकृतिक चिकित्सा बताइए?
5. मूत्राशय और वीर्य पथरी (Urinater & Semen stone) के कारण व लक्षणों का वर्णन करते हुए प्राकृतिक चिकित्सा बताइए?

4.6 सन्दर्भ ग्रन्थ

संदर्भ साहित्य	**लेखक**	**संदर्भ साहित्य**	**लेखक**
नवीन मेडिकल प्रवेश परीक्षा	नवीन ग्रुप ऑफ पब्लिकेशन्स्- इलाहाबाद	जीवनी शक्ति कैसे जगायें	डॉ. चन्द्र दीप सिंह
मानव शरीर रचना एवं क्रिया-विज्ञान	डॉ. अनन्त प्रकाश गुप्ता	आपका आरोग्य आपके हाथ में	देवेन्द्र वोरा
प्राकृतिक स्वास्थ्य एवं योग	डॉ. बृज भूषण गोयल	प्राकृतिक चिकित्सा एवं योग वैज्ञानिक प्रयोग	डॉ. नागेन्द्र कुमार नीरज
प्राकृतिक आयुर्विज्ञान	डॉ. राकेश जिन्दल	जीवेम् शरद शतम्	पं. श्री राम शर्मा आचार्य वाङ्मय
वृहद प्राकृतिक चिकित्सा	डॉ. ओ. पी. सक्सेना	बिना औषधियों के कायाकल्प	पं. श्री राम शर्मा आचार्य
स्वस्थवृत विज्ञान	प्रो. रामहर्ष सिंह	निरोग जीवन का राज मार्ग	पं. श्री राम शर्मा आचार्य
प्राकृतिक स्वास्थ्य शास्त्र	आचार्य शेषांद्रि स्वामीनाथन	दीर्घ जीवन की प्राप्ति	पं. श्री राम शर्मा आचार्य
आदिऊर्जा प्राण	अमश्ता भारती	पंच तत्वों द्वारा सम्पूर्ण रोगों का निवारण	पं. श्री राम शर्मा आचार्य
स्वास्थ्य के सोपान	धनरूपमल सुराणा	रोगों की सरल चिकित्सा	विट्ठलदास मोदी
सरल प्राकृतिक चिकित्सा	डॉ. लक्ष्मी नारायण शर्मा	जीने की कला	विट्ठलदास मोदी
जीव-विज्ञान भाग-1	बी. एस. राम दास, देव ज्योति दास	प्राकृतिक चिकित्सा एवं स्वास्थ्य	डॉ. महेन्द्र कुमार जाजपुरा
जीव-विज्ञान भाग-2	ओसवाल ट्यूटोरियल	मानव शरीर रचना एवं क्रिया-विज्ञान	डॉ. महेन्द्र कुमार जाजपुरा
शरीर रचना एवं क्रिया-विज्ञान	डॉ. विमल कुमार मोदी	रोग, उनके कारण, लक्षण एवं उपचार	डॉ. महेन्द्र कुमार जाजपुरा
बिना दवा परफेक्ट हेल्थ	डॉ. बलराम पटेल	प्राण शक्ति उपचार; प्राचीन विज्ञान कला	चौ. कोक सुई

इकाई 5

त्वचा या आच्छदीय संस्थान एवं उसके रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा

(Skin or Integumentary system & nature cure for its diseases)

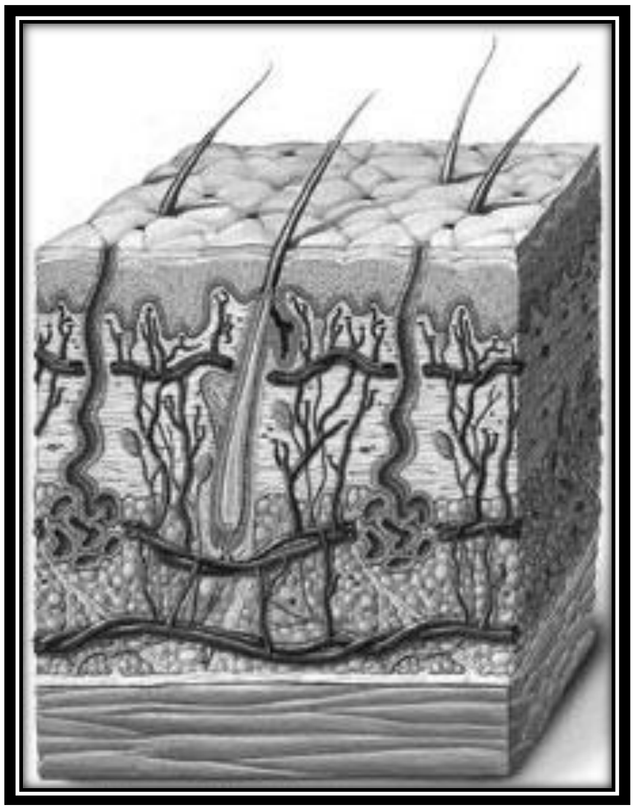

इकाई की रूपरेखा

5.1 उद्देश्य
5.2 प्रस्तावना
5.3 त्वचा के कार्य
5.4 त्वचा या आच्छदीय संस्थान के रोगों की सूची
5.5 त्वचा या आच्छदीय संस्थान के प्रमुख रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा
5.6 सारांश
5.7 बोधात्मक प्रश्न

5.8 संदर्भ ग्रंथ

5.1 **उद्देश्य**

इस इकाई के अध्यनन के बाद आप निम्न जानकारी प्राप्त कर सकेगे -

- त्वचा के कार्य
- त्वचा या आच्छदीय संस्थान के रोगों की सूची
- त्वचा या आच्छदीय संस्थान के प्रमुख रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा

5.2 **प्रस्तावना**

शरीर के ऊपरी आवरण (derivatives) को त्वचा के नाम से जाना जाता है। इसका अध्ययन उत्सर्जित संस्थान एवं ज्ञानेन्द्रिय के अन्तगत भी किया जाता है। त्वचा के अन्तगत बाल , नाखून तथा स्वेद एवं तैलीय ग्रन्थियाँ सम्मिलित है। शरीर की त्वचा एक महत्वपूर्ण संस्थान है , क्योंकि इसके द्वारा अनेक जीवनोपयोगी क्रियाएँ सम्पादित होती है जैसे- त्वचा हमारे सारे शरीर पर सुरक्षात्मक आवरण का कार्य करती है और विभिन्न छिद्रों , जैसे- नाक, कान, मुंह, गुदा द्वार इत्यादि पर ये श्लेष्मिक झिल्ली से मिल जाती हैं।

त्वचा शरीर और वातावरण के मध्य सीमान्त या सीमा बंधक मेम्ब्रेन है, जिसके माध्यम से तमाम वस्तुओं का विनिमय होता है। यह शरीर के सभी तरल (fluid) पदार्थों व आंतरिक ऊतकों (अंगों) को बाह्य ï वातावरण से बचाती हैं अर्थात् त्वचा एक रोधी भित्ति का कार्य करती है। इसके फलस्वरूप शरीर की सभी कोशाओं को वह वातावरण मिलता है जिसमें वे जीवित रह सकें। इस सुरक्षात्मक कार्य को अधिक मजबूत बनाने के लिए त्वचा के कुछ सहायक रूप भी हैं , जैसे- नाखुन व बाल। वातावरण-संचारेक्षण के लिए यह ज्ञानेन्द्रिय का कार्य करती है तथा शरीर का तापक्रम नियन्त्रित करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। बाल शरीर से अधिक ताप को निकलने नहीं देते।

त्वचा के सबसे ऊपर पतली-पतली धारियां होती हैं जो त्वचा को कई भागों में बांटती हैं। इन महीन धारियों से त्वचा को लचीलापन मिलता हैं। ये धारियां कुछ स्थानों पर अधिक दिखाई देती हैं। जोड़ों के पास त्वचा थोड़ी ढीली होती हैं। हथैली और तलवों पर ये लकीरें अधिक स्पष्ट ï रूप में गड्ढे और उभार की तरह दिखती हैं। लकीरें अधिकतर सीधी होती हैं। परन्तु अंगुलियों के पोर गोल घुमावदार हो जाते हैं। इन्हीं लकीरों की वज़ह से प्रत्येक मनुष्य के हाथ और पैर के निशान भिन्न-भिन्न हो जाते हैं। इन गड्ढों और उभारों की वज़ह से कोई भी वस्तु आसानी से पकड़ी जा सकती हैं।

5.3 **त्वचा के कार्य** (Functions of the skin) **:**

शरीर में त्वचा के निम्नलिखित कार्य होते है-

1. रक्षात्मक **(Protective)** : त्वचा शरीर का रक्षात्मक बाह्य आवरण है, जो कि शरीर के कोमल अंगों, मॉसपेशियों, रक्तवाहिनियों (blood vessels) आदि के लिए रक्षात्मक भित्ति का काम करती है। यह बाहरी चोट आदि से शारीरिक अंगों की रक्षा करती है। अनिष्टकर सूक्ष्म जीवाणु एवं बाह्य पदार्थों के शरीर में प्रवेश करने के प्रति अवरोधक की भाँति कार्य करती है। त्वचा जल-अभेद्य (water proof) होती है।

अत: यह बाहर के तरल (fluid) द्रवों को भीतर नहीं जाने देती तथा ऊतकों के तरलों को बाहर नहीं निकलने देती है। त्वचा शरीर को रोगों से बचाने में भी सक्रिय भूमिका अदा करती है तथा बाह्य ï वातावरण की सभी प्रतिकूल दशाओं से त्वचा हमारी रक्षा करती है, क्योंकि ये सभी अंगों को ढंक़े रहती हैं।

2. शरीर के तापकम का नियमन **(Temperature)** : त्वचा यद्यपि पूर्णत: जल-अभेद्य है, फिर भी उसकी बाह्य सतह, स्वेद ग्रन्थियों की सूक्ष्म नलियों के द्वारा स्त्रावित द्रव से नम रहती है। स्वेद या पसीना इन सूक्ष्म नलियों के सतही छिद्रों (pores) से उत्सर्जित होता है तथा वातावरणीय प्रभाव से इसका निरन्तर वाष्पीकरण होता रहता है, जिससे शरीर में शीतल प्रभाव बना रहता है। इसी कारण त्वचा शरीर के ताप को नियंत्रित करने में सहायक होती हैं। इसमें स्थित वसा (fat) शरीर के अन्दर की गर्मी को बाहर निकलने नहीं देती।

आद्र्र (humid) मौसम में शरीर सहज ही शीतल नहीं हो पाता है , क्योंकि बाहर की हवा प्राय: जल से संतृप्त होती है तथा पसीना वाष्पीकृत होने के बजाय त्वचा पर बना रहता है। जब बाह्य ï वातावरण का ताप कम होता है तो त्वचा की रक्त वाहिनियाँ (blood vessels) सिकुड़ जाती हैं। जिससे शरीर से अधिक ऊष्मा (heat) बाहर नहीं निकल पाती है तब ठण्डे मौसम में त्वचा इंसूलेटर की भाँति कार्य करती है, जिससे शरीर में ऊष्मा (heat) बनी रहती है और शरीर गर्म बना रहता है।

जब बाहर गर्मी अधिक होती है तो अंत:त्वचा में विद्यमान रक्तवाहिनियाँ (blood vessels) का घना जाल विस्फारित या फैल जाती हैं, रक्त से उष्मा (heat) का विकिरण (radiation) बढ़ जाता है और स्वेद ग्रंथियों भी उत्तेजित हो जाती है। इस प्रकार शरीर की ऊष्मा (heat) का ह्रास होता है, अधिक पसीना बनकर शरीर से बाहर निकलता है।

सामान्यत: शरीर का ताप 36–37°C या 97–98°F होता हैं।

3. उत्सर्जन **(Excretion)**: शरीर से त्वचा स्वेद या पसीने के माध्यम से व्यर्थ पदार्थो या विजातीय द्रव्य या त्याज्य पदार्थों जैसे यूरिया आदि की कुछ मात्रा उत्सर्जित करती है। त्वचा हर घण्टे की दर से लगभग एक ग्राम व्यर्थ नाइट्रोजन को भी निकालती है।

4. सामान्य संवेदन **(General sensation)**: त्वचा में उपस्थित तंत्रिका तंत्र का जाल मनुष्य को स्पर्श , दबाव, वेदना या पीड़ा, शीत तथा ताप की संवेदनाओं को ग्रहण करके मस्तिष्क में भेजती है। जिससे उनका सही-सही आभास होता हैं। ये कार्य त्वचा में विद्यमान तन्त्रिका तंतुओं के अंन्तागों (nerve endings) के द्वारा सम्पादित होते है। तन्त्रिका तंतुओं से निर्मित स्पर्श कणिकाएँ (tactile corpuscles) ही स्पर्शेन्द्रिय का कार्य करती है। चूँकि बालों की जड़ों में भी तन्त्रिका तंतुओं की अधिकता रहती है , अत: बाल भी त्वचा की संवेदन क्रिया में सहायता प्रदान करते है।

5. स्त्राव उत्पादन **(Secretion)** : त्वचा में विद्यमान त्वग्वसीय ग्रन्थियों से त्वग्वसा (sebum) की उत्पत्ति होती है। इस स्त्राव में वसीय अम्ल (fatty acids), कॉलेस्ट्रोल तथा अर्गोस्टेरॉल मुख्य रूप से रहते है। इससे त्वचा को स्नेहन होता रहता है, जिससे त्वचा चिकनी बनी रहती है। शीतऋतु में इस स्त्राव के कम हो जाने पर त्वचा शुष्क एवं शल्की हो जाती है। त्वग्वसीय ग्रन्थियों के रूपान्तरित रूप स्तन ग्रन्थियों से भी एक विशेष स्त्राव उत्पन्न होता है, जो संक्रमणों से सुरक्षा करता है।

6. जल संतुलन **(Water balance)** : त्वचा के द्वारा स्वेद अर्थात् पसीने का निर्माण तथा उसका वाष्पीकरण करना ही शरीर के भीतर जल-संतुलन को बनाए रखने में महत्वपूर्ण है।

7. अम्ल-क्षार संतुलन **(Acid-base balance)** : स्वेद अर्थात् पसीना की अभिक्रिया एसिडिक या अम्लीय होती है, अत: इसके साथ-साथ पर्याप्त मात्रा में शरीर से अनावश्यक अम्ल निष्कासित हो जाता है। अम्लरक्तता (acidosis) होकर शरीर के अम्ल के निष्कासन को और भी बढ़ा देती है। इस प्रकार त्वचा के द्वारा शरीर के भीतर की समान प्रतिक्रिया (constant reaction in the body) को बनाए रखने में सहायता मिलती है।

8. संश्लेषण **(Synthesis)** : त्वचा की त्वग्वसीय ग्रन्थियों में निर्मित त्वग्वसा या सीबम में एर्गोस्टोरॉल विद्यमान रहता है , जिससे सूर्य की अल्ट्रावॉयलेट किरणों की क्रियाओं द्वारा विटामिन डी का निर्माण होता है, जो शरीर के कई कार्यो को संपादित करता है तथा स्वास्थ्य के लिए अति महत्वपूर्ण होता है।

9. संचयन (स्ह्लशह्म्ड्डद्दद्र) : अंत:त्वचा एवं अवत्वचीय ऊतक (ह्यह्वड्ढष्ह्वह्लड्डठ्ठद्रशह्वह्य ह्लद्बह्यह्यह्वद्र) वसा, जल, लवण तथा ग्लूकोज़ एवं अन्य पदार्थो का संचयन करते है।

10. अवशोषण **(Absorption)** : त्वचा में तैलीय पदार्थो को अवशोषित करने की क्षमता रहती है। यह लिपिड्स एवं विटामिन्स को सहज ही शोषित कर लेती है।

5.4 त्वचा या आच्छदीय संस्थान के रोगों की सूची

क्र.	हिन्दी या संस्कृत नाम	English name	क्र.	हिन्दी या संस्कृत नाम
1.	फोड़े-फुन्सियाँ, व्रण	Abscess, Boils	36.	गंजापन
2.	कंखौरी, कांख (बगल में)	Armpit	37.	छोटी आयु में झुर्रियाँ पड़ना
3.	पलंग घाव	Bed sor	38.	सिर की खुश्की
4.	नाक का फोड़ा या व्रण	Boil of the nose	39.	सिर में जूँ का पड़ना
5.	बाघी	Bubo	40.	झाईयाँ
6.	कैंसर की गाठ	Cancer	41.	दाग-धब्बे
7.	कारबंकम, जहरवाद, दुष्ट व्रण	Carbuncle	42.	चितकबरे दाग
8.	मसूरिका (छोटी माता)	Chicken pox	43.	चेचक के दाग
9.	पुराना घाव	Chronic ulcer	44.	दाढ़ी की फुन्सियाँ
10.	कोल्डसोर, हर्पिस सिम्प्लेक्स	Coldsor, Hrpis simplex	45.	सिर में फुंसी
11.	रूसी	Dandruff	46.	खून की खराबी
12.	त्वचा पर शोथ (सूजन)	Dermatitis	47.	सफेद कुष्ठ
13.	एक्जिमा	Eczema	48.	चेचक
14.	फीवपाँव, हाथीपाँव	Elephant leg	49.	रोमान्तिका

15.	मुँहासे, चेहरे पर फुन्सियाँ (विसर्प रोग)	Erysipelas, Pimples	50.	नासूर (बहता फोड़ा)
16.	गूंगी	Felon	51.	अपरस
17.	उँगली का फोड़ा या व्रण	Felon	52.	बेवाई, एड़ी का फटना
18.	भगन्दर	Fistula, Fissure	53.	पसीना अधिक निकलना
19.	साधारण या कटा घाव	General sore	54.	जुलपित्ती
20.	मसूड़े का फोड़ा या व्रण	Gum boil	55.	चोट लगना
21.	बालों की समस्या, बालों का गिरना	Hair falling	56.	आग से जलना
22.	छोटी आयु में बालों का सफेद होना	Hair graying	57.	जला घाव
23.	खुजली (कलकल)	Itches (Scabies)	58.	धोबीइच (खरवे), पानी में अधिक
24.	कुष्ठ (कोढ़)	Leprosy		समय तक रहने पर सड़ान
25.	सफेद दाग	Leucoderma		
26.	घमौरी, अम्हौरी	Prickly heat		
27.	सोरायसिस	Psoriasis		
28.	दाद	Ring worm		
29.	शीतला	Shitala		
30.	त्वचा एलर्जी	Skin allergy		
31.	माँस वृद्धि, अर्बुद	Tumour		
32.	छाला	Ulcer		
33.	मुख का घाव	Ulcer of the mouth, Blister of mouth		
34.	जिह्वा का घाव	Ulcer of the tongue		
35.	उभरी शिराएँ	Varicose veins		

5.5 त्वचा या आच्छदीय संस्थान के प्रमुख रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा

1. चर्म रोग **(SKIN DISEASE)**

परिचय : शरीर के मल निष्कासक अंगों में त्वचा सबसे महत्वपूर्ण अंग है, क्योंकि हर समय पसीने के रूप में हमारे शरीर की अधिकांश गंदगी इस अंग द्वारा निकलती रहती है। जब तक यह अंग स्वस्थ है तब तक शरीर के अन्दर किसी प्रकार की गंदगी नहीं रह पाती।

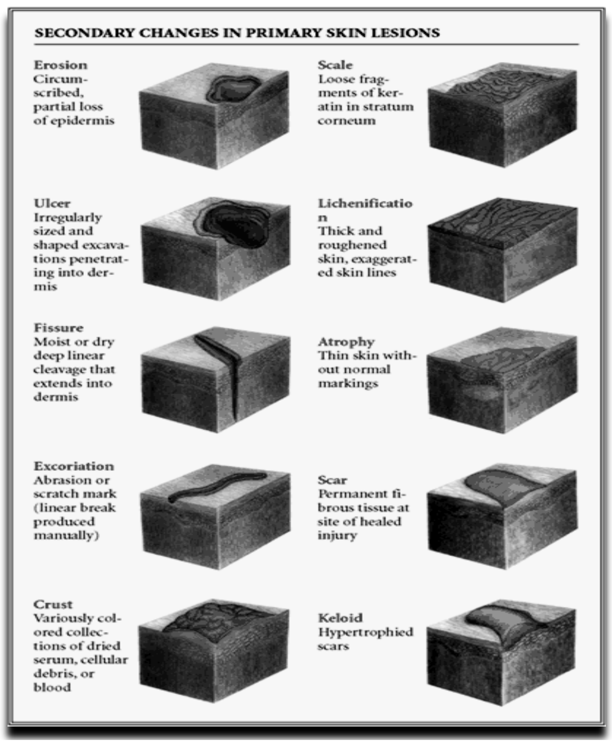

कारण एवं लक्षण :

परन्तु खान-पान, रहन-सहन और इसकी साफ-सफाई पर ध्यान न देने पर यह अस्वस्थ हो जाने से इसके छिद्र बन्द हो जाते है। तब शरीर में गन्दगी का भार इतना बढ़ जाता है कि वह सब का सब इस अंग द्वारा बाहर नहीं निकल पाता तो प्रकृति शरीर के मल-भार को अन्य अनेक रास्ते जैसे- फोड़े-फुन्सी, दाद, खुजली, एक्जिमा, कुष्ठ, चेचक तथा कंठमाला आदि चर्म रोग उत्पन्न कर बाहर निकालती है। ये सारे चर्म रोग शरीर की भीतरी खराबी और गंदगी को व्यक्त करते है।

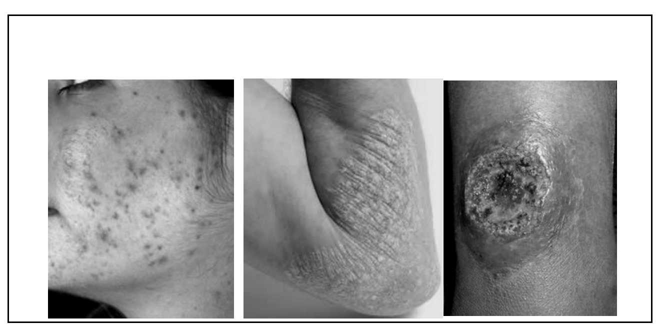

चर्म रोग वर्षो के अयुक्त आहार , अधिक भोजन, नियमित व्यायाम न करने , पूरा आराम व नींद न लेने , चाय-काफी तथा नशीली चीजों का प्रयोग करने, दवाओं से उत्पन्न विषमता का ही परिणाम है। चर्म रोग

के साथ-साथ कब्ज , सिर दर्द , पेचिस आदि रोग भी होने से शरीर विष से भरा होता है और उससे छुटकारा पाने के लिए लगातार प्रयास जारी रखना होता है। शरीर में एकत्र मल शीघ्रताशीघ्र बाहर नहीं निकाला गया तो परिणाम घातक होता है।

प्राकृतिक चिकित्सा : चर्म रोगों को अच्छा करने के लिए दवाओं का उपयोग कर रोग को दबा देने के फलत: श्वास रोग , वृक प्रदाह, नेत्र रोग आदि अधिक कष्ट ादायक और दु:साध्य बीमारियाँ उत्पन्न होकर जीना हराम कर देती है। इसलिए चर्म रोग दूर करने के लिए दवाओं का प्रयोग तुरन्त बन्द कर नींबू-पानी पर क्षमतानुसार एक लम्बा उपवास या 2-2 दिनों का उपवास विधिव **त्** करें और प्रतिदिन एनिमा लें। उपवास के बाद सादा भोजन ही काम में लें। नमक , तेल, खटाई, मसालों एवं नशीली आदि अम्लकारक खाद्य पदार्थो को त्याग करें।

यदि चर्म रोग शरीर में जलन पैदा करने वाला हो तो केवल दुग्ध-कल्प करें। यदि अकेला दूध पर न रहा जायें तो उसके साथ मीठे फल और मेवे खायें। कल्प के बाद आहार में परिवर्तन करके तरकारियां अधिक खानी शुरू करें। उसके बाद धीरे-धीरे सादे, सात्विक भोजन पर आयें।

चर्म-रोग से मुक्ति पाने के लिए धूप और शुद्ध वायु का अधिक सेवन करके तौलिया स्नान द्वारा शरीर के हर एक अंग को भली प्रकार और तेजी से रगडऩा चाहिए। धूप में बैठे-बैठे शुद्ध सरसों के तेल की मालिश और उसके बार रगड़-रगड़ कर नीम के गुनगुने पानी से स्नान कर त्वचा को सक्रिय और स्वस्थ बनायें।

2. मुंहासें (PIMPLES)

परिचय : मुंहासें युवक और युवतियों का रोग है , जो 13 वर्ष की अवस्था से प्रारम्भ होकर 25 वर्ष की अवस्था तक रहता है। मुंहासें प्राय: मुंह पर ही होते है, परन्तु कभी-कभी छाती, कंधों और पीठ पर भी होते है।

मुंहासे एक प्रकार की फुन्सियाँ है जो प्राय: दो प्रकार की होती है। पहली वे जो छोटी-छोटी फुन्सियों के रूप में प्रकट होकर दु:खती, पकती, और सूख जाने पर निशान छोड़ती है। दूसरी वे जो बिना पके ही काली कील निकलने वाली होती है। इस प्रकार के मुंहासों का कारण कफ, वायु या रक्त विकार होता है।

कारण एवं लक्षण : इस रोग का मूल कारण अप्राकृतिक भोजन एवं अप्राकृतिक जीवन है। जिससे वहां की त्वचा चर्बीदार होते ही तैलीय ग्रंथियां वृद्धि पाकर फुन्सियों का रूप धारण कर लेती है , जिन्हें मुंहासें कहते है। अधिक चिकनाई , शक्कर, मांस, शराब, चाय, काफी, सिगरेट आदि मादक द्रव्य , तली-भूनी चीजें, मिर्च-मसाले, खटाई तथा अप्राकृतिक वस्तुओं का अधिक प्रयोग करने वाले युवक-युवतियों में कब्ज और अजीर्ण के कारण यह रोग विशेष रूप में देखा जाता है। स्त्रियों में यह रोग मासिक धर्म की खराबी से भी हो सकता है। कफ, वायु एवं रक्त विकार से भी मुंहासें होते है।

प्राकृतिक चिकित्सा : यह रोग पेट से उत्पन्न होता हैं , इसलिए इस रोग के रोगी को हल्का , सादा, सुपच और सप्राण भोजन जिसमें चिकनाई का भाग कम हो, सेवन करना चाहिए। भोजन में शाक भाजी, उबली तरकारी, नींबू, सन्तरा, अंगूर, अनार, सेव, नाशपाती, टमाटर, गाजर, अमरूद तथा पपीता आदि मौसमी फल, चोकर आटे की रोटी, दही और मट्ठाआदि लेना चाहिए। दिन में दो बार फल और दो बार साधारण भोजन लेना चाहिए।

इस बात का सदैव ध्यान रहना चाहिए कि पेशाब साफ होता रहे , त्वचा से पसीना निकलता रहे, फेफड़े ठीक काम करते रहें तथा कब्ज कभी न हो। इसके लिए सप्ताह में एक दिन का उपवास करना , प्रतिदिन उषा:पान करना व हल्की कसरत करनी चाहिए। कुछ दिनों तक दिन में एक या दो बार पेडू पर गीली मिट्टी की पट्टी 30-30 मिनट तक रखनी चाहिए तथा कब्ज की दशा में एनिमा लेना चाहिए।

स्थानीय उपचार : बहुत से लोग मुंह के मुंहासों को दूर करने के लिए स्नो या क्रीम का व्यवहार करते है जो गलत है। कारण देखा गया है कि इन चीजों को लगाने से मुंहासे नष्ट ï होने के बजाय विशेष वृद्धि पाते है। यह अलग बात है कि स्नो या क्रीम में किसी चर्म रोगनाशक दवा का सम्मिश्रण होने से आरम्भ में वे मुंहासों पर कुछ लाभप्रद सिद्ध हों , किन्तु वास्तव में उनसे लाभ की अपेक्षा हानि ही अधिक होती है। मुहांसे के लिए निम्र स्थानीय प्रयोग लाभदायक होते है-

1. किसी चौड़े मुंह वाले बर्तन में पानी भर कर आग पर रख दें, जब भाप निकलने लगे तो उसे आग पर से उतार कर 10-15 मिनट तक चेहरे पर भाप लें। उसके बाद मुलायम तौलिया से चेहरे को धीरे-धीरे रगड़ कर साफ करें फिर शीतल जल से चेहरे को धो डालें। यह प्रयोग प्रति दूसरे दिन करना चाहिए।

2. पराबैंगनी (अल्ट्रावायलेट) किरणें इस रोग के लिए अत्यन्त लाभप्रद है। प्रात: कालीन सूर्य की किरणों में पराबैंगनी किरणें अधिक होती है। नित्य नियमपूर्वक सूर्योदय के समय पूर्वाभिमुख बैठकर सूर्य की किरणें अपने चेहरे पर लेनी चाहिए। कुछ दिनों तक इस प्रयोग के करने से अवश्य लाभ होगा। जो लोग किसी कारण से प्रात:कालीन सूर्य की रश्मियां से लाभ नहीं उठा सकते, उन्हें अपने घर में बैठे-बैठे अपने चेहरे पर नीले शीशे के बीच से गुजर रही नीली रोशनी लेनी चाहिए।

3. मुंहासे जब सूख जायें और उनकी काली कीलें दिखाई देने लगें तो उन्हें धीरे-धीरे हाथ से दबाकर निकाल दें और उसके बाद चेहरे पर मेट (मिट्टी) मल दें।

4. रात को नीबू के रस में छुहारे की गुठली घिसकर चेहरे पर लेप करें और थोड़ी देर बाद धोकर मेट (मिट्टी) मल दें।

5. रात को कच्चा दूध चेहरे पर मलें और सवेरे उठ कर उसे धो डालें।

6. कपड़छन की हुई काली चिकनी मिट्टी में बिना खट्टा दही मिलाकर रात को सोते समय चेहरे पर लगाकर सोयें। सुबह उठकर धो लें।

7. सन्तरे का छिलका पानी में पीसकर दिन में तीन बार चेहरे पर मलें।

8. मुलहठी पानी में पीस कर चेहरे पर मलें।

9. मसूर के आटे को घी और दूध में मिलाकर चेहरे पर उबटन करें।

10. धनियां, पठानी, लोध, सफेद बच, पीली सरसों, लाल चन्दन, मजीठ, कूठ कड़वी, मालकांगनी, बड़ के अंकुर, सेंधा नमक, काली मिर्च एक-एक तोला, हल्दी आधा तोला, मसूर की दाल चार तोला। इन सबको खूब महीन पीसकर और चमेली के तेल में घोंटकर रख लेवें। स्नान के पूर्व इसमें से लगभग दो तोला लेकर आधा तोला पिसी हुई खरिया मिट्टी मिलावें और चेहरे पर लेप करें। थोड़ी देर बाद स्नान कर लें। स्नान के बाद चेहरे पर चमेली का तेल मल लें।

3. मुंह का छाला (BLISTER OF MOUTH)

परिचय : मुंह के भीतर जीभ से हलक तक ललाई छाकर घाव या छाले पड़ जाते है।

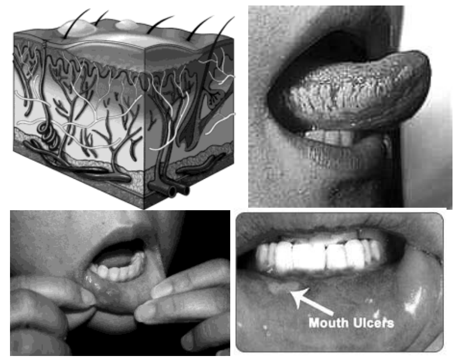

कारण एवं लक्षण : पेट में दूषित जल एकत्र हो जाने से यह रोग होता है। सर्दी , वात व्याधि तथा धूम्रपान आदि से भी मुंह में छाले पड़ जाते है।

प्राकृतिक चिकित्सा : कुछ दिनों तक उपवास या रसाहार के साथ एनिमा लेकर पेट साफ करें। फिर दिन में दो बार कटि स्नान और रात में रात भर के लिए कमर की सूती-ऊनी पट्टी या पेडू पर गीली मिट्टी की पट्टी लगानी चाहिए। पहले प्रतिदिन पैरों को गरम स्नान भी देना चाहिए। मुंह के भीतर और बाहर सिर पर ठण्डे पानी से भीगी तौलिया रखकर दिन में 2 बार भाप लेकर कपड़े की ठंडी पट्टी 20-20 मिनट के लिए बदल-बदल लें। सर्वांग-घर्षण स्नान और प्रचुर जलपान करते रहें। भोजन बिल्कुल सादा और शीघ्र पचने वाला हो।

गहरी नीली + पीली + आसमानी + हरी बोतल का सूर्यतप्त जल बराबर-बराबर मिलाकर आधी छंटाक की 6 खुराक दिन में पीयें तथा आंवला या करेले के रस में शहद मिलाकर चाटना लाभप्रद है।

4. गलित व श्वेत कुष्ठ (LEPROSY)

परिचय : यह एक महाभयानक चर्म रोग है। इसमें रक्त अत्यन्त विषाक्त होकर धीरे-धीरे शरीर को बेकार और नष्टां कर देता है।

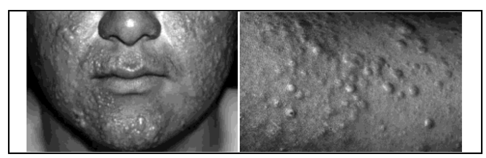

कारण एवं लक्षण : गलित कुष्ठ में पहले हाथ-पांव की अंगुलियां अकड़ कर टेढ़ी-मेढ़ी हो जाती है। फिर उनमें फोड़े बनकर घाव हो जाते है। ये फोड़े शरीर के किसी भी भाग में निकल सकते है। इन फोड़ों में जलन होती, प्यास बहुत सताती है तथा रोग बढ़ जाने पर तो इसका आक्रमण दीमक की तरह हड्डियों पर होने लगता है।

श्वेत कुष्ठ में शरीर के किसी भी भाग पर चमकीले सफेद दाग पड़ते है जहां के रोयें और बाल भी सफेद हो जाते है।

गलित कुष्ठ की प्राकृतिक चिकित्सा-

1-2 दिन के कई उपवास बार-बार करने चाहिए और रोज एनिमा लें। दिन में दो बार पूरे शरीर पर मिट्टी का लेप एक घंटे भर लगायें। जब शरीर पर मिट्टी सूख जाये , तब मल-मल कर स्नान करें। सप्ताह में दो बार भाप-स्नान लेकर मेहन या कटि-स्नान लें। मेहन या कटि-स्नान बारी-बारी से सुबह-शाम लें। रात को पेडू और रोग की जगह पर मिट्टी पट्टी लगाकर सोयें।

घावों पर खुजली उठे तो हरी बोतल के सूर्यतप्त नारियल के तेल में नींबू रस मिलाकर लगावें। हरी और पीली बोतल का सूर्यतप्त जल बराबर मिलाकर 50 ग्राम की 8 खुराक पीयें। प्रतिदिन सुबह 15-20 मिनट तक धूप सेवन करें। कच्ची और उबली शाक सब्जी काफी मात्रा में खायी जायें। लगभग दो मास तक शहद, चने के पानी में शहद , अंकुरित चना, चने की रोटी और शाम को चने का गरम पानी पीना से गलित कुष्ठ चला जाता है। कुष्ठ रोग में नमक और चीनी वर्जित है।

श्वेत कुष्ठ की प्राकृतिक चिकित्सा-

इस चिकित्सा गलित कुष्ठ के समान ही है। उसके अतिरिक्त सफेद दागों पर लाल बोतल के सूर्य तप्त जल की 5 मिनट तक मालिश करें। सारे शरीर पर पीला प्रकाश 15 मिनट तक, उसके बाद नीला कपड़ा पहन लें।

तुलसी की 10 पत्तियां रोज सुबह, शाम और दोपहर को खायें। रात को सोते वक्त मूली के बीज को खूब पीसकर नींबू के रस में फेंटकर सफेद दागों पर लगाकर अरण्ड़ के पत्ते से बांधें तथा सुबह उसको दही के योग से धोकर साफ करें।

अखबार के कागज की गोल कीप बनाकर उसमें सरसों का थोड़ा-सा तेल भर कर नीचे का कोना जलाकर प्लेट में तेल इक्कठ्ठा कर श्वेत कुष्ठ पर लगायें।

5. एक्जिमा (ECZEMA)

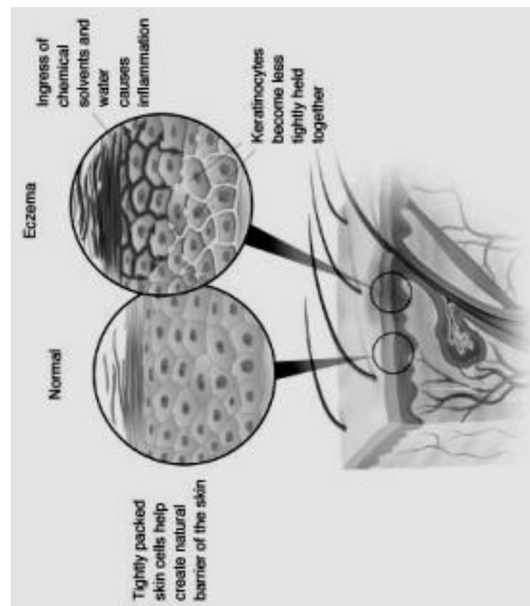

परिचय : एक्जिमा के दो प्रकार है। एक बहता हुआ एक्जिमा और दूसरा सूखा एक्जिमा। एक्जिमा अधिकतर सिर में, कानों के पास, गर्दन पर एवं अंगुलियों में होता है। त्वचा कड़ी और रूखी होकर ललाई छाई रहती तथा थोड़ी-सी सूजन आकर जलन और खाज चलती है। जिसे खुजला कर छिलती रहती है। जब कभी वहां से द्रव रिसने लगता है तो बहता हुआ एक्जिमा बन जाता है।

कारण एवं लक्षण : जिनका रक्त बहुत विषाक्त हो जाता है उन्हीं को एक्जिमा रोग होता है। इसके अतिरिक्त नित्य उत्तेजक साबुन लगाने, कच्चे रंग का वस्त्र पहनने, गंदा मोजा आदि प्रयोग करने तथा रंग, पालिश, सोडा, एवं गंधक आदि वस्तुओं के निरन्तर सम्पर्क में रहने से एक्जिमा होने लगता है। मधुमेह, अपच, गठिया आदि रोगों के साथ भी प्राय: यह रोग होता है। जिन बच्चों को अशुद्ध दूध मिलता है, वे भी एक्जिमा से पीड़ित रहते है।

प्राकृतिक चिकित्सा : लम्बा उपवास या हर 4-5 दिन में एक दिन का उपवास केवल जल पीकर और एनिमा लेकर करें। प्रतिदिन टहले-व्यायाम-योगासन-प्राणायाम करें। फिर 2-3 दिनों तक फलों के रस पर रहने पर दो सप्ताह तक फल और उबली तरकारियों पर रहें। नमक से परहेज करें, कपड़े कम से कम पहनें तथा पानी अधिक पीयें। उसके बाद दूध, फल और मेवों पर कुछ दिनों तक रह कर धीरे-धीरे सादे भोजन पर आयें। प्रतिदिन रात को पेडू पर मिट्टी पट्टी लगायें। एक्जिमा पर भीगे कपड़े की गद्दी रखकर सप्ताह में एक बार भाप-स्नान तथा दो बार पूरे शरीर की गीली चादर की लपेट लें। सप्ताह में 2 बार एप्सम साल्ट

बाथ लें। प्रतिदिन 2-3 बार नीम का पानी मिली मिट्टी सारे बदन पर लेप कर धूप में सुखाकर घर्षण स्नान करें। उसके बाद हरी बोतल के सूर्य तप्त नारियल तेल से सारे बदन की धूप में मालिश करें। आसमानी बोतल का सूर्यतप्त जल 50 ग्राम की 6 खुराक पीयें तथा एक्जिमा के स्थान पर हरा प्रकाश 15-20 मिनट तक डालें।

6. चेचक (POX)

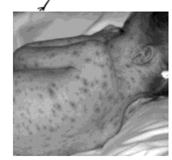

परिचय : यह रोग प्राय: बसन्त व ग्रीष्म में फैलता है। इस रोग में एक खास बात यह है कि जिसको एक बार चेचक निकलकर ठीक हो गया, उसका बदन बिल्कुल निर्दोष और शुद्ध होकर शक्ति और आयु प्राप्त करता हैं तथा फिर उसको कम से कम 12 वर्षों तक यह दुबारा नहीं सताता। परन्तु यदि किसी कारणवश उसका उचित उपचार न हुआ तो रोगी का रक्त विषाक्त बना रहेगा या वह मौत का शिकार होगा। चेचक के तीन प्रकार है-

1. रोमान्तिका

परिचय : इसे दुलारी माता के नाम से जानते है। इसमें चेचक के दाने रोम कूपों की ऊंचाई के निकट निकलने से इसे रोमान्तिका कहा जाता है। यह चेचक भयानक नहीं, बल्कि अच्छी तरह शरीर-शोधन करता है। इसके दाने दो-ढ़ाई दिन में ही शान्त हो जाते है। यह बारह वर्ष से कम उम्र के बच्चों को ही अधिक होती है।

कारण एवं लक्षण : इसके दाने सरसों के दानों के बराबर होते है। इसमें थोड़ा-सा ज्वर आता, घाव नहीं पड़ते और न ही दाग रहते।

प्राकृतिक चिकित्सा : इसके प्रकट होते ही बच्चे की अच्छी तरह पूरी सफाई रखें, 2-4 दिन फल-दूध दें, फिर हल्का भोजन दें तथा रोज एनिमा दें।

2. मसूरिका (CHICKEN POX)

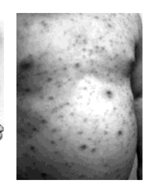

परिचय : मसूर के दानों के बराबर वाली चेचक को मसूरिका, छोटी माता, छोटी शीतला कहते है। यह लगभग दस दिनों ज्वर के साथ ठीक होता है। परन्तु कभी-कभी घाव रहकर दाग बने रहते है जो प्राय: दो माह में ठीक हो जाते है।

कारण एवं लक्षण : यह भी बच्चों को अधिक होती है। आरम्भ में बच्चा अस्वस्थ-सा जान पड़ता, ज्वर, सिर दर्द, जुकाम हो जाता, रोशनी बुरी मालूम होती, खांसी और छींक आती तथा चेहरे पर तमतमाहट रहती है। 1-2 दिनों बाद ही बदन व चेहरे पर अनेक दाने निकलते है। दानों के निकलने के 5-6 घंटों के भीतर ही उनमें जल आकर फफोलों की तरह झलकने लगते है।

प्राकृतिक चिकित्सा : इसके प्रकट होते ही बच्चे की अच्छी तरह पूरी सफाई रखें, साफ-सुथरे और हवादार स्थान पर रोगी को छाया में रखा जाये जहां उसकी आंखों पर तेज रोशनी न पड़े। आंखों को गुलाब जल या फिटकरी के पानी से रोज 2-3 बार धोना चाहिए तथा पलकों को आपस में चिपकने से बचाने के लिए शुद्ध घी का अंजन करें। नींबू-पानी थोड़ा-थोड़ा करके प्रचुर मात्रा में पिलायें। सप्ताह भर

रसाहार के बाद फल-दूध-तरकारियाँ दें, फिर हल्का भोजन दें तथा रोज कुनकुने पानी का एनिमा दें। रोगी का ठीक तरह से उपचार होने पर दाने जल्दी ही मुरझा जाते है।

3. शीतला (SHITALA)

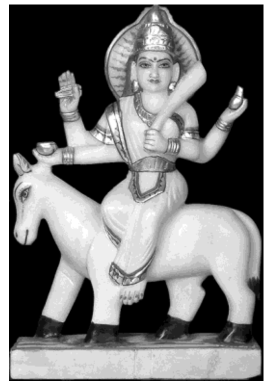

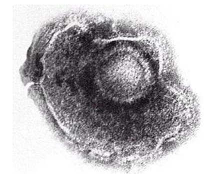

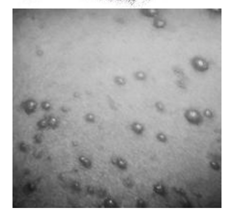

कारण एवं लक्षण : शरीर स्थित विजातीय द्रव्य जनित अत्यधिक उष्णता के परिणाम स्वरूप कोई भी चेचक हो जाता है जो मात्र शीतोपचार से दूर होता है। इसीलिये इसका नाम शीतला रखा गया है। इसमें बड़े-बड़े फफोले शरीर में पड़ते है। इस कारण इसे बड़ी माता कहते है। यह सबसे अधिक कष्टं देने वाली और उचित उपचार के अभाव में मारात्मक चेचक है। इस चेचक के अच्छा होने में समय लगता है। इसका प्रभाव प्रबल एवं भयानक होता है। दानों का पानी विषैला और पीवदार होता है। उचित उपचार, देखभाल और स्वच्छता के अभाव में दुर्गन्ध पैदा होती, आंखों में फुल्ली पड़ जाती, रोगी बहरा हो जाता और चेचक के दाग गहरे बनकर प्राय: जीवन भर रहते है।

प्राकृतिक चिकित्सा : लक्षणों के आधार पर शीतला की सात दशायें मानी गई है। जिनकी चिकित्सा निम्नवत् है-

1. जिस व्यक्ति को चेचक निकलने वाला हो उसकी आरम्भिक दशा में भूख मरकर कब्ज रहने लगती , मुख का स्वाद बिगड़ जाता , सुस्ती, कमजोरी रीढ़ में दर्द और सिर में भारीपन लगता है। तब उपवास आरम्भ कर दें। नींबू-पानी खुब पीयें, प्रतिदिन गुनगुने पानी का एनिमा लें। सुबह-शाम कटि या मेहन-स्नान करें।

2. ज्वर की हालत में सिर व रीढ़ दर्द , वमन, शरीर में ऐंठन-जलन, नाड़ी-गति तेज, चेहरा व नेत्र लाल, अधिक प्यास, जुकाम, घबराहट तथा पलकों के बाल खड़े होने के लक्षण प्रकट होते है। तब रोगी को साफ-सुथरे और हवादार कमरे में साफ सफाई से आराम कराए और कमरे में 2-4 बार सूखी नीम की पत्तियों की धूप करें। सुबह-शाम एनिमा लेकर पेडू पर मिट्टी पट्टी या कटि-स्नान लें। प्रचूर मात्रा में नींबू-पानी और फलों का जूस पीयें। इन उपचारों से रोग की तीव्रता कम हो जायेगी।

3. चेहरे और हाथों पर छोटी-छोटी लाल-लाल अनगिनित पीड़ा दायक फुन्सियां निकलती है। ज्वर का असर कुछ कम होने लगता है।

रोगी को रसाहार करायें। सुबह-शाम पेट पर मिट्टी पट्टी या कटि-स्नान लेकर तौलिया-स्नान करें। जब दाने अच्छी तरह निकल आयें या निकलना बंद हो जाये तब रोगी को अन्धेरे में रखें , दिन में दो बार गुनगुने जल से भरे टब में लेटें। पानी से निकलने के बाद शरीर को पोंछकर कम्बल ओढक़र गर्मी लायें। सबल रोगी को भाप-स्नान और निर्बल को पूरे शरीर की चादर की लपेट दें और दिन में 3-4 बार पेडू पर मिट्टी पट्टी लें। लाल रोशनी सारे शरीर पर डालें तथा 3-4 दिन तक पीली और नीली बोतल का सूर्य तप्त जल मिलाकर 50 ग्राम की 8 खुराक पिलायें।

चेचक के सभी दानों से विषाक्त पानी निकल जाना चाहिए। अन्यथा गला , हृदय, फेफड़ों पर विष के प्रभाव से गले का बैठना, पाखाना के रास्ते खून आना, निमोनिया तथा आंतों के घाव आदि उपद्रव पैदा हो जाते है। आंखों के लाल होते ही साफ जल से धोकर नीम की पत्ती का रस या त्रिफला का पानी या गुलाब जल डालें तथा नीम की पत्तियों को गरम करके सेंक करने से आंखों में फुल्ली पडऩे का डर नहीं रहता। कान-नाक में गुलाब या चन्दन का इत्र दो-दो बूंद डालने से कानों पर चेचक का प्रभाव नहीं पड़ता। मुंह को भी प्रतिदिन 5-6 बार फिटकरी के जल से कुल्ला करें। नीली बोतल के सूर्य तप्त तेल की हल्की-सी मालिश करने पर चेचक के घाव मुलायम बने रहते है।

4. उपचार के अभाव में फुन्सियां पीव से भर जाती है और पुन: तेजी से ज्वर आता है। रोगी को थोड़ा-थोड़ा करके स्वच्छ जल काफी मात्रा में , फल जूस, उबाली तरकारियों का सूप तथा नींबू-पानी पिलाते रहें। प्रतिदिन सावधानी से एनिमा दें। 2-4 दिन सम्पूर्ण शरीर की गीली चादर की लपेट लगायें। इससे दानों में भरे विष को बाहर निकलने में सहायता मिलती है। दानों में खाज उठती है। दानों पर गाय का घी या तिल का तेल रूई के फाया से लगा दें। दानों के फूटने पर उन्हें नीम-पत्ती के उबाले जल से धोयें और सुखने पर गाय का घी लगायें।

इस दशा में फेफड़े और श्वास नलिका कफ से भर जाने पर श्वास लेने में तकलीफ होती है तब शरीर पर एक घंटे तक लाल प्रकाश डालें। छाती और पीठ पर गीली सेंक दें।

5. घाव से भरे दाने सिकुडऩे और सूखने लगते , धीरे-धीरे ज्वर भी कम होने लगता , नींद अच्छी आने लगती है। दानों को नख से कभी भी न खुजलें। अन्यथा दानों के गड्ढे अधिक गहरे हो जायेंगे।

घावों पर नारियल या तिल का तेल लगायें। अधिक खुजली उठने पर मिट्टी पट्टी रखें तथा सारे शरीर को ठंड़े पानी से भीगे साफ गमछे से पौंछते रहें। शरीर पर गीली चादर की कई परत करके रखने से रोगी को शान्ति मिलती और दानों के गड्ढे शीघ्र भरते है। रोगी को फल तथा उबली तरकारी दें।

6. अब तक सारे दाने सूख जाते है। प्रतिदिन एनिमा लें। रोगी की मालिश करके गुनगुने पानी से स्नान करायें। रोगी को फल, दूध, मधु तथा ताजी साग-सब्जियां खिलायें।

7. नियमित उपचार लेने पर शरीर विजातीय द्रव्य से शून्य होकर पुन: शरीर की क्षति-पूर्ति एवं पुन:निर्माण होने लगता है। अत: अब हल्का , सादा, क्षारधर्मी तथा प्राकृतिक भोजन लेना शुरू करें। कभी-कभी एनिमा और सुबह-शाम कटि या मेहन स्नान लेते रहें।

7. फोड़ा (BOIL)

परिचय : फोड़ा के द्वारा शरीर अपना विजातीय द्रव्य बाहर निकाल देता है।

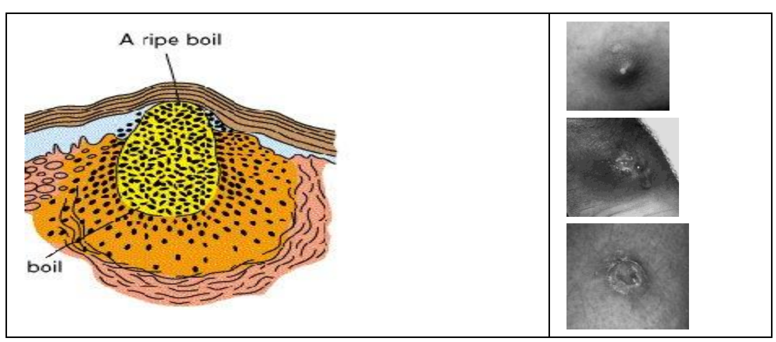

कारण एवं लक्षण : रक्त में व्याप्त विजातीय द्रव्य प्रकृति द्वारा हटाने हेतु शरीर के किसी कमजोर भाग में आकर वहां पर गांठ पैदा करके उस स्थान को लाल कर खाज, जलन और पीड़ा पैदा करता हैं तथा उसके साथ ज्वर

और कब्ज की शिकायतें भी प्राय: होती है। कुछ दिनों बाद वह गांठ मुलायम पडक़र , उसमें पीव और दूषित रक्त भर जाने पर फोड़ा बन जाता है। फोड़े अक्सर उन्हीं को निकलते है जिनका आहार-विहार और रहन-सहन अप्राकृतिक है। जिनसे उनके शरीर का संचालन करने वाले अंग जैसे- आंत , गुर्दे, त्वचा एवं फेफड़ें कमजोर पड़ जाने से अपशिष्टं पदार्थ इकठ्ठाहोकर कमजोर स्थान पर उपद्रव करते है।

प्राकृतिक चिकित्सा : निकलते हुए फोड़ों को दवाइयों से सुखाना-दबा देना या चीरना-फाडऩा अत्यन्त भयानक और हानिकारक है। क्योंकि ऐसा करने से वहाँ इकठ्ठाअपशिष्ठ पदार्थ पुन: रक्त में मिलकर जीवन के लिए खतरा बनता है। अत: फोड़ा पकककर फूट जाने पर अपशिष्ठ विषैले पदार्थ रक्त के साथ शरीर से बाहर निकल जाते है।

जब तक फोड़ा फूट कर पीव न निकल जायें तब तक उस पर रोज2-3 बार भाप देकर गरम-ठंड़ा सेंक करें। फोड़े को रोज नीम की पत्तियां का उबाला पानी या नींबू का रस मिले साफ पानी या फिटकरी-पानी से धोना चाहिए। जब फोड़ा फूट जाये तो उसकी साफ-सफाई का पूरा ध्यान रखें और मक्खी न बैठने दें। मक्खी आदि से बचाने के लिए उन पर नारियल के तेल में4-6 बूंद नींबू का रस मिलाकर लगायें। उल्टे मुंह के फोड़े और जले हुए स्थान पर शुद्ध शहद लगायें।

जब शरीर में काफी तादाद से फोड़े निकले तो2-3 दिनों का उपवास कर लें। उपवास न हो सके तो फलों के जूस पर रहें और सुबह-शाम गुनगुने पानी का एनिमा लें। नींबू-पानी प्रचुर मात्रा में पीयें। सप्ताह में1-2 बार फोड़े पर ठंड़ी पट्टी रखकर पैरों का गरम स्नान लें। प्रतिदिन दो बार कटि या मेहन स्नान लें।

8. भगन्दर (FISTULA)

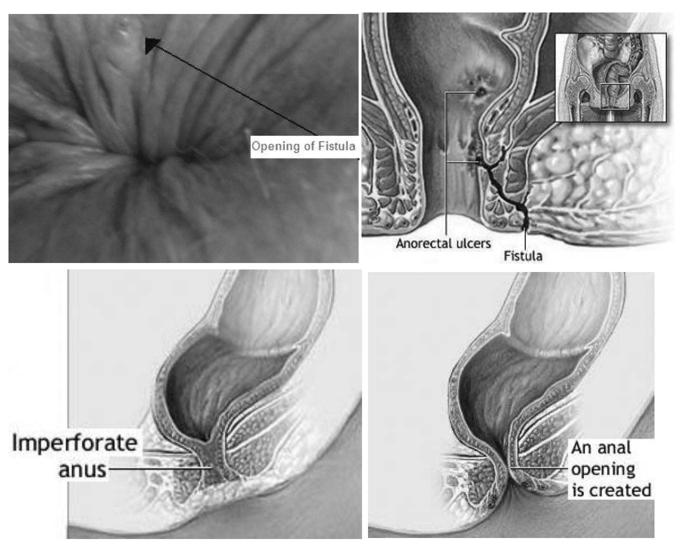

कारण एवं लक्षण : कड़े कब्ज के कारण गुदाद्वार के पास सूजन होकर फोड़े के रूप में भगन्दर की उत्पत्ति होती है जो बाद में फूट जाता है और उसमें से बहुत-सा मवाद और दूषित रक्त निकलता है। घाव कभी-कभी बहुत गहरा और चौड़ा होने पर असह्यं पीड़ा दायक होता है।

प्राकृतिक चिकित्सा : सप्ताह भर का उपवास करके 12-15 दिनों का रसाहार कर लें। शेष सभी उपचार फोड़ा के उपचार की भांति ही करें।

इस रोग में पीली और हरी बोतल का सूर्यतप्त जल बराबर मिलाकर 50 ग्राम की 8 खुराक लें।

9. खुजली (ITCH)

कारण एवं लक्षण : त्वचा के किसी भी हिस्से में खुजली हो सकती है परन्तु विशेषकर हाथ-पैरों में अधिक। इसमें छोटी-छोटी फुन्सियां निकलकर अत्यन्त खुजलाहट और जलन होने पर पककर फूटती है।

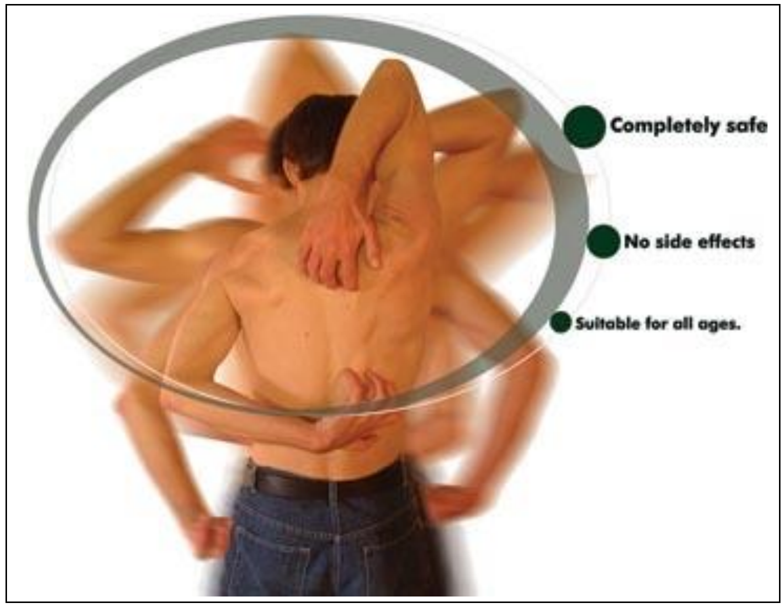

प्राकृतिक चिकित्सा : खुजली को भी पारा, गन्धक से बनी विषैली दवाओं से दबा देना अतिभयानक है। ऐसा करने से बाद में भयंकर बीमारियां शरीर को आ लगती हैं, जिनसे छुटकारा पाना बाद में कठिन होता है।

1-2 दिन तक उपवास कर 5-7 दिन फलों या साग-सब्जियों के जूस पर रहना ठीक है। रूचि के अनुसार कच्ची साग सब्जियां, फल, उबली तरकारियां, हरा चना, कच्चा दूध, नींबू-पानी, गेहूं और चना के आटे की रोटी, शहद, मठ्ठातथा सूखे मेवे आदि को अपने भोजन में शामिल करें। नाश्ता व नमक बिल्कुल बन्द कर दें।

प्रतिदिन टहले-व्यायाम-योगासन-प्राणायाम करें। प्रतिदिन एनिमा लें। सप्ताह में एक बार सारे शरीर का भाप स्नान लेकर कटि-स्नान लें। रात को पेडू व खुजली के स्थान पर मिट्टी पट्टी बांधकर सोयें। कटि स्नान रोज दो बार लें। सप्ताह में तीन बार सारे बदन पर मिट्टी लेप लगाकर धूप में बैठे और सूख जाने पर स्नान करें या एक बड़ें टब में गरम पानी भरकर उसमें 20-30 मिनट तक लेटे। हरी बोतल का सूर्यतप्त जल 50 ग्राम की 4 खुराक लें तथा नीला या हरा प्रकाश 30 मिनट तक प्रतिदिन रोग की जगह पर डालें।

10. **दाद (RINGWORM)**

परिचय : यह शरीर के ऊपर अंगूठी के समान गोलाकार होकर दिखाई पड़ता है और इसी प्रकार बढ़ता व फैलता है।

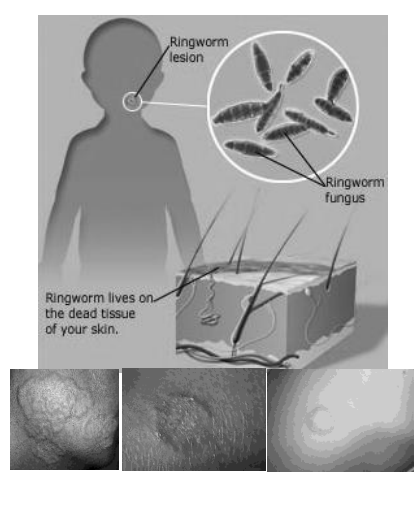

कारण एवं लक्षण : जब पेट, लीवर समेत पूरा श्रीर विभिन्न विजातीय पदार्थो से अत्यन्त खराब और विषाक्त हो जाता है तो ऐसे दाद त्वचा पर प्रकट हो जाते है।

प्राकृतिक चिकित्सा : दाद के शुरू होते ही तीन-तीन घंटे पर यदि थोड़ी देर गरम-ठण्ड़ी सेंक देकर उस स्थान पर उष्णकर गीली मिट्टी का प्रयोग किया जाये तो उसकी जड़ कट जाती है। आसमानी बोतल के सूर्यतप्त जल 50 ग्राम की 4 खुराक पीयें और 1-2 घंटा तक नीला प्रकाश दाद पर डालें।

दाद की बढ़ी हुई दशा में उस स्थान को गुनगुने पानी में दिन में दो-तीन बार30-40 मिनट तक डुबोये रखें। तत्पश्चात् उस पर गरम-ठण्ड़ी सेंक देकर रात को सोते समय उष्णकर गीली मिट्टी पट्टी लगाकर सोयें।1-2 दिन उपवास के बाद 5-7 दिन रसाहार करें। प्रतिदिन एनिमा लें। नींबू-पानी प्रचुर मात्रा में पीयें और रसाहार के बाद भोजन सप्राण और सादा करें। सप्ताह में1-2 बार पूरे शरीर की गीली चादर की लपेट लगायें तथा सुबह-शाम कटि स्नान लें तथा दिन में दो बार दाद पर भाप स्नान देकर गीली मिट्टी की उष्णकर पट्टी बांधें। ज्वर रहने पर रात में पेडू पर भी गीली मिट्टी की उष्णकर पट्टी रखें।

11. घमौरी (PRICKLY HEAT)

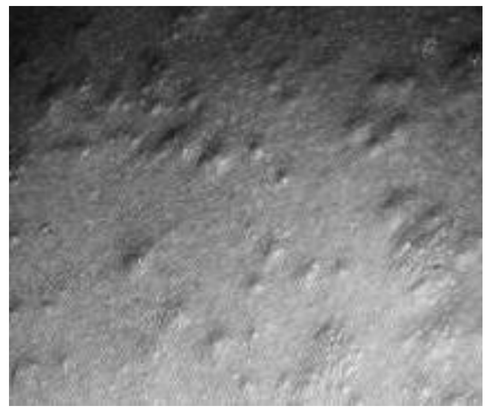

परिचय : कारण एवं लक्षण : बरसात व गर्मी के मौसमों में त्वचा पर छोटी-छोटी लाल फुन्सियां निकल आती है जो कभी-कभी पानी से भरी होती और खुजली चलती है। इसे अम्हौरी या घमौरी कहते है।

प्राकृतिक चिकित्सा : प्राय: यह कुछ दिनों में अपने आप ठीक हो जाती है परन्तु यदि इससे तकलीफ हो तो रोज रात भर के लिए पेडू पर गीली मिट्टी की उष्णकर पट्टी बांधें और प्रतिदिन एनीमा लें। प्रतिदिन दो बार पूरे शरीर पर मिट्टी लेप लगाकर सुखाने पर स्नान करें। भोजन अनुत्तेजकर और सादा करें। बरसात के पानी में खूब मलमल कर नहायें।

12. छाला (ULCER)

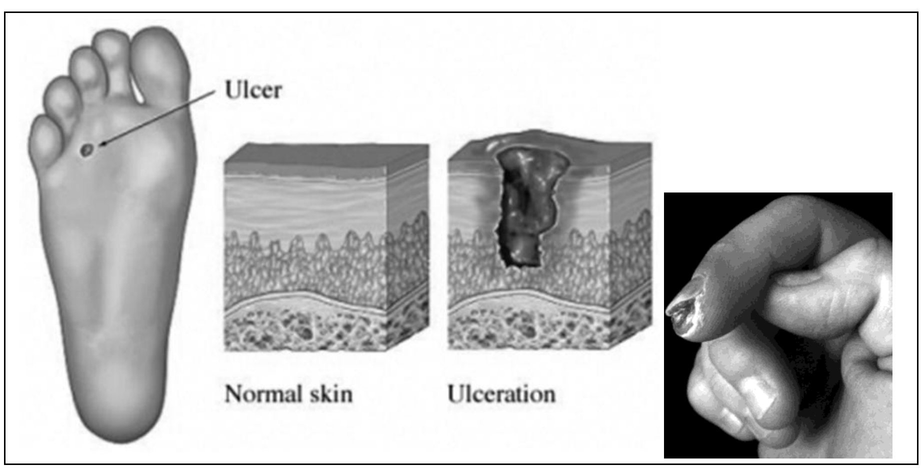

कारण एवं लक्षण : शरीर में विजातीय द्रव्य की मात्रा अधिक होने पर चर्म पर छाले की उत्पत्ति होती है।

प्राकृतिक चिकित्सा : नये छाले पर दिन में दो बार10 मिनट तक हल्की भाप देकर कपड़े की ठंड़ी पट्टी बांधे रखे और उसे बराबर तर करते रहने से ही अच्छा हो जाता है। परन्तु जब छाले से रक्त निकलता हो तो पट्टी को बर्फ के जल में भिगो-भिगोकर छाले पर रखना चाहिए या छाले वाले स्थान को ठंड़े जल में काफी देर तक डुबोये रखें।

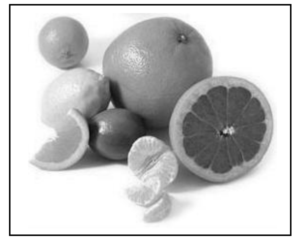

छोटे कई उपवास के साथ एनिमा, कटि-स्नान, पेडू पर मिट्टी पट्टी तथा कमर की गीली पट्टी लें। सप्ताह में एक बार पूरे शरीर की गीली चादर की लपेट लें। प्रतिदिन धूप में शरीर को गरम करके सुबह-शाम कटि स्नान लें। शा म को15 मिनट मेहन स्नान करें।

पुराने छाले को दिन में दो बार भाप से सेंककर उस पर मिट्टी की गीली उष्णकर पट्टी 2 घंटा तक बदल-बदल कर रखें। दिन में 1-2 बार छाले वाले स्थान को गुनगुने पानी में काफी देर तक डुबाये रखें। छाले को प्रतिदिन नीम के पानी या नींबू का रस मिले पानी से धोकर साफ करें तथा नींबू-पानी प्रचुर मात्रा में पीयें।

5.6 **सारांश**

त्वचा शरीर और वातावरण के मध्य सीमान्त या सीमा बंधक मेम्ब्रेन है, जिसके माध्यम से तमाम वस्तुओं का विनिमय होता है। यह शरीर के सभी तरल (fluid) पदार्थों व आंतरिक ऊतकों (अंगों) को बाह्य ï वातावरण से बचाती हैं अर्थात् त्वचा एक रोधी भित्ति का कार्य करती है। इसके फलस्वरूप शरीर की सभी कोशाओं को वह वातावरण मिलता है जिसमें वे जीवित रह सकें। इस सुरक्षात्मक कार्य को अधिक मजबूत बनाने के लिए त्वचा के कुछ सहायक रूप भी हैं , जैसे- नाखुन व बाल। वातावरण-संचारेक्षण के लिए यह ज्ञानेन्द्रिय का कार्य करती है तथा शरीर का तापक्रम नियन्त्रित करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। बाल शरीर से अधिक ताप को निकलने नहीं देते।

5.7 **बोधात्मक प्रश्न**

1. शरीर में त्वचा के प्रमुख कार्यो का वर्णन करो?
2. त्वचा या आच्छदीय संस्थान के कोई पाँच रोगों के नाम बताइये?
3. चर्म रोग (Skin disease) के कारण व लक्षणों का वर्णन करते हुए प्राकृतिक चिकित्सा बताइए?
4. मुंहासें (Pimples) की प्राकृतिक चिकित्सा बताइए?
5. मुंह का छाला (Blister of mouth) के कारण व लक्षणों का वर्णन करते हुए प्राकृतिक चिकित्सा बताइए?
6. एक्जिमा (Eczema) के कारण व लक्षणों का वर्णन करते हुए प्राकृतिक चिकित्सा बताइए?
7. मसूरिका (Chicken pox) के कारण व लक्षणों का वर्णन करते हुए प्राकृतिक चिकित्सा बताइए?
8. फोड़ा (Boil) की प्राकृतिक चिकित्सा बताइए?
9. भगन्दर (Fistula) की प्राकृतिक चिकित्सा बताइए?
10. खुजली (Itch) के कारण व लक्षणों का वर्णन करते हुए प्राकृतिक चिकित्सा बताइए?

5.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

संदर्भ साहित्य	लेखक	संदर्भ साहित्य	लेखक
नवीन मेडिकल प्रवेश परीक्षा	नवीन ग्रुप ऑफ पब्लिकेशन्स्- इलाहाबाद	जीवनी शक्ति कैसे जगायें	डॉ. चन्द्र दीप सिंह
मानव शरीर रचना एवं क्रिया-विज्ञान	डॉ. अनन्त प्रकाश गुप्ता	आपका आरोग्य आपके हाथ में	देवेन्द्र वोरा
प्राकृतिक स्वास्थ्य एवं योग	डॉ. बृज भूषण गोयल	प्राकृतिक चिकित्सा एवं योग वैज्ञानिक प्रयोग	डॉ. नागेन्द्र कुमार नीरज
प्राकृतिक आयुर्विज्ञान	डॉ. राकेश जिन्दल	जीवेम् शरद शतम्	पं. श्री राम शर्मा आचार्य वाङ्मय
वृहद प्राकृतिक चिकित्सा	डॉ. ओ. पी. सक्सेना	बिना औषधियों के कायाकल्प	पं. श्री राम शर्मा आचार्य
स्वस्थवृत विज्ञान	प्रो. रामहर्ष सिंह	निरोग जीवन का राज मार्ग	पं. श्री राम शर्मा आचार्य
प्राकृतिक स्वास्थ्य शास्त्र	आचार्य शेषांद्रि स्वामीनाथन	दीर्घ जीवन की प्राप्ति	पं. श्री राम शर्मा आचार्य
आदिऊर्जा प्राण	अमश्ता भारती	पंच तत्वों द्वारा सम्पूर्ण रोगों का निवारण	पं. श्री राम शर्मा आचार्य
स्वास्थ्य के सोपान	धनरूपमल सुराणा	रोगों की सरल चिकित्सा	विट्ठलदास मोदी
सरल प्राकृतिक चिकित्सा	डॉ. लक्ष्मी नारायण शर्मा	जीने की कला	विट्ठलदास मोदी
पातंजली योगसूत्र	स्वामी विवेकानंद	आरोग्य प्रकाश	वैद्यराज पं. रामनारायण शर्मा
प्राकृतिक चिकित्सा एवं योग	श्रीमत्ती राज कुमारी गुप्ता	मौलिक चिकित्सा कौन सी?	डॉ. चंचलमल चोरडिया
प्राकृतिक जीवन की ओर	श्री एडोल्फ जस्ट	100 वर्ष कैसे जीयें	आचार्य श्याम सुन्दर सुमन
100 वर्ष निरोगी रहिए	माणेक लाल म. पटेल	प्राकृतिक चिकित्सा दर्शन	हेनरी लिंडलार
जीव-विज्ञान भाग-1	बी. एस. राम दास, देव ज्योति दास	प्राकृतिक चिकित्सा एवं स्वास्थ्य	डॉ. महेन्द्र कुमार जाजपुरा
जीव-विज्ञान भाग-2	ओसवाल ट्यूटोरियल	मानव शरीर रचना एवं क्रिया-विज्ञान	डॉ. महेन्द्र कुमार जाजपुरा
शरीर रचना एवं क्रिया-विज्ञान	डॉ. विमल कुमार मोदी	रोग, उनके कारण, लक्षण एवं उपचार	डॉ. महेन्द्र कुमार जाजपुरा
बिना दवा परफेक्ट हेल्थ	डॉ. बलराम पटेल	प्राण शक्ति उपचार; प्राचीन विज्ञान कला	चौ. कोक सुई

इकाई 6

प्रजनन संस्थान एवं उसके रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा

(Reproductive system & nature cure for its diseases)

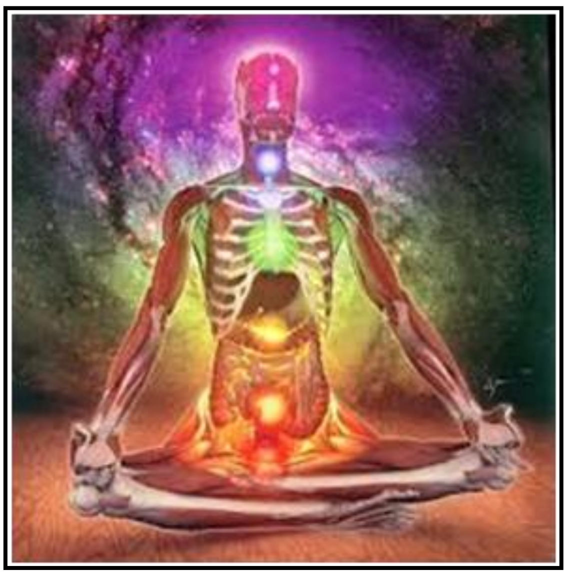

इकाई की रूपरेखा

6.1 उद्देश्य

6.2 प्रस्तावना

6.3 निषेचन (Fertilization)

6.4 प्रजनन संस्थान के रोगों की सूची

6.5 प्रजनन संस्थान के प्रमुख रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा

6.6 सारांश

6.7 बोधात्मक प्रश्न

6.8 संदर्भ ग्रंथ

6.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्यनन के बाद आप निम्न जानकारी प्राप्त कर सकेगे -

- निषेचन (Fertilization)
- प्रजनन संस्थान के रोगों की सूची
- प्रजनन संस्थान के प्रमुख रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा

6.2 प्रस्तावना

प्रत्येक सजीव में अपने ही जैसा एक अन्य जीव उत्पन्न करने की क्षमता होती हैं , जिसे प्रजनन या जनन-क्रिया (reproduction) कहते हैं। इसी से जीवों में अपनी-अपनी प्रजातियों की वंशवृद्धि होकर वंशक्रम को शाश्वत बनाये रखते है। सभी जीवों में यह क्रिया भिन्न-भिन्न होती हैं , जो कोशिकाओं के संवद्र्धन के फलस्वरूप होती है। निर्जीवों में जनन-क्रिया नहीं होती है। एक कोशा वाले जीव जैसे- अमीबा एवं बैक्टीरिया आदि में यह क्रिया सबसे साधारण रीति से होती है , जिससे पूर्ण रूप से विकसित अमीबा का जीवद्रव्य व केन्द्रक पूरा का पूरा शरीर दो भागों में बंट जाता हैं। इस प्रजनन को अलैंगिक जनन (asexual reproduction) के नाम से जानते है। द्विकोशिकीय, बहुकोशिकीय एवं स्तनधारीय जीवों में जनन-क्रिया जटिल प्रकार से सम्पन्न होती है। पूर्ण रूप से विकसित जीवों में स्तन होता है , उन्हें स्तनधारी (mammals) कहते हैं। स्तनधारियों में दो पृथक् विशिष्ट जनन कोशिकाओं (पुरूष मे शुक्राणु (spermatozoa) एवं स्त्री में डिम्ब (ovum), जिन्हें युग्मक कहते है) के संयोग (fusion) से ही युग्मनज (zygote) अर्थात् जीव की उत्पत्ति होती हैं तथा यह जीव स्त्री के गर्भाशय में विकसित होकर एक नवीन शिशु के रूप में जन्म लेता है , जैसे- मनुष्य में नर (male) और मादा (female) जनन अंग रचना और कार्य की दृष्टि से अलग-अलग होते हैं। लैंगिक संसर्ग अर्थात् मैथुन-क्रिया से नये जीव या संतान की उत्पत्ति होती है। अत: इस प्रजनन को लैंगिक जनन (sexual reproduction) के नाम से जानते है।

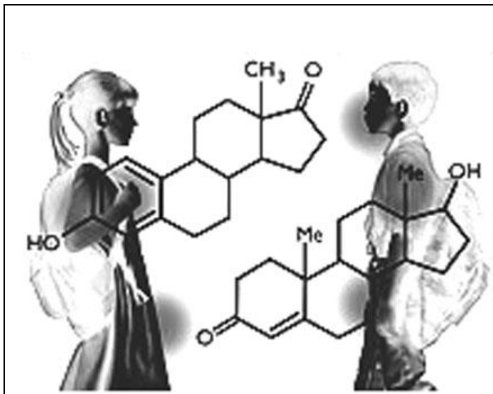

यौवनारंभ (Puberty)

6.3 निषेचन (Fertilization)

पुरूष जनन कोशिका के शुक्राणु (sperm) और स्त्री जनन कोशिका (ovum) डिम्ब के परस्पर संयोजन (fusion) को निषेचन (Fertilization) कहते हैं। यह संयोजन सामान्यत: गर्भाशय नली की बाहरी दो-तिहाई और भीतरी एक-तिहाई की संधि पर होता हैं। शुक्राणु यौन समागम के समय गर्भाशय में प्रवेश कर गर्भाशय नली में जाते हैं। परन्तु एक डिम्ब की सामान्यत: एक ही शुक्राणु निषेचित करता हैं। निषेचित डिम्ब फिर धीरे-धीरे खिसककर गर्भाशय में आता हैं। इस दौरान निषेचित डिम्ब की कोशिका का विभाजन भी होता रहता हैं। यह निषेचित डिम्ब फिर गर्भाशय के अन्तर्गर्भाशय कला (endometrium) में आरोपित (implant) हो जाता हैं।

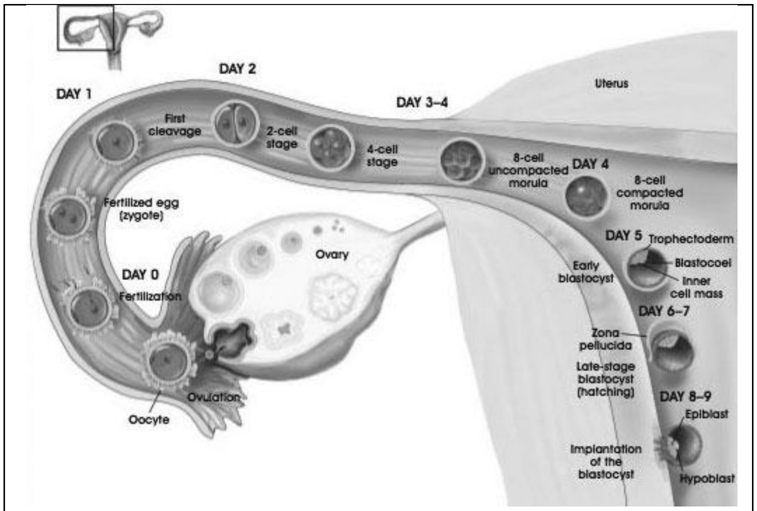

निषेचन (Fertilization)

6.4 प्रजनन संस्थान के रोगों की सूची

स्त्री-पुरूष सम्बन्धी गुप्तांग रोग

क्र.	हिन्दी या संस्कृत नाम	English name	क्र.	हिन्दी या संस्कृत नाम
1.	उपदंश (गर्मी) और सुजाक	Gonorrhoea	4.	संभोग के प्रति उदासीनता
2.	आतशक	Syphilis	5.	सोम रोग (जल एवं धातु ह्रास)
3.	धातु दौर्बल्य	Seminal weakness		

पुरूषों के रोग

1.	एड्स	Aids	7.	अण्डकोष की वृद्धि, अण्ड्कोष में पानी पड़ना	Hydrocele
2.	सिफिलिस	Treponama pailidum infection			
3.	शीघ्र पतन	Low retention, Premature ejaculation, Rapid ejaculation	8.	पुरूष ग्रंथि का बढ़ना	Prostate disorders, Enlargement of the prostate
4.	स्वप्नदोष	Night pollution, Wet dreams	9.	शुक्र प्रमेह	
5.	हस्त मैथुन	Masterbetion	10.	शिशन की सुस्ती	
6.	नपुंसकता (नामर्दी)	Impotency	11.	गुदा मैथुन	

स्त्रियों के मासिक-धर्म सम्बन्धी रोग

1.	मासिक आरम्भ में विलम्ब	Amenorrhoea
2.	मासिक का असमय में बंद होना	Secondary amenorrhoea
3.	मासिक आने से पहले दर्द होना, कष्ट के साथ मासिक आना	Dys menorrhoea

4.	21 दिनों से कम समयान्तराल नियमित मासिक	Poly menorrhoea
5.	नियमित मासिक में अत्यधिक रक्त-स्त्राव	Hyper menorrhoea
6.	नियमित मासिक में अल्प रक्त-स्त्राव	Hypo menorrhea, Sckenti menturation
7.	नियमित मासिक में अधिक दिनों तक रक्त-स्त्राव	Menorrhagia
8.	अनियमित मासिक	Metrorrhagia
9.	अनियमित मासिक में अधिक दिनों तक अत्यधिक रक्त-स्त्राव	Meno metrorrhagia
10.	रजोनिवृत्ति के बाद कष्ट	Menopause
11.	रजोनिवृत्योन्तर रक्त-स्त्राव होना	Post menopausal bleeding, Menopausal syndrome
12.	दो मासिक के बीच में रक्त-स्त्राव (गर्भनिरोधक दवाओं से)	Break through bleeding
13.	मासिक-धर्म के दौरान अनेक व्याधियाँ- सिरदर्द, कमर दर्द, जी मचलना, तनाव, गुस्सा, थकान, आफरा, सूजन आदि	Pre-menstrual syndrome
14.	श्वेत-प्रदर	Leucorrhoea
15.	मासिक के अलावा गर्भाशय से रक्त-स्त्राव	
16.	रक्त-गुल्म (मासिक के समय गर्भाशय में रक्त जमना)	

स्त्रियों के गर्भाशय-सम्बन्धी रोग

1.	हिस्टीरिया	Hysteria	6.	गर्भपात, गर्भ गिरना	11.	गर्भाशय का कैंसर (अर्बुद)
2.	बांझपन (गर्भ न ठहरना)	Sterelity	7.	गर्भ-काल के उपद्रव	12.	डिम्बाशय एवं जरायु प्रदाह
3.	गर्भाशय का टलना	Prolapsed of the uterus	8.	गर्भाशय जलन	13.	यौनिद्वार में जलन, दुर्गन्ध, खुजली और पीड़ा
4.	गर्भपात की आशंका	Habitual abortion	9.	गर्भाशय में फोड़े		
5.	गर्भाशय की सूजन	Inflammation of the uterus	10.	योनि दोष		

स्त्रियों के प्रसव-सम्बन्धी रोग

1.	पेट में बच्चे का मर जाना	6.	प्रसव के समय प्रसव-पथ का फट जाना	11.	स्तनों से अधिक दूध बहना
2.	नकली प्रसव पीड़ा	7.	प्रसव के बाद भी दर्द का होना	12.	स्तनों में दूध की कमी
3.	कष्टकर प्रसव	8.	प्रसव के बाद पेशब रूकना	13.	प्रसूम-ज्वर (सूतिका रोग)
4.	आँवल गिरने में विलम्ब	9.	दूध ज्वर		
5.	प्रसव के बाद अधिक रक्त-स्त्राव	10.	स्तन प्रदाह (थनैली)		

6.5 प्रजनन संस्थान के प्रमुख रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा

1. एड्स **(AIDS)**

परिचय : विश्व स्वास्थ्य संगठन (W.H.O.) के अनुसार एड्स एक जान लेवा रोग है। एड्स का अर्थ है कि एक्वायर्ड इम्युनो डेफीशियेंशी सिन्ड्रोम जो एच.आई.वी. विषाणु से होता है। यह एक प्रकार का छिपा चोर है, जो शरीर के अन्दर सोता रहता है। पूरी तरह फैल जाए तो शरीर को तहस-नहस करने वाला गम्भीर रोग है।

कारण एवं लक्षण : किसी भी दवाई से ठीक न होने वाला रूक-रूक कर हल्का बुखार आता है, पतले दस्त, भूख नहीं लगती, रात-दिन बहुत थकान और कमजोरी रहती, वजन कम हो जाता है तथा ग्रन्थियाँ सूज जाती, मुंह और भोजन नली में सफेद दाग या जख्म बन जाते है। यह रोग मुख्यतया वीर्य और खून से फैलता है। समलैंगिक सम्बन्ध और पर स्त्री गमन या पर पुरूष गमन इस रोग के मुख्य कारण है।

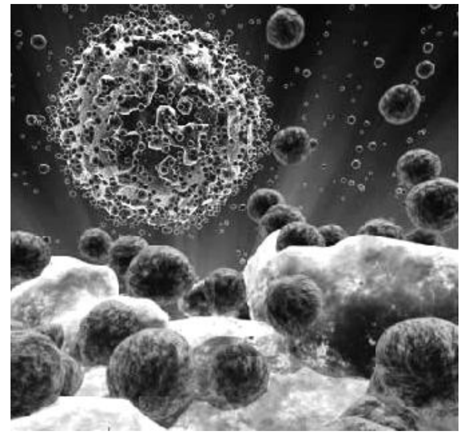

प्राकृतिक चिकित्सा : एड्स का मतलब है ऐसा रोग जिसमें रोग प्रतिरोधक शक्ति क्षीण हो गयी है। जीवन में वही व्यक्ति निरोग रहता है जो प्रकृति के निकट रहता है सन्तुलित आहार-विहार और साफ-सुथरा रहन-सहन हो। तनाव, चिन्ता, सिगरेट-बीड़ी, शराब या मादक द्रव्य शरीर की रोग प्रतिरोधक शक्ति को कम करते है। इनसे दूर रहिये।

प्रतिदिन टहले-व्यायाम-योगासन-प्राणायाम करें। सुबह-शाम धूप सेवन करें, नियमित रात को सात-आठ घंटे की नींद लें, तली-भूनी, मिर्च-मसालों एवं बाजारी खाद्य पदार्थ का उपयोग न करें, केवल अंकुरित अन्न, मधु, दूध, दही, मौसम की हरी साग-सब्जियों और फल या जूस का सेवन करें। इस प्रकार अपनी प्रतिरोधक शक्ति बढ़ जाने से आप एड्स जैसी जान लेवा बीमारी से बचे रह सकते है।

सावधानियाँ :

1. रक्तदान महादान है। परन्तु रक्तदान करते समय यह जरूर ध्यान रखें कि सूई नई काम लें।

2. रक्त ग्रहण करते समय ध्यान रखें कि यह रक्त किसी एड्स रोगी का तो नहीं है। अत: किसी जानकार व्यक्ति का ही रक्त ग्रहण करें।

3. कोई भी स्त्री-पुरूष अन्य से यौन सम्पर्क न करें।

2. स्वप्नदोष **(WET DREAMS, NOCTURAL EMISSION, NIGHT POLLUTION)**

कारण एवं लक्षण : शरीर में विजातीय द्रव्य की उपस्थिति के कारण जब शरीर के स्नायु जाल में विकार उत्पन्न हो जाता है तो पुरूष विवाहित हो या अविवाहित, उसको स्वप्न या जाग्रत अवस्था में वीर्यपात हो जाया करता है।

यह महीने में 3-4 बार हो और यदि सिर में पीड़ा और बदन में सुस्ती न आये तो विशेष चिन्ता की बात नहीं। परन्तु आये दिन स्वप्नदोष होने पर निश्चित ही शरीर का नाड़ी जाल विजातीय द्रव्य के भार से बुरी तरह आक्रान्त है। जिसे यदि शीघ्र निर्मल न किया तो शरीर में और भी अधिक भयानक रोगों की उत्पत्ति होने की पूरी सम्भावना रहती है।

प्राकृतिक चिकित्सा : एक दिन का उपवास नींबू-पानी पर करके 2-3 दिन तक फलों के जूस पर रहें। सुबह-शाम एनिमा लें। तत्पश्चात् एक सप्ताह तक सुबह धारोष्ण दूध और फल तथा शाम को उबली शाक सब्जियां और सलाद लें। 5 बजे सुबह शौचादि से निपट लेने के बाद पेडू तथा जननेन्द्रिय पर मिट्टी पट्टी 30-45 मिनट तक लगाने के बाद 10 मिनट तक कटि स्नान करें। 3-4 बजे रीढ़ की गीली पट्टी 30 मिनट

तक दें तथा दूसरे दिन 10 मिनट का मेहन स्नान करें। रात को सोते समय कमर की गीली पट्टी लगाकर सोये या पेडू पर मिट्टी पट्टी रखें।

आसमानी बोतल के सूर्य तप्त जल 50 ग्राम की चार खुराक पीयें। सोने से पहले उसी रंग की बोतल में तैयार किये हुए तेल की मालिश मेरूदण्ड़ के निचले हिस्से पर, सिर के पिछले हिस्से पर तथा हृदय पर 5 मिनट तक करें। उसके बाद अण्डकोष व जननेन्द्रिय को 5 मिनट तक किसी ठंड़े पानी से भरे बर्तन में रखें। अंत में एक गिलास गरम नींबू-पानी पीकर और दाहिनी करवट लेट जायें। चित्त लेटकर कभी न सोयें। रात को जब नींद खुले तब उठकर ठंड़े जल से भीगी तौलिया से समस्त शरीर को पौंछ कर पुन: सो जायें। सुबह-शाम टहले, सूर्य नमस्कार, शीर्षासन, सर्वांगासन, धनुरासन एवं भुजंगासन तथा प्राणायाम करें। प्रतिदिन घर्षण स्नान से पहले 4-5 मिनट तक गर्दन के पीछे तथा रीढ़ पर ठंड़े जल की धार गिरायें।

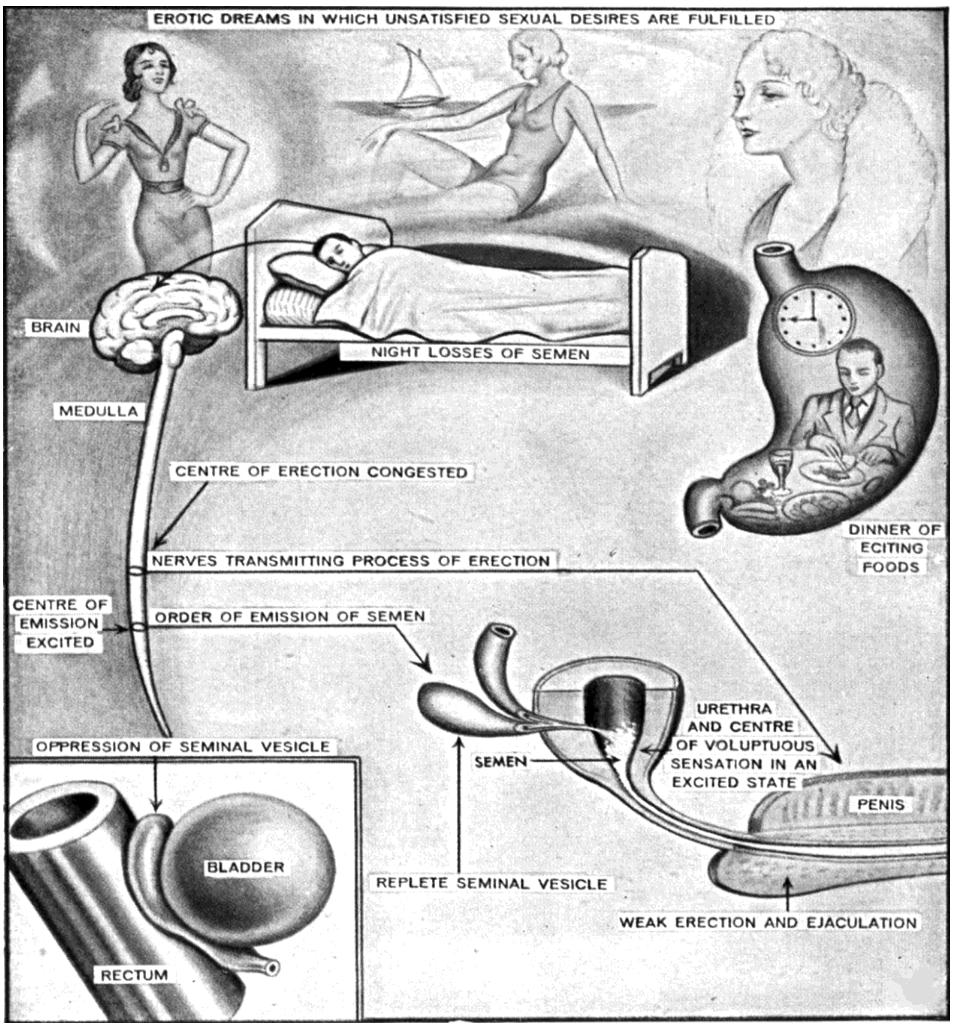

3. श्वेत प्रदर या ह्वाइट्स **(LEUCORRHOEA)**

परिचय : जब नवयौवन रस स्त्री शरीर में उत्पन्न होने लगता है तब प्रतिमास 3 से 6 दिन तक मासिक धर्म होता है। यह स्त्री की स्वाभाविक प्रवृति है, पर 6 दिन से अधिक रक्तस्राव होते रहना धीरे-धीरे प्रदर रोग का रूप धारण कर लेता है। प्रदर का स्राव गर्भाशय और योनि में प्रदाह उत्पन्न होने से होता है। प्रदर में श्लेष्मिकस्राव नीला, गुलाबी, सफेद, लाल, हरा, पीला, गाढ़ा, पतला, मांस के छिछड़े सहित, फेनदार, लसीला एवं बदबूदार होता है। इसे साधारणत: श्वेतप्रदर कहते है।

कारण एवं लक्षण : साधारणत: माहवारी के समय ही प्रदर का स्राव होता है। तब अधिक स्राव होने पर पेडू में भार, सिर में चक्कर, कमर, पीठ, हाथ-पैरों में दर्द और ऐंठन, मितली व वमन, कमजोरी का बढ़ना, आंखों, हथेलियों और पावं के तलुओं में जलन, ज्वर, मूर्छा, प्यास, कब्ज आदि सताते है, भूख मर जाती है, योनि में खाज, दाने एवं सूजन आ जाती, पेशाब में जलन, श्वास फूलने लगती, हृदय गति तेज, प्रदर के स्राव से योनिमार्ग में घाव होकर मवाद निकलने लगता , किसी काम में मन नहीं लगता , मिजाज चिड़चिड़ा हो जाता, मुंह सूज जाता, आंखों के नीचे कालापन, शरीर पीला, मुख पर झुर्रिया पडकर स्त्री का सौंदर्य नष्ट हो जाता है तथा गर्भ स्थिर न होने से स्त्री बांझ रह जाती है।

इस रोग के मूल कारण अप्राकृतिक जीवन , अप्राकृतिक भोजन, दवाओं व नशीली चीजों का अधिक सेवन, गंदी आदतें एवं अस्वास्थ्यप्रद वातावरण के अलावा निरन्तर शोक-चिन्ता का वातावरण , दिन में अनावश्यक सोना, आलस्य और अकर्मण्यता, भारी बोझ उठाना, जल्दी संतान होना, पुरूष सहवास से तृप्ति नहीं, अधिक पुरूष सहवास, मासिक स्राव के समय सहवास, गुप्तांगों पर चोट लगना।

इस रोग की वृद्धि निम्न रोगों के कारण भी होती हैं- मासिक अनियमित , गर्भपात, गर्भाशय का टलना, उसमें घाव, सूजन, खाज आदि का होना, रक्ताल्पता, पीलिया, हिस्टीरिया, राजयक्ष्मा, बहुमूत्र, पेट के रोग जैसे- अजीर्ण, कब्ज, बवासीर, आंत-प्लीहा में घाव। गुदा के कीड़ों का किसी प्रकार से योनि में प्रवेश आदि।

प्राकृतिक चिकित्सा : सर्वप्रथम यदि गर्भाशय या योनि में सूजन, प्रदाह, घाव आदि हो गया हो तो सबसे पहले उसे मिटाने का प्रयत्न करना चाहिए। इसके लिए प्रतिदिन सात दिनों तक नीम के गुनगुने पानी या नीली या हरी बोतल का सूर्यतप्त पानी का डूश योनि मार्ग में दें। तुरन्त बाद गुनगुने पानी के टब में 10-15 मिनट तक बैठने के बाद मक्खन या गाय के घी से योनि लेपन करें। फिर गर्भाशय-द्वार को एक फाये से बंद कर दें और उसे दिन में 5-6 बार बदलें।

अब मूल प्रदर रोग का उपचार करें- 2-3 दिन उपवास, सप्ताह भर रसाहार या फलाहार करें। इसके बाद 10-12 दिन दूध का कल्प, 2-3 दिन रसाहार 10-12 दिन दूध का कल्प, 2-3 दिन रसाहार क्रमश: करते

रहें जब तक रोग दूर न हो जायें। सादा और अनुत्तेजक भोजन तथा आंवले , मूली, शतावर और शहद का प्रतिदिन सेवन करें।

रसाहार के समय गरम-ठंड़ा कटि स्नान लें। रबड़ की थैली में गरम पानी भरकर योनि स्थान की सेंक करें। पसीना निकलने के तुरन्त बाद 10 मिनट तक मेहन स्नान लें। फिर घर्षण-स्नान करें। सप्ताह में दो बार सारे शरीर का भाप-स्नान लें। योनि दर्द की हालत में गुनगुना पानी पीना , गरम पानी का सेंक या गरम जल में बैठें। मासिक धर्म के दिनों में उपचार बन्द रखें।

प्रतिदिन शक्ति अनुसार टहलें, सर्वांङ्गासन, पश्चिमोत्तासन, हलासन, भुजंङ्गासन करें, प्राणायाम करें। इस रोग में पीली व हरी बोतल का सूर्यतप्त जल मिलाकर 50 ग्राम की 6 खुराक लें तथा प्रतिदिन योनि पर 15 मिनट तक हरा प्रकाश डालें।

6.6 **सारांश**

प्रत्येक सजीव में अपने ही जैसा एक अन्य जीव उत्पन्न करने की क्षमता होती हैं , जिसे प्रजनन या जनन-क्रिया (reproduction) कहते हैं। इसी से जीवों में अपनी-अपनी प्रजातियों की वंशवृद्धि होकर वंशक्रम को शाश्वत बनाये रखते है। द्विकोशिकीय, बहुकोशिकीय एवं स्तनधारीय जीवों में जनन-क्रिया जटिल प्रकार से सम्पन्न होती है। पूर्ण रूप से विकसित जीवों में स्तन होता है , उन्हें स्तनधारी (mammals) कहते हैं। स्तनधारियों में दो पृथक् विशिष्ट जनन कोशिकाओं (पुरूष मे शुक्राणु (spermatozoa) एवं स्त्री में डिम्ब (ovum), जिन्हें युग्मक कहते है) के संयोग (fusion) से ही युग्मनज (zygote) अर्थात् जीव की उत्पत्ति होती हैं तथा यह जीव स्त्री के गर्भाशय में विकसित होकर एक नवीन शिशु के रूप में जन्म लेता है , जैसे- मनुष्य में नर (male) और मादा (female) जनन अंग रचना और कार्य की दृष्टि से अलग-अलग होते हैं। लैंगिक संसर्ग अर्थात् मैथुन-क्रिया से नये जीव या संतान की उत्पत्ति होती है।

6.7 **बोधात्मक प्रश्न**

1. निषेचन (Fertilization) किसे कहते है?
2. स्त्री-पुरूष सम्बन्धी कोई दो गुप्तांग रोग के नाम बताइये?
3. पुरूषों के कोई पाँच रोगों के नाम बताइये?
4. स्त्रियों के मासिक-धर्म सम्बन्धी कोई पाँच रोगों के नाम बताइये?
5. स्त्रियों के गर्भाशय-सम्बन्धी कोई पाँच रोगों के नाम बताइये?
6. स्त्रियों के प्रसव-सम्बन्धी कोई पाँच रोगों के नाम बताइये?
7. एड्स (Aids) के कारण व लक्षणों का वर्णन करते हुए प्राकृतिक चिकित्सा बताइए?
8. स्वप्नदोष (Wet dreams) के कारण व लक्षणों का वर्णन करते हुए प्राकृतिक चिकित्सा बताइए?
9. श्वेत प्रदर (Leucorrhoea) के कारण व लक्षणों का वर्णन करते हुए प्राकृतिक चिकित्सा बताइए?

6.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

क्र	संदर्भ साहित्य	लेखक	क्र	संदर्भ साहित्य	लेखक
1.	जीव-विज्ञान भाग-1	बी. एस. राम दास, देव ज्योति दास	27.	प्राकृतिक चिकित्सा एवं स्वास्थ्य	डॉ. महेन्द्र कुमार जाजपुरा
2.	जीव-विज्ञान भाग-2	ओसवाल ट्यूटोरियल	28.	मानव शरीर रचना एवं क्रिया-विज्ञान	डॉ. महेन्द्र कुमार जाजपुरा
3.	शरीर रचना एवं क्रिया-विज्ञान	डॉ. विमल कुमार मोदी	29.	रोग, उनके कारण, लक्षण एवं उपचार	डॉ. महेन्द्र कुमार जाजपुरा
4.	बिना दवा परफेक्ट हेल्थ	डॉ. बलराम पटेल	30.	प्राण शक्ति उपचार; प्राचीन विज्ञान कला	चौ. कोक सुई
5.	नवीन मेडिकल प्रवेश परीक्षा	नवीन ग्रुप ऑफ पब्लिकेशन्स्- इलाहाबाद	31.	जीवनी शक्ति कैसे जगायें	डॉ. चन्द्र दीप सिंह
6.	मानव शरीर रचना एवं क्रिया-विज्ञान	डॉ. अनन्त प्रकाश गुप्ता	32.	आपका आरोग्य आपके हाथ में	देवेन्द्र वोरा
7.	प्राकृतिक स्वास्थ्य एवं योग	डॉ. बृज भूषण गोयल	33.	प्राकृतिक चिकित्सा एवं योग वैज्ञानिक प्रयोग	डॉ. नागेन्द्र कुमार नीरज
8.	प्राकृतिक आयुर्विज्ञान	डॉ. राकेश जिन्दल	34.	जीवेम् शरद शतम्	पं. श्री राम शर्मा आचार्य वाङ्मय
9.	वृहद प्राकृतिक चिकित्सा	डॉ. ओ. पी. सक्सेना	35.	बिना औषधियों के कायाकल्प	पं. श्री राम शर्मा आचार्य
10.	स्वस्थवृत विज्ञान	प्रो. रामहर्ष सिंह	36.	निरोग जीवन का राज मार्ग	पं. श्री राम शर्मा आचार्य
11.	प्राकृतिक स्वास्थ्य शास्त्र	आचार्य शेषांद्रि स्वामीनाथन	37.	दीर्घ जीवन की प्राप्ति	पं. श्री राम शर्मा आचार्य
12.	आदिऊर्जा प्राण	अमशता भारती	38.	पंच तत्वों द्वारा सम्पूर्ण रोगों का निवारण	पं. श्री राम शर्मा आचार्य
13.	स्वास्थ्य के सोपान	धनरूपमल सुराणा	39.	रोगों की सरल चिकित्सा	विट्ठलदास मोदी
14.	सरल प्राकृतिक चिकित्सा	डॉ. लक्ष्मी नारायण शर्मा	40.	जीने की कला	विट्ठलदास मोदी
15.	पातंजली योगसूत्र	स्वामी विवेकानंद	41.	आरोग्य प्रकाश	वैद्यराज पं. रामनारायण शर्मा
16.	प्राकृतिक चिकित्सा एवं योग	श्रीमत्ती राज कुमारी गुप्ता	42.	मौलिक चिकित्सा कौन सी?	डॉ. चंचलमल चोरडिया
17.	प्राकृतिक जीवन की ओर	श्री एडोल्फ जस्ट	43.	100 वर्ष कैसे जीयें	आचार्य श्याम सुन्दर सुमन
18.	100 वर्ष निरोगी रहिए	माणेक लाल म. पटेल	44.	प्राकृतिक चिकित्सा दर्शन	हेनरी लिंडलार
19.	रोगों की अचूक चिकित्सा	जानकी शरण वर्मा	45.	Fasting can sour your life	H.N. Shelton
20.	प्रकृति से मैत्री	प्रकाशन विभाग	46.	उपवास चिकित्सा	बर्नर मैकफेडन
21.	आरोग्य की कुंजी	राष्ट्रपिता महात्मा गांधी	47.	प्राकृतिक चिकित्सा	डॉ. सतीश गोयल
22.	कुदरती चिकित्सा	राष्ट्रपिता महात्मा गांधी	48.	Diet and diet reform	Sebastian kneipp
23.	प्रेक्टिकल नेचर क्योर	डॉ. के. लक्ष्मण शर्मा	49.	Food combining made easy	Dr. Herbert m. Shelton
24.	The true healing art	R. T. Trall	50.	The new science of healing, The doctrine of unity of diseases	Louis Kuhne and Benedict Lust
25.	Mucusless diet healing system	Arnold ehret	51.	A complete handbook of nature Cure – edition 4	Dr. H. K. Bakhru
26.	Fasting can save your life	Dr. Herbert m. Shelton	52.	My water-cure	Sebastian kneipp

इकाई 7

तंत्रिका संस्थान एवं उसके रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा

(Nervous system & nature cure for its diseases)

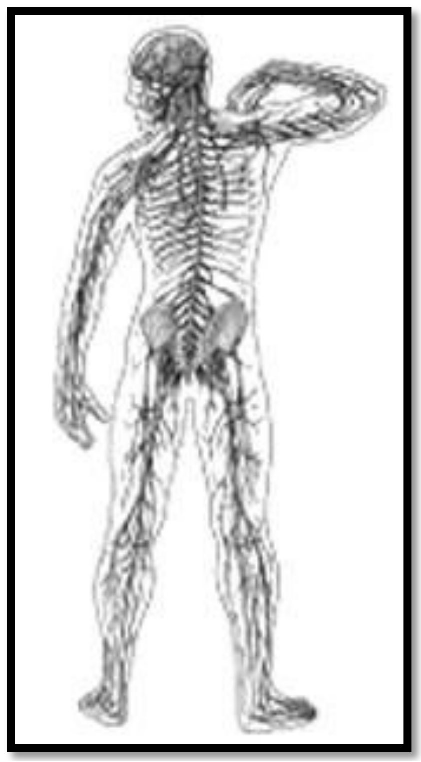

इकाई की रूपरेखा

7.1 उद्देश्य

7.2 प्रस्तावना

7.3 तंत्रिका संस्थान के रोगों की सूची

7.4 तंत्रिका संस्थान के प्रमुख रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा

7.5 सारांश

7.6 बोधात्मक प्रश्न

7.7 संदर्भ ग्रंथ

7.1 **उद्देश्य**

इस इकाई के अध्यनन के बाद आप निम्न जानकारी प्राप्त कर सकेगे -

- तंत्रिका संस्थान के रोगों की सूची
- तंत्रिका संस्थान के प्रमुख रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा

7.2 **प्रस्तावना**

सम्पूर्ण शरीर की क्रियाओं को नियमित, नियन्त्रित एवं समन्वित करने वाला तंत्र तंत्रिका तन्त्र कहलाता हैं।

तन्त्रिका तन्त्र तन्त्रिका ऊतकों से बना होता हैं। तन्त्रिका ऊतक में तन्त्रिका तन्त्र में पाये जाने वाले विशेषी संयोजी ऊतक अर्थात् तन्त्रिका बन्ध (Neuroglia) का समावेश होता हैं।

तन्त्रिका-तन्त्र के तीन भाग होते है:-

1. केन्द्रीय तन्त्रिका तन्त्र (Central nervous system)
2. परिसरीय तन्त्रिका तन्त्र (Peripheral nervous system)
3. स्वायत्त या स्वसंचालित तन्त्रिका तन्त्र (Autonomic nervous system)

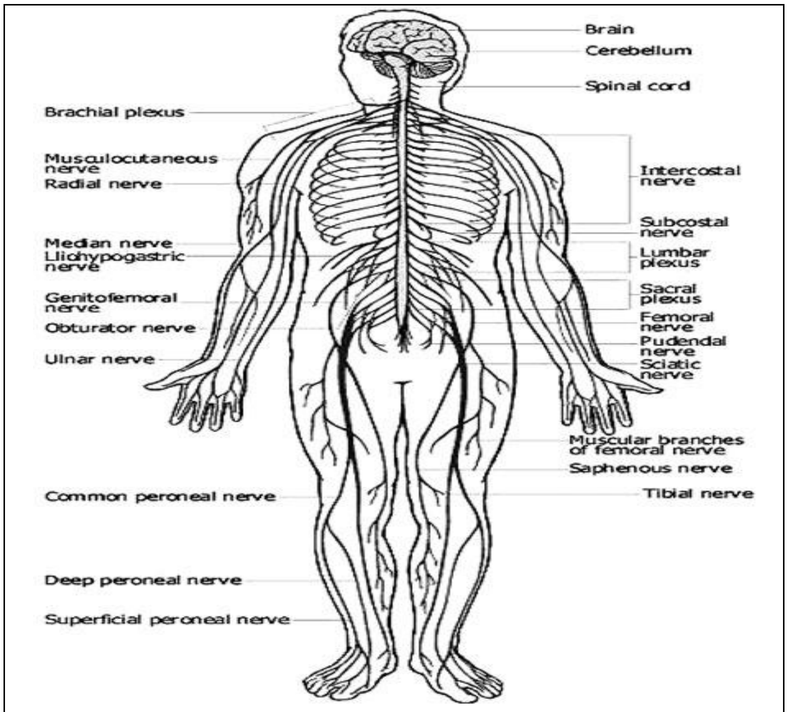

तंत्रिका तंत्र (Nervous system)

7.3 **तंत्रिका संस्थान के रोगों की सूची**

क्र.	हिन्दी या संस्कृत नाम	English name	क्र.	हिन्दी या संस्कृत नाम
1.	मस्तिष्क में नाड़ी का फटना	Apoplexy	29.	मुँह का लकवा
2.	संधिवात	Arthritis	30.	पोलियो
3.	कमर दर्द	Backache	31.	शरीर का सुन्न होना
4.	गर्दन दर्द	Cervical spondylosis	32.	तनाव, मानसिक तनाव, चिंता

5.	अचेतन निद्रा	Coma	33.	झिनझिनियाँ
6.	खैंच	Convulsions	34.	बौनापन
7.	प्रलाप	Delirium	35.	बेचैनी
8.	वहम (मानस रोग), अवसाद्, उदासी	Depression	36.	घबराहट
9.	मृगी, मिरगी, अपस्मार	Epilepsy	37.	डर, फोबिया
10.	मूर्च्छा, अचानक रक्त का अभाव, बैहोशी	Fainting	38.	आलस्य
11.	मानसिक दुर्बलता	Feeble mindedness	39.	उबासी
12.	गठिया	Gout, Rheumatoid arthritis		
13.	सिरदर्द	Headache		
14.	आधे सिर का दर्द	Hemicrania, Migraine		
15.	पागलपन, उन्माद	Insanity,Mania, Mental disease		
16.	अनिद्रा	Insomnia		
17.	कटि शूल	Lumbago		
18.	मस्तिष्कावरण की सूजन	Meningitis		
19.	स्मृति दौर्बल्य, कमजोर याददाश्त	Memory weakness		
20.	मलटीपल स्कलेरोसीस	Multiple sclerosis		
21.	पेशी वात	Muscular rheumatism		
22.	स्नायु शूल	Neuralgia		
23.	नाड़ी दौर्बल्य, नाड़ी दुर्बलता	Neurasthenia, Nervous breakdown, Nervous weakness		
24.	स्नायु की सूजन	Neuritis, Inflammation of nerves		
25.	लकवा, पक्षाघात	Paralysis		
26.	वात ज्वर, नया गठिया	Rheumatic fever, Acute inflammatory, Acute rheumatism, Acute articular rheumatism		
27.	साइटिका	Sciatica		
28.	हकलाना–तुतलापन	Stammering-Lisping		

7.4 तंत्रिका संस्थान के प्रमुख रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा

1. सिर दर्द **(HEADACHE)**

परिचय : सिर दर्द बहुत परेशान करने वाला होता है पर यह स्वयं रोग नहीं किसी रोग का लक्षण मात्र है। यह चेतावनी देता है कि शरीर के किसी अंग में कहीं कोई खराबी है। सिरदर्द के विभिन्न प्रकार हैं-

टेंशन हेडेक: यह मानसिक सिर दर्द है। जो भावनात्मक उत्तेजना के कारण उत्पन्न तनाव है। किसी बात या समस्या का हल अपनी भावना के अनुरूप न होना, चाय, कॉफी, शराब व दवाओं का समय पर न मिलना या बंद कर देना।

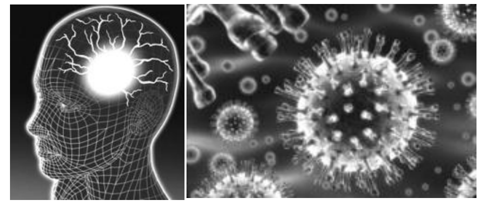

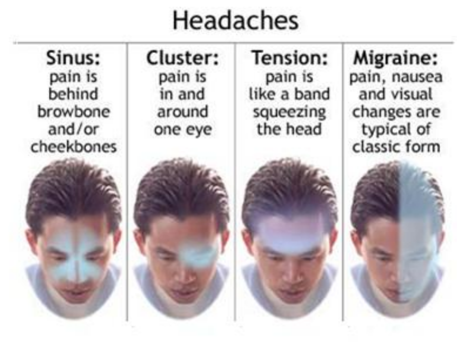

वेस्कुलर हेडेक: यह सिर दर्द रक्त वाहक नाड़ियों में अपशिष्टों के जमा होने से उत्पन्न रूकावट के कारण होने वाला तनाव है। यह सिर दर्द पाचन की गड़बड़ी जैसे- एसिडिटी व गैस्ट्रीक के कारण भी उत्पन्न होती है।

माइग्रेन हेडेक: यह तीव्र भावनात्मक उत्तेजना के कारण उत्पन्न होने वाला तनाव है। जो तीव्र सिर दर्द सिर के आधे हिस्से में प्रगट होता है। यह तेज दर्द आँख के पास होने के साथ ही जी-मिचलाना, उल्टी होना, चिड़चिड़ापन होने लगता है।

कारण एवं लक्षण : सिरदर्द के एक नहीं अनेक कारण है, पर मूल कारण पाचन और मल का निष्कासन उचित रूप में न होकर रक्त का विषाक्त होना ही है। शरीर की कोषाओं में बनने वाला अपशिष्टi-मल निष्कासित अंगों तक न पहुँचकर रक्त के साथ मस्तिष्क की ओर चले जाने के फलस्वरूप सिरदर्द होता है। परिश्रम न करने व निष्कासित अंगों का अवरूद्ध होने के कारण भी अपशिष्ट-मल शरीर में रोग पैदा करता है। तब हमारी जीवनी-शक्ति उसे शीघ्रताशीघ्र बाहर निकाल फेंकने के लिए अस्वाभाविक वेग से प्रवाहित करती है। यही अस्वाभाविक रक्त प्रवाह जब मस्तक की ओर पहुँचकर धक्का देता है , तो हम वहां दर्द का अनुभव करते है। उस वक्त दर्द निवारक दवाओं से तनावग्रस्त माँसपेशियाँ शिथिल हो जाती है और मल निष्कासन का कार्य प्राय: धीरे-धीरे होने लगता है। फलत: सिर दर्द शांत हुआ जान पड़ता है मगर दरअसल यह स्थिति भयावह होती है। क्योंकि रोग का कारण दवाओं से दूर तो होता नहीं उल्टे उनके असर से माँसपेशियों के स्वाभाविक एवं आवश्यक कार्य में बाधा पहुँचती है जिससे तात्कालिक लाभ तो हो जाता है , परन्तु उसके बाद दवाओं का प्रभाव नष्ट हुआ तो पीड़ा पुन: आरम्भ हो जाती है या रोग दबकर कालोपरान्त दूसरी शक्ल में पुन: पैदा है।

यकृत की शिथिलता और अस्वस्थता के फलस्वरूप जब उससे होने वाले पित्त का स्राव सुस्त हो जाता है तब आंतों के स्वाभाविक कार्य में शिथिलता आ जाती है। जिसकी वजह से प्राय: सिर दर्द की सृष्टि होती है।

कब्ज, अधिक भोजन, अपच तथा पेट की अन्य खराबियों से भी सिर दर्द की उत्पत्ति होती है। उत्तेजक और अखाद्य वस्तुओं जैसे चाय, कॉफी, तम्बाकू आदि का सेवन भी सिर दर्द का कारण होता है। ललाट और कनपटी में दर्द हो तो समझना चाहिए कि कारण पेट व आंतों की खराबी और सर्दी-जुकाम है। पेट की खराबी, ऑक्सीजन की कमी, अल्पनिद्रा, अत्यधिक श्रम तथा चाय-कहवा के अधिक इस्तेमाल से होने वाले सिर दर्द में सिर फटता हुआ प्रतीत होता है।

भूख, जुकाम, नाड़ी दौर्बल्य, ह्रदय को चोट पहुँचाने वाली बात , कान के रोग, शरीर में ऑक्सीजन की कमी, रक्ताल्पता, मस्तिष्क में रक्ताधिक्य, यकृत की शिथिलता, अल्प निन्द्रा, अधिक श्रम, चाय-कहवा का अधिक इस्तेमाल, अत्यधिक परेशानी-शोक अथवा भय, सिर पर साफा आदि कस कर बांधना, सिर

पर गरम पानी डालना, मासिक स्राव के समय ठंड़ लग जाने से स्राव का बंद हो जाना, नेत्र के रोग, आंखों पर अस्वाभाविक ढंग़ से जोर देना।

अर्थात् छोटे अक्षर पढऩा, कम उजाले में पढऩा, नजदीक से सिनेमा आदि देखना, चलती ट्रेन व बस में पढऩा तथा पैदल चलते पढऩा इत्यादि तरह-तरह के कार्य सिर दर्द की उत्पत्ति के प्रमुख कारण होते है।

ब्लड़ प्रेशर के कारण होने वाला सिर दर्द बड़ा भयंकर होता है। इसका आरम्भ सामान्यत: भेजे के मूल में होता है। जो बाद में धीरे-धीरे समूचे मस्तिष्क में फैल जाता है और तब ऐसा जान पड़ता है कि सिर अब फटा। यह दर्द छींकने, खांसने तथा शरीर को एकाएक मोडऩे आदि से बढ़ जाता है। इस दर्द के फलस्वरूप कभी-कभी आंखों से कम दिखाई देने लगता है।

मस्तिष्क में रक्ताधिक्य के कारण जो सिर दर्द होता है वह इस वजह से होता है कि किसी कारणवश रक्त के अबाध गति से संवहन होने में बाधा उपस्थित हो जाती है। जिससे सिर के भीतर की रक्त नलिकायें फूल जाती है। परिणामत: सिर गर्म और पीड़ा युक्त हो उठता है।

गर्दन के पिछले भाग में मस्तिष्क की जड़ में यदि दर्द हो तो उसका कारण नाड़ी दौर्बल्य , नाक-आंख के रोग और मस्तिष्क के निम्र भाग का रूग्ण होना होता है।

बहुत दिनों से चलने वाला पुराना सिर दर्द का कारण शरीर के रक्त का विषाक्त होना, रक्त चाप का बढऩा तथा मस्तिष्क में अबुर्द गांठ आदि का होना साबित करता है।

नाड़ी-संस्थान की खराबी से हुये सिर दर्द में सिर कसा-सा जान पड़ता है, मानो रबर की पट्टी फैलाकर सिर पर चढ़ा दी गई हो।

सिर के ऊपरी भाग में तनाव मालूम हो तो समझना चाहिए कि शरीर को यथेष्टï ताजी हवा की प्राप्ति नहीं हो रही है।

प्राकृतिक चिकित्सा : हाई ब्लड़ प्रेशर 140 mmHg से ऊपर होने पर प्राय: असहनीय सिर दर्द होने लगता है। उस समय सिरदर्द से छुटकारा पाने के लिए ब्लड़ प्रेशर तत्काल कम करने की कोशिश होनी चाहिए। इसके लिए आहार में सुधार, श्रम कम करना, द्रव्योषधियों से दूर रहना तथा सादे तरीके से रहना आवश्यक है। परेशानियों से दूर रहकर ध्वंसात्मक विचारों के बदले रचनात्मक विचारों को मन में स्थान देना चाहिए। नशीली वस्तुओं का सेवन बंद कर देना और कम से कम एक सप्ताह तक मौसमी रसदार फलों जैसे आम, संतरा, सेब, अंगूर, टमाटर आदि पर रहना चाहिए। इन दिनों में एनिमा भी लेना चाहिए। आहार में सुबह सलाद शामिल कर लेना चाहिए अर्थात् दोपहर को मट्ठाऔर सलाद ले तथा शाम को दूध और फल।

इस आहार को दो सप्ताह तक जरूर चलाना चाहिए। उसके बाद आहार में एक दो चोकरदार रोटी भी जोडक़र धीरे-धीरे उसे बढ़ाकर दूध लेना छोड़ दीजिए और उसके स्थान पर मट्ठाके साथ उबली सब्जी लेना आरम्भ कर दीजिये। शरीर और मस्तिष्क को आराम दीजिये। समय पर गाढ़ी नींद लीजिये और सोते वक्त तकिये का इस्तेमाल छोड़ दीजिये। इस उपचार से ब्लड़ प्रेशर घटकर साधारण हो जायेगा, परिणामत: उसका लक्षण सिर दर्द भी हवा हो जायेगा।

शरीर में अम्लता बहुत बढ़ जाने के कारण रक्त दूषित हो जाता है जिससे ज्वर और सिर दर्द की उत्पत्ति प्राय: होती है। तब खान-पान सादा, सात्विक और सप्राण भोजन ग्रहण करना चाहिए। आवश्यकतानुसार

उपवास और एनिमा द्वारा पेट साफ कर लेना चाहिए। साफ हवादार जगह में रहना चाहिए। स्वच्छ ताजा जल प्रचुर मात्रा में पीना चाहिए तथा कुछ दिनों तक सुबह-शाम गीली मिट्टी की पट्टी पेडू पर आध-आध घंटे तक रखनी चाहिए या उसके स्थान पर 15-15 मिनट का उदर स्नान लेना चाहिए। इससे शरीर की अम्लता दूर होने से सिरदर्द ठीक हो जाएगा।

मस्तिष्क में रक्ताधिक्य के कारण जो सिरदर्द होता है उसको दूर करने का सरल उपाय 10-20 मिनट पैरों का गरम स्नान (Hot Foot Bath) तत्पश्चात् ताजे पानी से स्नान करें। इससे रक्त का अधिक भाग पैरों की ओर खिंच आता है। जिससे सिर हल्का हो जाता है। गर्दन तथा पीठ पर पानी की तेज धार (Jet Bath) मारकर 10 मिनट स्नान करने से विशेष लाभ होता है। मामूली हालतों में केवल ठंड़े पानी से भीगे और निचोड़े कपड़े को सिर और गर्दन के चारों तरफ लपेट देने से ही सिर दर्द चला जाता हैं तथा सर्दी-जुकाम-खाँसी की तीव्रता कम हो जाती है। इसमें रोगी को विश्राम करते समय सिर ऊंचे और पैरों को नीचे रखना चाहिए। रोग की बढ़ी हुई दशा में रोज उदर स्नान भी लेना चाहिए।

मस्तिष्क में कम रक्त होने के कारण जो सिरदर्द होता है। उसको गर्दन के पीछे गरम जल की थैली लगाकर या गीली सेंक देकर दूर किया जा सकता है। इस रोग के रोगी को पैरों के मुकाबले में सिर को पूर्ण विश्राम देना चाहिए।

पाचन सम्बन्धी विकारों से होने वाले सिरदर्द से छुटकारा पाने के लिए उपवास, एनिमा और सादे भोजन का प्रयोग करना चाहिए।

यकृत दोष जन्य सिरदर्द में धड़ के झुकाव वाले व्यायाम एवं पेट अंदर की और खींचकर और सीना फैलाकर गहरी श्वास लेने के व्यायाम अधिक लाभ करते है।

नेत्र विकार जन्य सिर दर्द के कारणों को दूर करने के लिए हल्के नेत्र व्यायाम करने चाहिए।

अधिक श्रम के कारण हुआ सिरदर्द शुद्ध वायु सेवन एवं पूर्ण विश्राम द्वारा दूर किये जाते है।

सर्दी-जुकाम होने पर नासिका रन्ध्र के ऊपर के भाग में श्लेष्मा जमा हो जाती है। इस तरह का दर्द प्राय: नाक की सफाई हो जाने पर अपने आप ठीक हो जाता है।

यदि किसी के सिरदर्द का कारण जाना न जाये तो उसको उपवास, एनिमा द्वारा पेट साफ करा लें, सिर पर देर तक ठंड़े पानी का तरेरा, गर्दन और सिर पर गीली मिट्टी का लेप, सादा और हल्का भोजन, सिर की मालिश, पेडू पर मिटी की पट्टी या उदर स्नान, शुद्ध वायु सेवन, पूर्ण विश्राम तथा सिर के ऊपर हरा-नीला प्रकाश डालने के उपचार देने से सिरदर्द ठीक हो जाता है।

2. नाड़ी-स्नायु संस्थान के रोग एवं नाड़ी का फटना (DISEASE OF NERVOUS SYSTEM or NERVOUS BRAKE DOWN)

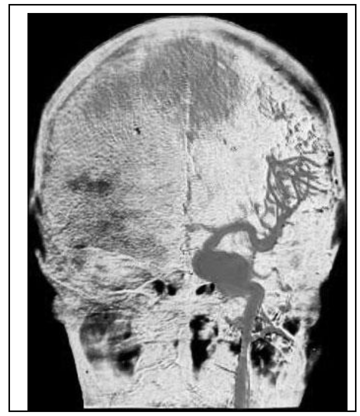

कारण एवं लक्षण : यदि किसी को हमेशा कब्ज रहता , खाना ठीक से नहीं पचता , खट्टी डकारें आया करती , भोजन से अरूचि , अधिक थकावट मालूम होती , सिर दर्द बना रहता , सिर खाली-खाली प्रतीत होता, बेचैनी, घबड़ाहट, चिड़चिड़ापन, भय, उदासी, क्रोध, द्वेष, ईर्ष्या, लोभ एवं घृणा आदि मानसिक विकारों का शिकार हो , अपने आप में विश्वास खोकर परेशानी से जीवन व्यतीत करता हो , जिसकी इन्द्रियां वश में न हो , इच्छा शक्ति निर्बल हो गयी हो , पागलपन छा गया हो , त्वचा ढ़ीली-ढ़ाली और बदरंग हो, पूरा विश्राम व नींद न आती हो, रक्त संचार क्रिया अस्वाभाविक हो, किसी काम को करने का उत्साह न हो, आत्मघात, हत्या, चोरी आदि पाप करने की प्रवृत्ति हो तथा जो असमय में बूढ़ा नजर आयें। ऐसा व्यक्ति निश्चय ही स्नायुविक रोगी होता है। इनके अलावा मेहनत का अभाव , कमजोरी में कड़ी मेहनत से थकावट, अनुपयुक्त वातावरण में रहना, बेमेल या अनुचित यौन सम्बन्ध, आंखों पर अधिक जोर डालना एवं बुरी कमाई आदि भी अनेक स्नायु रोग के कारण है।

हमारा मस्तिष्क विचार-शक्ति रखने वाले अनगिनत अणु इन्द्रियों से मिलकर बना है, रीढ़ भी मस्तिष्क का ही भाग है। शरीर के समस्त स्नायुओं का केन्द्र मस्तिष्क है जहां से वे रीढ़ में होकर सारे शरीर में फैली होती है। रीढ़ अनेक कशेरूकाओं से बनी होती है जिनसे स्नायु चिपके होते है। जब पीठ में विजातीय द्रव्य एकत्र होकर उन कशेरूकाओं का स्थान भ्रष्टा कर देते है तो रीढ़ के असंतुलन के फलस्वरूप स्नायुओं पर आवश्यक तनाव पडऩे के कारण उनमें कड़ापन आ जाता है। जिससे उनके स्वाभाविक कार्य में बाधा उपस्थित हो जाती है, यही स्नायुविक रोग है।

अप्राकृतिक आहार-विहार एवं रहन-सहन के फलस्वरूप उत्सर्जी अंगों का शिथिल हो जाने तथा उनका कार्यभार अधिक बढ़ जाने पर अपशिष्ट विष रक्त में मिलकर समस्त शरीर में फैल जाता है। यह अम्ल विष शरीर के तन्तुओं में पहुँचकर शरीर में वात ज्वर की उत्पत्ति करता है। फिर यही अम्ल विष जब शरीर के किसी अंग-विशेष की पेशियों पर आक्रमण करता है तो पेशी वात पैदा हो जाता है। यही विष जब शरीर के जोड़ों और सन्धियों में पहुँचकर सन्धि वात या गठिया को जन्म देता है।

जब यही दुद्र्रव्य मस्तिष्क की ओर बढक़र पागलपन एवं मानसिक रोग उत्पन्न करता है और जब यही विष रक्त में जमा होकर उसे गाढ़ा और लोआबदार बना देता है तो उसके असर से शरीर की सारी नाडिय़ाँ अकडक़र कड़ी पड़ कर लकवा या पक्षाघात रोग हो जाता है। इस प्रकार सभी स्नायु सम्बन्धी रोगों का मूल कारण शरीर में अम्ल विष की अधिकता ही है।

प्राकृतिक चिकित्सा :

1. उपवास और उचित आहार- केवल उपवास , भोजन-सुधार और भोजन सम्बन्धी नियमों का पालन करने से ही नाड़ी दौर्बल्य के सभी रोगी पुन: आरोग्य लाभ प्राप्त करते है। उपवास किसी चिकित्सक की देख-रेख में करना ठीक रहता है। उपवास द्वारा शरीर को अम्ल-विष से शून्य करना है। आवश्यकतानुसार

2-3 दिन के छोटे-छोटे उपवास नींबू-पानी पर करें। उपवास काल में शरीर और मस्तिष्क को पूरा-पूरा आराम देना चाहिए और प्रतिदिन एनिमा लें। फिर कुछ दिन फलों के जूस व तरकारियों के सूप पर तथा 8-10 दिन फल और तरकारियों पर रहें। उसके बाद धीरे-धीरे सुपाच्य एवं सादा भोजन करें।

2. व्यायाम-योगासन-प्राणायाम- प्रतिदिन नियमित रूप से खुले व स्वच्छ वातावरण में धूप सेवन करते हुए टहले-व्यायाम-योगासन-प्राणायाम करने से नाडिय़ों में शक्ति का संचार होकर नाड़ी संस्थान पूर्णत: स्वस्थ और शक्तिशाली बनता है।

3. नींद, विश्राम और शिथिलीकरण- नाड़ी-विकार से पीड़ित व्यक्ति अपने खाली दिमाग को किसी न किसी बात में अटकाया रखने से गाढ़ी नींद , पूरा आराम और शरीर का उचित शिथिलीकरण के लिए तरसते रहते है। परन्तु वह उन्हें नसीब नहीं होती है। अत: यदि वे सचमुच इनको प्राप्त करना चाहते है। तो नियत समय पर बिस्तर पर जाते ही भय , चिन्ता, द्वेष आदि सभी मानसिक विकारों से मुक्त होकर बच्चे की तरह सो जायें। शिथिलीकरण के लिए शवासन प्रतिदिन करें। विश्राम , शिथिलीकरण और गाढ़ी निद्रा से अणु इन्द्रियों के तत्व का निर्माण होता है।

4. त्वचा को स्वस्थ और साफ रखना- त्वचा हमारा प्राकृतिक वस्त्र के साथ फुफ्फुस की तरह एक महत्वपूर्ण अंग है। अत: इसे श्वास लेने योग्य बनाये रखने के लिए हर समय व हर हालत में साफ-स्वच्छ रखने पर ही इसके सारे छिद्र सक्रिय एवं खुले रहेंगे। तभी स्वस्थ एवं आनन्दमय जीवन जी सकेंगे। इसके लिए रोज नियमित यौगिक क्रिया के बाद घर्षण स्नान करें।

5. प्रसन्न चित रहना- स्वास्थ्य सुधार के क्रम में मानसिक विकारों से मुक्त होकर हर वक्त जीवन में आनन्द का अनुभव करना चाहिए और सरल , शान्त रहकर परमात्मा और उसकी प्रकृति में पूर्ण विश्वास और आस्था रखनी चाहिए।

6. अति से बचे- अपनी क्षमता की सीमा से अधिक काम करना स्वास्थ्य के लिए खतरा है। अति सर्वत्र वर्जयेत। शक्ति से अधिक श्रम, कार्य में अधिक व्यस्त, अधिक भोजन और अत्याधिक रति क्रिया आदि सभी से स्नायु थक कर नाड़ी दौर्बल्य जनित रोगों को जन्म देते है।

7. मानसिक सन्तुलन- पारिवारिक झंझट , वैवाहिक जीवन की असंगति , आर्थिक कठिनाइयों , पेरेमसम्बन्धी निराशा, यौन सम्बन्धी समस्या तथा क्रोध , भय, घृणा आदि मानसिक उद्वेग से मानसिक संतुलन बिगड़ जाता है। जिससे शरीर के स्नायु बुरी तरह थक जाने से आये दिन निराशा और मानसिक उद्वेग बना रहता है।

एप्सम साल्ट बाथ , रीढ़ पर ठंड़े पानी का तरेरा , रीढ़ की पट्टी , कमर की सूती-ऊनी पट्टी , कटि व मेहन-स्नान, धूप स्नान एवं मिट्टी पट्टी आदि प्राकृतिक उपचारों का प्रयोग करें।

3. वातज्वर **(ACUTE RHEUMATISM, ACUTE INFLAMATORY, ACUTE ARTICULAR RHEUMATISM, RHEUMATIC FEVER)**

कारण एवं लक्षण : वात-ज्वर में ठंड़ मालूम होकर ज्वर चढ़ता है। शरीर के सभी या कुछ जोड़ों में सूजन और वेदना होती है। साथ में कब्ज , सिर दर्द, अग्निमांद्य, लाल पेशाब का होना , श्वास की चाल में वृद्धि तथा रात में रोग की वृद्धि आदि लक्षण प्रकट होते है।

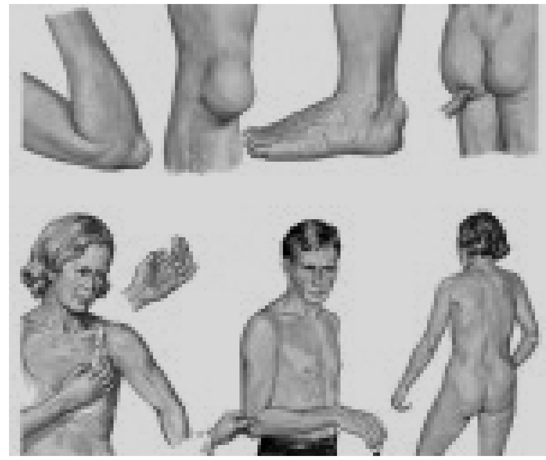

प्राकृतिक चिकित्सा : प्रतिदिन कटि-स्नान और गुनगुने पानी का एनिमा लें। समूचे शरीर की गीली चादर की लपेट दें। इस रोग में वेदना के स्थान पर मालिश न करें, अपितु दिन में 2-3 बार वेदना के स्थान के चारों तरफ 5-10 मिनट तक भाप से सेंकें। तदुपरान्त सूती-ऊनी पट्टी बांधें। ज्वर में बार-बार समूचे शरीर का तौलिया-स्नान करायें। रात भर के लिए कमर पर सूती-ऊनी पट्टी बांधें।

4. पेशी वात (MUSCULAR RHEUMATISM)

कारण एवं लक्षण : यह गर्दन तथा पंजरी की मांसपेशियों की वात है। अक्सर इनकी मांस-पेशियों में पीड़ा होती है जो हिलाने-डुलाने से बढ़ती है।

प्राकृतिक चिकित्सा : आक्रान्त पेशी के ऊपर गरम-ठंड़ा सेंक बारी-बारी से करें। रोग पुराना हो तो हर2 घंटे के अन्तराल आक्रान्त पेशी के ऊपर 10-12 मिनट भाप देकर सूती-ऊनी पट्टी बांधें। इस रोग में मालिश अलाभप्रद है। अत: पूरा आराम करें।

5. गठिया (GOUT, RHEUMATOID ARTHRITIS)

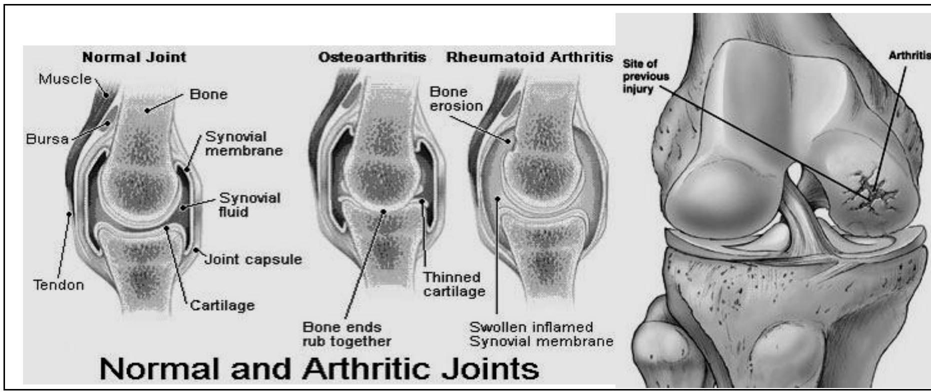

Normal and Arthritic Joints

कारण एवं लक्षण : गठिया रोग पैर के अंगूठे से आरम्भ होकर धीरे-धीरे बढक़र शरीर के अन्य छोटे-छोटे जोड़ों या गाठों में फैल जाता है। गठिया के स्थान पर दर्द और सूजन आकर ज्वर आता है। गठिया में सूर्योदय के थोड़ा पहले अधिक तकलीफ होती है। प्रारम्भिक उपचार न लेने पर रोगी को कब्ज़ सिर दर्द, स्नायुविक उत्तेजना, चिड़चिड़ापन, अस्थिरता, अधीरता, तृषा तथा मूत्र-दोष आदि अधिक सताने लगते है।

6. वात-शूल या साइटिका (SCIATICA)

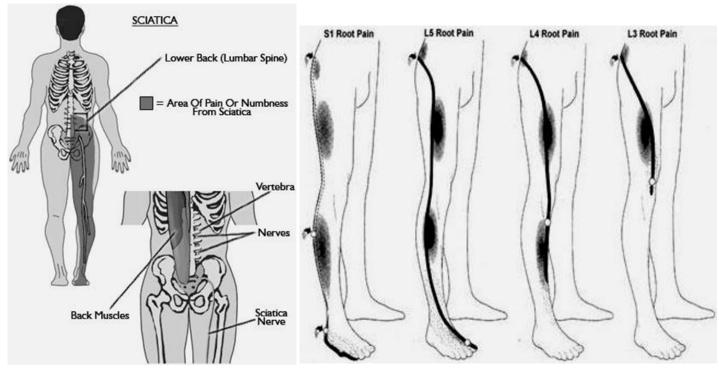

परिचय : गृधस्य नाड़ी प्रत्येक नितम्ब के नीचे से आरम्भ होकर टांग के पिछले भाग से गुजरती हुई पांव की एड़ी पर खत्म होती है।

कारण एवं लक्षण : जब इस नाड़ी में सूजन आने पर अचानक और तीव्र वेदना होती है। यह अक्सर 30 से 50 वर्ष की आयु वालो को अधिक सताती है। इसकी पीड़ा एक समय में प्राय: एक टांग में ही होती तथा ज्वर आता है।

गठिया व साइटिका की प्राकृतिक चिकित्सा :

2-3 दिन का उपवास, 10-15 दिन का रसाहार व फलाहार करने पर सुपाच्य एवं सादा भोजन करें, यूरिक अम्ल व बाजारी चीजें न खायें। प्रचुर मात्रा में नींबू-पानी पीयें।

सिर, चेहरे और रोग वाले स्थान को केले की हरी पत्तियों से ढंक्कर लगभग आध घंटे तक धूप स्नान करके ठंडे जल से भीगी और निचोड़ी तौलिया से पूरे बदन को पौंछें। गठिया वाले पैर को दिन में तीन बार आधा घंटा तक गरम जल में डुबोये रखें या उस पर भाप देने के बाद ठंडे जल से भीगी कपड़े की पट्टी बदल-बदल कर रखें। प्रतिदिन सुबह कटि-स्नान और शाम को मेहन स्नान करें। गुनगुने पानी का एनिमा लें। हर तीसरे दिन एप्सम साल्ट बाथ लेना चाहिए। नारंगी बोतल के सूर्य तप्त जल 50 ग्राम की 4 खुराक पीयें और ग्रसित अंग को पहले एक घंटा लाल व बाद दो घंटा नीला प्रकाश डालें तथा सूर्य तप्त लाल तेल से मालिश करें।

7. लकवा या पक्षाघात (PARALYSIS)

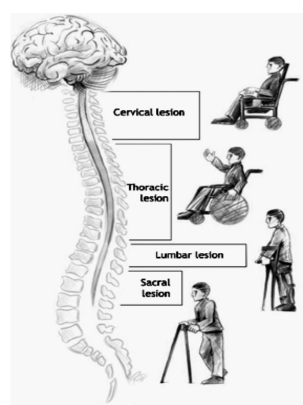

कारण एवं लक्षण : जब शरीर के किसी अंग का परिचालन स्नायुओं द्वारा उनके अस्वस्थ होने के कारण नहीं हो पाता तो उस अंग को लकवा कहा जाता है। कभी-कभी सम्पूर्ण शरीर इससे प्रभावित हो जाता है। प्रभावित अंग चैतन्य शून्य होकर धीरे-धीरे सूखने लगता तथा सदैव कांपता रहता है।

प्राकृतिक चिकित्सा : प्रतिदिन लकवा से प्रभावित अंग पर प्रतिदिन एक घंटा लाल और दो घंटें तक नीला प्रकाश डालें। तब सिर को छोडक़र शरीर के अन्य भागों पर लाल कपड़ा धारण करें। उसके बाद पैरों को गरम जल में रखकर 15 मिनट तक कटि-स्नान लें। धूप में आध घंटा तक समूचे शरीर की मालिश

लेकर ठंड़े पानी से घर्षण स्नान करें। प्रतिदिन मेरूदण्ड़ पर5-10 मिनट तक गरम-ठंड़ी सेंक करायें। जो अंग सुन्न हो गया हो उस पर सूती-ऊनी पट्टी बांधें। इस पट्टी को खोलने के बाद सूखी मालिश करें। प्रतिदिन नींबू-पानी प्रचूर मात्रा में पीयें। उच्च रक्तचाप हो तो नमक बंद करें। पीली बोतल के सूर्यतप्त जल 50 ग्राम की 6 खुराक पिलायें।

8. मिर्गी या अपस्मार (EPILEPSY)

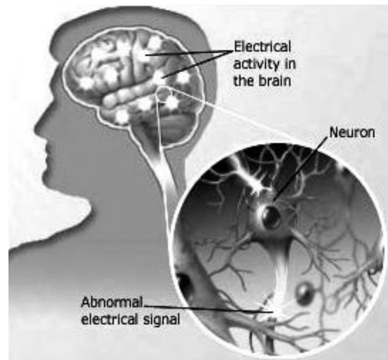

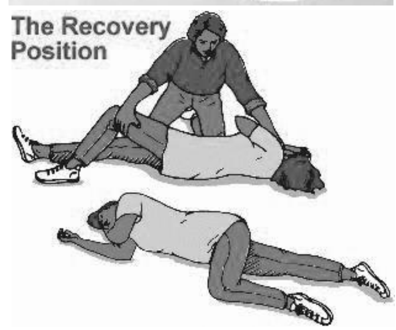

कारण एवं लक्षण : शरीर स्थित विजातीय द्रव्य का मस्तिष्क में पहुँचकर स्नायुओं को प्रभावित कर विकराल रूप के फलत: मिर्गी का दौरा आने लगता है। जिससे रोगी बेहोश हो जाता, उसके अंग-प्रत्यंग कांपने लगते, प्राय: मुंह से गाज निकलने लगता, कभी-कभी रोगी की आंखें खुली रहने पर भी होश नहीं रहता, वह अपनी जीभ काटने लगता और बेहोशी में पेशाब-पाखाना भी कर देता है। यह अवस्था कुछ सैकेंड़ से लेकर कुछ मिनटों तक रहती है। उसके बाद रोगी धीरे-धीरे अपने आप होश में आ जाता है और थक जाने के कारण प्राय: सो जाता है।

प्राकृतिक चिकित्सा : दौरे के समय दातों के बीच में कपड़ा रख देने से वह अपनी जबान को न काट सकेगा। इस रोग में विषाक्त दवाओं का प्रयोग करके मस्तिष्क के स्नायुओं को चेतना शून्य कर देते है। जिससे रोग के लक्षण दब जाते पर रोग नहीं जाता है। अत: रोग को दूर करने के लिए 2-4 दिन का उपवास, 5-7 दिन का रसाहार और फलाहार करने के बाद सुपाच्य व सात्विक भोजन करें।

प्रतिदिन कटि-स्नान तथा शाम को रीढ़ व मेहन-स्नान् पेडू पर मिट्टी पट्टी लें। सप्ताह में दो दिन एप्सम साल्ट बाथ लें। प्रतिदिन धूप में पूरे शरीर की तेल मालिश कराने पर घर्षण स्नान करें। मेरूदण्ड़ पर गरम-ठंडा सेंक करें।

आसमानी बोतल के सूर्यतप्त जल 50 ग्राम की 8 खुराकें पीयें तथा बेहोशी की हालत में उसी जल के छींटें मुंह पर दें या माथे को गीला करें।

9. अनिद्रा (INSOMNIA)

कारण एवं लक्षण : दवाओं और कब्ज के कारण रक्त का विषाक्त होना, मस्तिष्क में रक्ताधिक्य, शाम को अधिक भोजन, अधिक दिमागी काम, शारीरिक परिश्रम का अभाव, रोगी होना, नये स्थान में सोना, कमरे में प्रकाश और शुद्ध वायु का उचित प्रबन्ध न होना , एक ही कमरे में बहुत आदमियों का सोना , कमरा और बिछौना गंदा होना, मच्छरों का होना, मादक द्रव्यों जैसे काफी-चाय आदि का अधिक सेवन, मुंह ढंक़कर सोना, मानसिक स्नायुओं की उत्तेजना, शोरगुल का वातावरण, सोते समय उत्तेजनापूर्ण और रोचक साहित्य अध्ययन व फिल्म का देखना तथा आत्मग्लानि आदि के कारण अनिद्रा अर्था**त्** नींद का न आना एक कठिन और कष्टदायक रोग हो जाता है। जिससे आदमी पागल तक हो जाता है।

प्राकृतिक चिकित्सा : नींद लाने के लिए सभी दवायें स्वास्थ्य के लिए खतरनाक है। अनिद्रा रोग का प्रकोप होते ही सर्व प्रथम जिन कारणों से अनिद्रा रोग उत्पन्न होता है उन्हें दूर करने की भरपूर कोशिश करनी चाहिए तथा एनिमा, कटि-स्नान एवं पेडू की मिट्टी पट्टी लें। तत्पश्चात् रोगी को पैरों को गरम स्नान दें। सोने से पहले कमर और गर्दन पर सूती-ऊनी पट्टी बांधें। नींबू- पानी प्रचुर मात्रा में पीयें। रक्त को शुद्ध बनाने वाला सुपाच्य व सात्विक भोजन करें। सुबह के वक्त भीगी घास पर टहले-योगासन-प्राणायाम करें।

सोने के पहले मस्तिष्क को सभी प्रकार की चिन्ताओं और चिन्तनों से मुक्त कर देना चाहिए। प्रतिदिन ठीक समय पर सोने का नियम बना लेना चाहिए। सोने से पूर्व किसी कठिन विषय पर लिखी गयी कोई पुस्तक पढने से थोड़ी ही देर में आखें झपकने लगती है। भोजन में नमक की मात्रा कम कर देने से भी नींद आने में सहायता मिलती है। सोने से पहले नहाना और गरम पानी पीना दोनों जल्द नींद लाने में सहायक है। सोने से पहले 15-30 मिनट तक मामूली गरम पानी से भरे टब में लेटना या रीढ़ स्नान करना अनिद्र रोग की अचूक दवा है।

10. मूर्च्छा (FAINTING)

कारण एवं लक्षण : अचानक अधिक रक्त शरीर से निकल जाना, तीव्र वेदना या चोट, गले में अत्यधिक अपशिष्टां का जमा होना, दूषित गैस का श्वास के साथ भीतर चला जाना एवं भावावेग के कारण से मस्तिष्क में अचानक रक्त का अभाव हो जाता है तब मनुष्य मूर्च्छित हो जाता है। उस समय मुख पीला, माथे से ठंडा पसीना छूटता, आंखों के सामने अंधेरा छा जाता और मनुष्य अचेत होकर गिर पड़ता है।

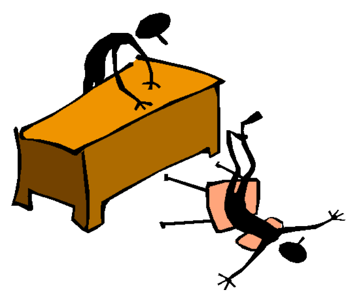

प्राकृतिक चिकित्सा : मूर्च्छा होते ही रोगी को आराम से उसके सिर को थोड़ा नीचे रखते हुए किसी हवादार स्थान से लिटा देना चाहिए। उसके बाद उसके कपड़ों को ढ़ीला कर दें। पेडू पर मिट्टी पट्टी, छाती पर कपड़े की भीगी पट्टी देकर चेहरे पर ठंड़े पानी के छींटें मारें। मूर्च्छा खुलने पर रीढ़ को भीगी तौलिया से पौंछें या उस पर गरम-ठंड़ी सेंक दें। फिर गुनगुने पानी का एनिमा और मेहन-स्नान करायें।

11. मानसिक तनाव (TENSION)

परिचय : तनाव आधुनिक युग का प्रमुख रोग है। आज प्रत्येक मनुष्य किसी न किसी कारण से अवश्य तनाव ग्रस्त है।

कारण एवं लक्षण : जीवन में चिंता ग्रस्त होकर जीना, अकारण क्रोध करना, किसी पर विश्वास न होना, निराशा, भय का वातावरण, समस्याओं के सुलझाने के स्थान पर उसे कल पर छोडना, कार्य से डरना,

चंचलता, घबराहट, विस्मृति एवं भोजन व विश्राम नियमित समय पर न होना आदि के कारण व्यक्ति तनाव ग्रस्त होकर निम्न रोगों से आक्रान्त हो जाता है।

1. मानसिक रोग- स्नायु दौर्बल्यता, अवसाद, पागलपन, अनिद्रा आदि।

2. शारीरिक रोग- सिर दर्द, उच्च रक्तचाप, अल्सर, हृदय रोग, चर्म रोग, दमा, कब्ज, कैंसर एवं मधुमेह आदि तनाव के कारण मानसिक कमजोरी, पाचन क्रिया की गड़बड़ी उत्पन्न होते है। तनाव ग्रस्त लोग अपने खाने का भी होश नहीं रहता, स्वाद वश अनाप-शनाप खाता और व्यायाम-योगासन-प्राणायाम नहीं करने पर अकाल मृत्यु का भागीदार बनता है।

आजकल गांवों की अपेक्षा शहरी जीवन मानसिक तनाव से बुरी तरह से ग्रस्त है। आय-व्यय, महंगाई, असुरक्षा, सयुक्त परिवारों की टूटना, शादी की चिन्ता, संतानोत्पति, गंभीर बीमारी आदि कई सामाजिक कारणों से मानसिक तनाव फैल रहा है।

प्राकृतिक चिकित्सा : मानसिक तनाव से मुक्त होना हो तो टहले, व्यायाम, सूर्य नमस्कार, वज्रासन, शवासन, प्राणायाम व ध्यान के विवेक, धैर्य, संयम को धारण करें। प्रतिदिन स्नान से पहले रबड़ नेति और जल नेति का अभ्यास करें। सप्ताह में दो बार कुंजल क्रिया करें। सदैव प्रसन्न मुद्रा में रहने की कोशिश करें। सुपाच्य व सात्विक भोजन करें। धारोष्ण दूध, फल-सब्जियों का जूस एवं सलाद का अधिक से अधिक उपयोग करें।

7.5 **सारांश**

आजकल गांवों की अपेक्षा शहरी जीवन मानसिक तनाव से बुरी तरह से ग्रस्त है। आय-व्यय, महंगाई, असुरक्षा, सयुक्त परिवारों की टूटना, शादी की चिन्ता, संतानोत्पति, गंभीर बीमारी आदि कई सामाजिक कारणों से मानसिक तनाव फैल रहा है।

प्राकृतिक चिकित्सा : मानसिक तनाव से मुक्त होना हो तो टहले, व्यायाम, सूर्य नमस्कार, वज्रासन, शवासन, प्राणायाम व ध्यान के विवेक, धैर्य, संयम को धारण करें। प्रतिदिन स्नान से पहले रबड़ नेति और जल नेति का अभ्यास करें। सप्ताह में दो बार कुंजल क्रिया करें। सदैव प्रसन्न मुद्रा में रहने की कोशिश करें। सुपाच्य व सात्विक भोजन करें। धारोष्ण दूध, फल-सब्जियों का जूस एवं सलाद का अधिक से अधिक उपयोग करें।

सम्पूर्ण शरीर की क्रियाओं को नियमित, नियन्त्रित एवं समन्वित करने वाला तंत्र तंत्रिका तन्त्र कहलाता हैं।

तन्त्रिका तन्त्र तन्त्रिका ऊतकों से बना होता हैं। तन्त्रिका ऊतक में तन्त्रिका तन्त्र में पाये जाने वाले विशेषी संयोजी ऊतक अर्थात् तन्त्रिका बन्ध (Neuroglia) का समावेश होता हैं।

7.6 **बोधात्मक प्रश्न**

1. सिर दर्द (Headache) के कारण व लक्षणों का वर्णन करते हुए प्राकृतिक चिकित्सा बताइए?
2. नाड़ी का फटना (Nervous brake down) के कारण व लक्षणों का वर्णन करते हुए प्राकृतिक चिकित्सा बताइए?

3. गठिया (Gout) साइटिका एवं (Sciatica के कारण व लक्षणों का वर्णन करते हुए प्राकृतिक चिकित्सा बताइए?
4. लकवा या पक्षाघात (Paralysis) के कारण व लक्षणों का वर्णन करते हुए प्राकृतिक चिकित्सा बताइए?
5. मृगी या अपस्मार (Epilepsy) की प्राकृतिक चिकित्सा बताइए?
6. अनिद्रा (Insomnia)) के कारण व लक्षणों का वर्णन करते हुए प्राकृतिक चिकित्सा बताइए?
7. मूर्छा (Fainting) की प्राकृतिक चिकित्सा बताइए?
8. मानसिक तनाव (Tension) के कारण व लक्षणों का वर्णन करते हुए प्राकृतिक चिकित्सा बताइए?
9. सिर दर्द (Headache) के प्रकारों का वर्णन कीजिए?

7.7 **सन्दर्भ ग्रन्थ**

क्र	संदर्भ साहित्य	लेखक	क्र	संदर्भ साहित्य	लेखक
1.	जीव-विज्ञान भग-1	बी. एस. राम दास, देव ज्योति दास	27.	प्राकृतिक चिकित्सा एवं स्वास्थ्य	डॉ. महेन्द्र कुमार जाजपुरा
2.	जीव-विज्ञान भाग-2	ओसवाल ट्यूटोरियल	28.	मानव शरीर रचना एवं क्रिया-विज्ञान	डॉ. महेन्द्र कुमार जाजपुरा
3.	शरीर रचना एवं क्रिया-विज्ञान	डॉ. विमल कुमार मोदी	29.	रोग, उनके कारण, लक्षण एवं उपचार	डॉ. महेन्द्र कुमार जाजपुरा
4.	बिना दवा परफेक्ट हेल्थ	डॉ. बलराम पटेल	30.	प्राण शक्ति उपचार; प्राचीन विज्ञान कला	चौ. कोक सुई
5.	नवीन मेडिकल प्रवेश परीक्षा	नवीन ग्रुप ऑफ पब्लिकेशन्स्- इलाहाबाद	31.	जीवनी शक्ति कैसे जगायें	डॉ. चन्द्र दीप सिंह
6.	मानव शरीर रचना एवं क्रिया-विज्ञान	डॉ. अनन्त प्रकाश गुप्ता	32.	आपका आरोग्य आपके हाथ में	देवेन्द्र वोरा
7.	प्राकृतिक स्वास्थ्य एवं योग	डॉ. बृज भूषण गोयल	33.	प्राकृतिक चिकित्सा एवं योग वैज्ञानिक प्रयोग	डॉ. नागेन्द्र कुमार नीरज
8.	प्राकृतिक आयुर्विज्ञान	डॉ. राकेश जिन्दल	34.	जीवेम् शरद शतम्	पं. श्री राम शर्मा आचार्य वाङ्मय
9.	वृहद प्राकृतिक चिकित्सा	डॉ. ओ. पी. सक्सेना	35.	बिना औषधियों के कायाकल्प	पं. श्री राम शर्मा आचार्य
10.	स्वस्थवृत विज्ञान	प्रो. रामहर्ष सिंह	36.	निरोग जीवन का राज मार्ग	पं. श्री राम शर्मा आचार्य
11.	प्राकृतिक स्वास्थ्य शास्त्र	आचार्य शेषांद्रि स्वामीनाथन	37.	दीर्घ जीवन की प्राप्ति	पं. श्री राम शर्मा आचार्य
12.	आदिऊर्जा प्राण	अमश्ता भारती	38.	पंच तत्वों द्वारा सम्पूर्ण रोगों का निवारण	पं. श्री राम शर्मा आचार्य
13.	स्वास्थ्य के सोपान	धनरूपमल सुराणा	39.	रोगों की सरल चिकित्सा	विट्ठलदास मोदी
14.	सरल प्राकृतिक चिकित्सा	डॉ. लक्ष्मी नारायण शर्मा	40.	जीने की कला	विट्ठलदास मोदी
15.	पातंजली योगसूत्र	स्वामी विवेकानंद	41.	आरोग्य प्रकाश	वैद्यराज पं. रामनारायण शर्मा

****

इकाई 8

अस्थि एवं जोड़ संस्थान एवं उसके रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा

(Skeletal & Joints system & nature cure for its diseases)

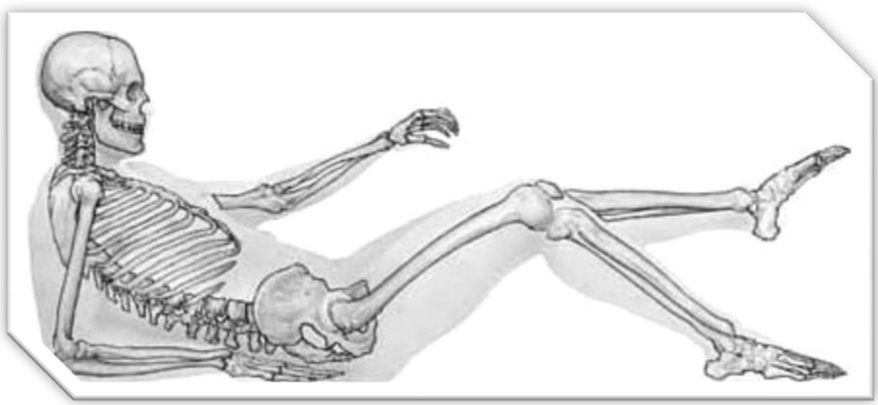

इकाई की रूपरेखा

8.1 उद्देश्य
8.2 प्रस्तावना
8.3 कंकाल तन्त्र के कार्य
8.4 अस्थि पंजर की बनावट
8.5 अस्थियों का संगठन
8.6 अस्थि-मज्जा
8.7 अस्थि का विकास
8.8 अस्थि में ऊतकों के प्रकार
8.9 अस्थियों के क्रियात्मक कार्य (Physiological functions of the banes)
8.10 अस्थियों से सम्बन्धित विशेष रचनाएँ
8.11 अस्थियों के प्रकार
8.12 अस्थि एवं जोड़ संस्थान के रोगों की सूची
8.13 अस्थि एवं जोड़ संस्थान के प्रमुख रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा
8.14 सारांश
8.15 बोधात्मक प्रश्न

8.16 संदर्भ ग्रंथ

8.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्यनन के बाद आप निम्न जानकारी प्राप्त कर सकेगे -

- कंकाल तन्त्र के कार्य
- अस्थि पंजर की बनावट
- अस्थियों का संगठन
- अस्थि-मज्जा
- अस्थि का विकास
- अस्थि में ऊतकों के प्रकार
- अस्थियों के क्रियात्मक कार्य (Physiological functions of the banes)
- अस्थियों से सम्बन्धित विशेष रचनाएँ
- अस्थियों के प्रकार
- अस्थि एवं जोड़ संस्थान के रोगों की सूची
- अस्थि एवं जोड़ संस्थान के प्रमुख रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा

8.2 प्रस्तावना

कड़े ऊतकों से निर्मित ढ़ांचे को अस्थि तन्त्र या कंकाल तन्त्र कहते हैं। इसी तन्त्र की सहायता से मनुष्य को एक सही आकार मिलता हैं। अगर हम अपने शरीर का कोई भी हिस्सा जैसे- हाथ , पैर, सिर, अंगुली दबायें तो नीचे किसी कठोर वस्तु का आभास होगा , यही अस्थि या हड्डी हैं। शरीर की कुछ हड्डियां लचीली एवं कम कठोर होती हैं , उसे उपास्थि (cartilage) कहते हैं। नाक की कुछ हड्डी , कान की हड्डी उपास्थि के उदाहरण हैं। हड्डियों में कठोरता कैल्शियम फास्फेट, कैल्शियम कार्बोनेट, मैग्नीशियम फास्फेट व मैग्नीशियम कार्बोनेट लवणों से आती है , जिनमें कैल्शियम फास्फेट की मात्रा सबसे ज्यादा रहती हैं। शरीर पर से त्वचा और मांस तथा भीतरी अंग निकाल देने पर केवल हड्डियों का ढ़ांचा रह जाता हैं। कंकाल तन्त्र कड़ी हड्डियों का बना है , परन्तु इसमें कई जोड़ होते हैं जिनसे हम शरीर को आवश्यकता व इच्छानुसार मोड़ या घुमा सकते हैं।

ये हड्डियां बाहर से कड़ी अवश्य होती हैं , परन्तु अन्दर से खोखली होती हैं। इसलिए ये बहुत भारी नहीं होती हैं। अस्थियों का भार शरीर के सोलहवें भाग के बराबर हैं।

8.3 कंकाल तन्त्र के कार्य

कंकाल तन्त्र के निम्र कार्य होते हैं:-

1. शरीर को आकृति देना: कंकाल तन्त्र ही शरीर का आधार बनता हैं। शरीर को आकृति या ढ़ाँचा (framework) अस्थियां ही देती हैं , अन्यथा शरीर मांस-पिंड रह जाता। कंकाल तंत्र की विशेष रचना

एवं विभिन्नता के कारण ही मछली , मेंढक़, मगर, पक्षी विभिन्न चौपायों और मनुष्य की अलग-अलग आकृति हैं।

2. शरीर के कोमलांगों की रक्षा करना:- अस्थियों द्वारा बनायें गये ढ़ाँचे (कंकाल) से शरीर के विभिन्न कोमल एवं महत्वपूर्ण अंगों की रक्षा होती है , जैसे- पर्शुकाएँ (ribs हृदय व फुफ्फुस की , कपालिय अस्थियाँ मस्तिष्क की, कशेरूक दंड (vertebral column) सुषुम्रा रज्जु (spinal cord) की तथा श्रोणि अस्थियाँ (pelvis) मूत्राशय को सहारा व सुरक्षा मिलती हैं।

3. पेशियों को जुडऩे का स्थान देना: हमारे शरीर की मांस-पेशियों की सहायता से विभिन्न अस्थि-संधियाँ स्वतंत्र गति करने की क्षमता रखते है, जिससे हम आवश्यकतानुसार अपने हाथ, पैर या सिर हिला सकते हैं। इनकी गति के लिए आवश्यक है कि अस्थियों के सिरे किसी ठोस आधार से जुड़े रहें, तभी ये तन कर या सिकुडक़र अपना कार्य कर पायेंगी।

4. श्वसन में सहयोग देना: ट्रेकिया में सम्पूर्ण वायु नलिका के छल्ले और पसलियाँ श्वसन में सहायता करते हैं।

5. श्रवण में सहायता: कान के अन्दर की तीन छोटी-छोटी हड्डियां जिनके नाम इनकस् मैलियश तथा स्टेपीज है, सुनने में मदद करती हैं।

6. लाल एवं श्वेत रक्त कणिकाओं का निर्माण: अस्थि के अन्दर अस्थि-मज्जा (bone marrow) रक्त में लाल एवं श्वेत रक्त कणिकाओं का निर्माण करती हैं। अस्थि-मज्जा (bone marrow) को मांसाहारी लोग चूस कर खाते हैं।

7. उत्तोलक (weighing) का काम करना: अस्थियों में संधि या जोड़ होने की वजह से ये उत्तोलक का काम करती हैं। जिससे मनुष्य बोझा उठा सकता हैं।

8.4 **अस्थि पंजर की बनावट**

हमारे शरीर में कुल 206 हड्डियां पाई जाती है, जो विभिन्न स्थानों पर आवश्यकतानुसार अलग-अलग आकार की होती हैं। जैसे- खोपड़ी व वक्ष में चपटी एवं हाथ व पैर में लम्बी एवं खोखली होने के कारण हड्डियां हल्की होती हैं। यदि ये हल्की न होती तो मांसपेशियां इन्हें इच्छानुसार आसानी से घुमा नहीं पाती। शरीर की विभिन्न अस्थियाँ परस्पर मजबूत दृढ़ सौत्रिक ऊतकों से बँधी रहती है। विभिन्न आकारों की अस्थियाँ परस्पर संधिबद्ध होकर शरीर की आकृति बनाती है। संधिबद्ध होने वाली सभी अस्थियों के सिरों पर उपास्थि या कार्टिलेज की परत चढ़ी रहती है। कुछ अस्थियों के बीच में उपास्थि की गद्दी (disc) रहती है। संधिस्थल पर अस्थियों को , एक-दूसरे पर, रगड़ खाने से बचाने का पूरा-पूरा प्रबन्ध रहता है , जिससे उनकी गति सहज होती है। अस्थियों को स्थित एवं यथास्थान रखने का कार्य स्नायु या लिगामेन्ट्स (ligaments) करते है, जो संधि या जोड़ पर अस्थियों को कसकर बाँध देते है। अस्थियों के सहारे शरीर को आकार देने का काम माँस-पेशियाँ भी करती है , जो अस्थियों को ऊपर से आवृत किये रहती है।

8.5 **अस्थियों का संगठन**

मानव कंकाल का अग्र भाग

अस्थि की स्थूल रचना आंखों से तथा सूक्ष्म रचना सूक्ष्मदर्शी यन्त्र की सहायता से देखी जाती हैं। अस्थियों की रचना में एक विशेष बात यह है कि ठोस होने के बावजूद ये भारी नहीं होती। जैसे स्पंज या लकड़ी के कोयले में छोटे-छोटे छेद होते हैं जिनकी वजह से उन्हें सुषिर Porus कहते हैं। उसी प्रकार अस्थियों की नीचे वाली परत भी सुषिर होती हैं।

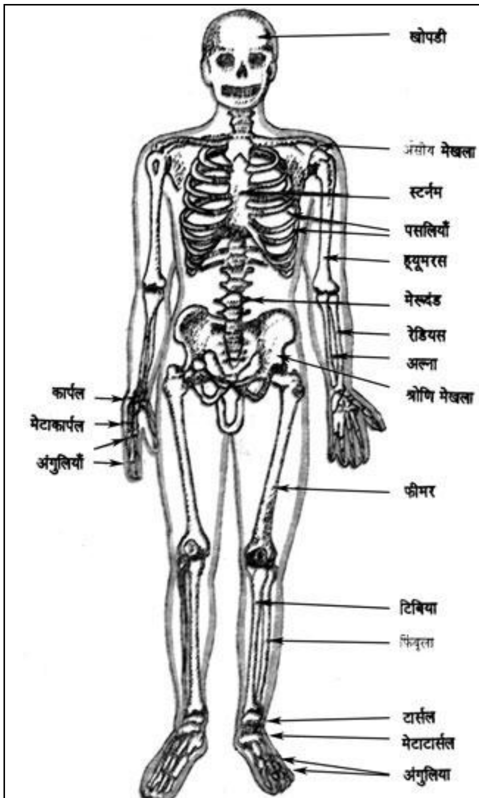

मानव कंकाल का अग्र भाग

एक पूर्ण रूपेण विकसित अस्थि या हड्‌डी में लगभग 25 प्रतिशत जल होता है तथा 75 प्रतिशत ठोस पदार्थ होते हैं। ठोस पदार्थ कार्बनिक एवं अकार्बनिक दो प्रकार के होते है, जो अस्थि कोशिकाओं के बीच के स्थान (interstitial space) मैट्रिक्स में पाए जाते है।

कार्बनिक पदार्थ : ये मुख्यत: प्रोटीन्स होते है, जो लगभग 30 प्रतिशत होते है। इसमें ओसीन (ossein), म्यूकोप्रोटीन (osseomucoid) तथा किरैटिन (osseoaluminiod) होते है।

अकार्बनिक पदार्थ : ये लगभग 45 प्रतिशत होते है, जिनमें प्रमुख कैल्शियम, फॉस्फोरस तथा मैग्रीशियम तत्व होते है और अल्प मात्रा में पोटैशियम, सोडियम तथ क्लोरीन होती है और सूक्ष्म मात्रा में आयरन, फ्लोरीन, लिथियम तथा स्ट्रोंशियम होते है। इन्हीं अकार्बनिक पदार्थो से अस्थि में कठोरता एवं दृढ़ता बनी रहती है, जबकि लचीलापन कार्बनिक पदार्थो से आता है।

8.6 **अस्थि-मज्जा** (Ossein or bone marrow)

अस्थि की केन्द्रीय मेड्‌यूलरी नलिका में तथा सुषिर अस्थि के बीच-बीच के रिक्त स्थानों (interstitial space) में कोशिकामय वाहिकामय ऊतक (cellulovascular tissue) विद्यमान रहते है। इन सबको अस्थि-मज्जा (bone marrow) कहते है। अस्थि-मज्जा (bone marrow) दो प्रकार की होती है-

1. लाल अस्थि-मज्जा (red bone marrow) : लाल अस्थि मज्जा में लाल रक्त कोशिकाओं (RBCs) तथा उनमें उपस्थित हीमोग्लोबिन का निर्माण होता है। , इसलिए यहाँ लाल रक्त कोशिकाओं की अधिकता रहती है, जिनसे इसे लाल रंग मिलता है।

2. पीली अस्थि मज्जा (yellow bone marrow) : पीली अस्थि मज्जा में वसा (fat) तथा रक्तवाहिकाओं (blood vessels) के साथ-साथ रेटीकुलर ऊतक अधिक रहते है , जिससे इसका रंग पीला रहता है। इसमें श्वेत रक्त कोशिकाएँ (leucocytes or WBCs) भी बनती है। लाल रक्त कोशिकाओं का विनाश रेटीकुलर एण्डोथीलियल कोशिकाओं (R.E.Cells) के द्वारा होता है। अस्थि मज्जा की

रेटीकुलर एण्डोथीलियल कोशिकाओं के द्वारा एण्टिबॉडी का निर्माण भी होता है। अस्थि मज्जा में प्लेटलेट्स (platelets) भी बनती है। अस्थि मज्जा के द्वारा ही प्लाज्मा के प्रोटीन का निर्माण होता है।

8.7 **अस्थि का विकास** (Development of bone)

अस्थि निर्माण में ऑस्टियोब्लास्ट (osteoblast) तथा ऑस्टियोक्लास्ट (osteoclast) नामक दो प्रकार की अस्थि कोशिकाएँ भाग लेती है। ये दोनों ही प्रकार की कोशिकाएँ वृद्धि के दौरान सक्रिय रहती है। ऑस्टियोब्लास्ट से अस्थि का निर्माण होता है तथा ऑस्टियोक्लास्ट से अस्थि का पोषण करती है, जिससे अस्थि का रूप एवं अनुपात बना रहता है।

अस्थि विकास के लिए काचाभ उपास्थि (hyaline cartilage) अथवा तंतुमय कला (fibrous membrane) वातावरण उपलब्ध कराती है। तंतुमय कला में विकसित होने वाली अस्थि कला-अस्थि (membrane bone) तथा काचाभ उपास्थि में विकसित होने वाली अस्थि उपास्थि-अस्थि (cartilage bone) कहलाती है। अस्थि के विकास की प्रक्रिया अस्थिभवन (ossification) कहलाती है। अस्थिभवन निम्र दो प्रकार से होता है-

1. अंतर्कला अस्थिभवन **(Intramembranous ossification)** : यदि अस्थि ऊतक (सुषिर या सघन) प्रत्यक्षत: भ्रूणीय संयोजी ऊतक (connective tissue) से विकसित होता है, तो इस प्रक्रिया को अंतर्कला अस्थिभवन कहा जाता है। इस प्रकार के अस्थिभवन से कपाल का चापाकार भाग तोरण (valt), चेहरे की चपटी अस्थियाँ एवं क्लैविकल (clavicle) का निर्माण होता है। संयोजी ऊतक (connective tissue) कला में जिससे अस्थि का विकास होता है, रक्त आपूर्ति अच्छी रहती है। इसमें कुछ निश्चित केन्द्रों पर अस्थिभवन (ossification) होना आरम्भ हो जाता है तथा कला में विद्यमान कोशिकाओं के बहुगुणन द्वारा यह तब तक बढ़ता जाता है जब तक कि अस्थि का एक नाजुक जाल नहीं बन जाता है। अन्त में एक चपटी अस्थि का निर्माण हो जाता है, जिसके ऊपर-नीचे दोनों ओर सघन अस्थि ऊतक की दो परतें होती है तथा बीच में सुषिर अस्थि ऊतक (spongy bone tissue) होता है। सघन अस्थि के बाहर अस्थ्यावरण (periosteum) होता है।

2. अंतर्उपास्थिय अस्थिभवन **(Intracartilaginous ossification)** : जब अस्थिऊतक काचाभ उपास्थि से विकसित होता है, तो इस प्रक्रिया को अंतर्उपास्थिय अस्थिभवन कहा जाता है। विकासशील भ्रूण में सभी दीर्घास्थियाँ प्रारम्भिक अवस्था में उपास्थि की रॉड्स के रूप में होती है। जिन पर पेरीकॉण्ड्रियम नामक कला चढ़ी रहती है। रॉड्स के बीच में एक प्राथमिक अस्थिभवन केन्द्र (centre of ossification) उदित होता है, जिसे अस्थिवर्ध (diaphysis) कहते है, जो अंत में किसी दीर्घास्थि का काण्ड होता है। मैट्रिक्स में कैल्शियम जमा हो जाता है तथा अस्थि कोशिकाएँ विकसित हो जाती है। पेरीकॉण्ड्रियम से पेरी ऑस्टियम निर्मित हो जाती है। इसकी आंतरिक गहन (deep) परत में अस्थिजनक कोशिकाएँ (osteogenic cells) पायी जाती है, जो विभाजन के दौरान ऑस्टियोब्लास्ट्स में परिवर्तित हो जाती है तथा इनके बहुगुणन से अस्थि मोटाई तथा लम्बाई दोनों में बढ़ जाती है। अंतर्उपास्थि अस्थिभवन द्वारा दीर्घास्थियों का विकास होता है।

विकासशील दीर्घास्थियाँ एक काण्ड या अस्थिवर्ध (diaphysis) तथा दो पृथक-पृथक अग्रांतों या अधिवर्धो (epiphysis) से मिलकर बनती है, जो बाद में तीनों आपस में जुड़ जाती है। बाद में विकास

की प्रक्रिया में प्रत्येक अधिवर्ध में अस्थिभवन का एक द्वितीयक केन्द्र उदित होता है और वहाँ अस्थिभवन होना आरम्भ हो जाता है, जो काण्ड की ओर तथा प्रत्येक अधिवर्ध के सिरे की ओर बढ़ता जाता है। दोनों ओर के अधिवर्ध काचाभ उपास्थि (hyaline cartilage) से ढ़ँके होते है , जो बाद में संधायक उपास्थि (articular cartilage) बन जाती है। काण्ड (diaphysis) तथा दोनों ओर के अधिवर्ध (epiphysis)अधिवधी-उपास्थि (epiphyseal cartilage) के द्वारा जुड़े रहते है। यही उपास्थि की परत धीरे-धीरे अस्थि में बदल जाती है तथा बाल्यावस्था तक पहुँचते-पहुँचते अधिवर्धी उपास्थि तो पूर्णत: लुप्त हो जाती है और अस्थिवर्ध या काण्ड तथा दोनों अधिवर्ध मिलकर एक पूर्णत: विकसित अस्थि में परिवर्तित हो जाती है।

जन्म के उपरांत दीर्घास्थियों का विकास तब तक चलता रहता है, जब तक कि वे पूर्णत: अस्थि नहीं बन जाती है। अस्थि की लम्बाई में वृद्धि अधिवर्धी उपास्थि की परत के रहने तक होती रहती है। अस्थिवर्ध या काण्ड भी लम्बाई में बढ़ता है तथा अधिवर्धी उपास्थि द्वारा दोनों सिरों पर नई अस्थि बनती रहती है। जब पूर्ण वृद्धि हो जाती है तब यह अधिवर्धी उपास्थि अस्थि में परिवर्तित हो जाती है और बाद में दिखाई नहीं देती। ऐसा 18 से 25 वर्ष की आयु के बीच होता है। विभिन्न अस्थियों में भिन्न-भिन्न समय पर तथा एक अस्थि के भिन्न सिरों पर भी भिन्नसमय पर वृद्धि पूरी होती है जैसे- बाहु की अस्थि का निचला अधिवर्ध 18 वर्ष की आयु में जुड़ता है , लेकिन ऊपरी अधिवर्ध लगभग इसके 2 वर्ष बाद भी नहीं जुड़ पाता है।

अस्थियों की वृद्धि एवं निर्माण करने में तथा उन्हें कठोर , दृढ़ और मजबूत बनाने में कैल्सियम का महत्वपूर्ण योगदान रहता है। साथ ही अस्थि की वृद्धि समस्त शरीर के स्वास्थ्य एवं वृद्धि पर भी निर्भर करती है, क्योंकि इसका विकास अंगों के अनुपात में ही होता है। अस्थि की वृद्धि पिट्यूटरी एवं थायराइड ग्रन्थि के हार्मोन्स से भी प्रभावित होती है।

8.8 अस्थि में ऊतकों के प्रकार

अस्थि में दो प्रकार के ऊतक होते हैं :

1. संहत ऊतक **(Compact tissue)**: संहत अस्थि ऊतक कठोर तथा सघन होता हैं। यह चपटी अस्थियों में तथा लम्बी अस्थियों के काण्ड या शेफ्ट में पाया जाता हैं। इसके अतिरिक्त यह सभी प्रकार की अस्थियों में एक पतले आवरण के रूप में पाया जाता हैं।

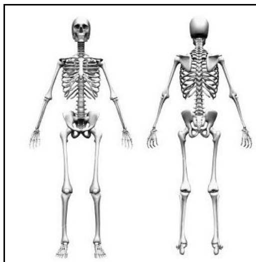

मानव-कंकाल का अग्र व पृष्ठभाग

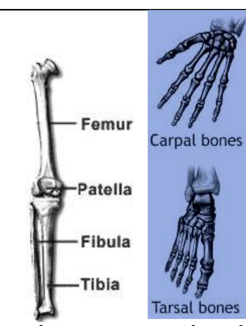

Long bone **Short bone**

2. सुषिर ऊतक **(Cancelleus tissue)**: सुषिर अस्थि ऊतक का स्वरूप स्पंजी होता हैं। यह दीर्घ अस्थि के छोरों पर, लघु अस्थियों तथा चपटी अस्थियों में पाया जाता हैं। संहत ऊतक की दो परतों के बीच एक पृथक परत के रूप में ऐसी चपटी अस्थियों के उदाहरण स्कन्ध फलक, उरोस्थि तथा पसलियां हैं।

8.9 **अस्थियों के क्रियात्मक कार्य** (Physiological functions of the banes)

1. अस्थियाँ शरीर में गति-क्षमता उत्पन्न करती है। पेशियों की सहायता से शरीर को स्वतंत्र गतियों की क्षमता अस्थियाँ ही देती है।

2. अस्थियाँ कैल्शियम , फॉस्फेट एवं मैग्रीशियम आदि लवणों के संचित भण्डार होते है , तथा आवश्यकता पडन्ने पर शरीर को इनसे ये लवण प्राप्त होते रहते है। वास्तव में शरीर का 99 प्रतिशत कैल्शियम इन्हीं अस्थियों में पाया जाता है , साथ ही 86 प्रतिशत फॉस्फेट तथा 54 प्रतिशत मैग्रीशियम भी पाया जाता है।

3. अस्थियों की मज्जा (bone marrow) में रक्त कोशिकाओं (RBCs, WBCa & Platelets) निर्माण होता है।

4. अस्थियाँ शरीर में समस्थिति (homeostasis) बनाए रखने में सहायक होती है।

इनके अतिरिक्त और भी कार्यो का वर्णन पहले कंकालीय कार्य में किया जा चुका है।

8.10 **अस्थियों से सम्बन्धित विशेष रचनाएँ**

शरीर में विभिन्न आकार-प्रकार की अस्थियाँ होती है तथा सभी अस्थियों की सतह असमान (irregular) रहती है। इनमें कहीं उभार रहता है , तो कहीं गहराई और कहीं इनके सिरे आगे को निकले रहते है। कहीं इनका गोल मुण्डक (condyle) ऊपर को उठा रहता है।

कहीं इनमें खाँच होती है , तो कहीं-कहीं गड्ढे के आकार के गर्त एवं गर्तिकाएँ बन जाती है। खात और खातिकाओं से अस्थियों का पृष्ठ भरा रहता है। परन्तु ये सभी किसी न किसी प्रयोजन के लिए ऐसी होती है। संधि स्थल पर अस्थि की विशेष प्रकार की रचना होती है। संधिस्थल पर अस्थियाँ ऊपर से लिंगामेन्ट्स के द्वारा बंधी रहती है तथा पेशियाँ इनसे कण्डराओं के द्वारा जुड़ती है। अस्थियों में ऐसी रचना सम्बन्धी अनेकों विशेषताएँ होती है जो निम्रवत् है-

1. संधि (Articulation) : यह संधि उस स्थान पर होती है , जहाँ दो या दो से अधिक अस्थियाँ परस्पर संधिबद्ध होती है। जोड़ में दो तरह की सतहें (surfaces) होती है। एक आर्टिकुलर यानि जोड़ बनाने वाली सतहें (articular surfaces), जो संधियों या जोड़ों के बनने में सहायता करती है और चिकनी रहती है। दूसरी नॉनआर्टिकुलर यानि जोड़ या संधि नहीं बनाने वाली सतहें (articular surfaces), जो पेशियों या लिगामेंटों (ligaments) के जुडन्ने में सहायता करती है और खुरदरी रहती है।

2. हैड (head or capat) : यह अस्थि के सिरे पर संधि बनाने वाला उभार है , जो गोले की भाँति प्रतीत होता है।

3. कॉण्डाइल (condyle) : यह संधि बनाने वाला उभार है लेकिन यह अण्डाकार है।

4. क्रेस्ट (Crest) : यह अस्थि पर उठी हुई लम्बी, खुरदरी, सँकरी मेंड के समान रचना है।

5. फेसेट (Facet) : यह अस्थि के सिरे संधिबद्ध होने के लिए उस स्थल पर एक विशिष्ट प्रकार की रचना है।

6. खात (Fossa) : यह अस्थि की समूह के चपटे गड्ढे होते है।

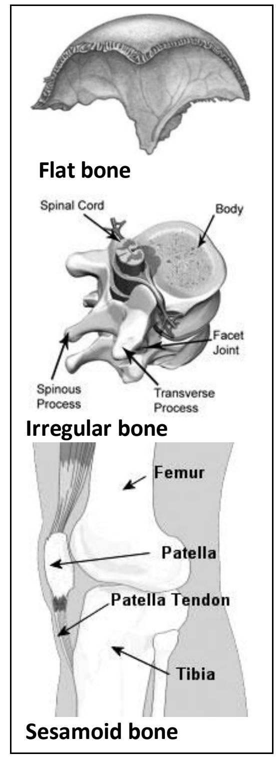

7. ग्रूव या सल्कस (Groove or sulcus) : यह अस्थि की सतह पर लम्बे तथा संकरे गड्ढे होते है।

8. रंध्रक या फोरामेन (Foramen) : यह अस्थि में छिद्र , जो किसी अंग के सातत्य में प्रसरित (extend) अंग को मार्ग देने के प्रयोजनार्थ होते है।

9. विवर या साइनस (Sinus): यह अस्थि में खोखली गुहा है।

10. प्रवर्ध या कंटक (Process) : यह पेशी के जुड़ने के लिए अस्थि का खुरदरा उभार है।

11. स्पाइन (Spine) : यह नुकीला, खुरदरा उभार है।

12. शिखरक या ट्रॉकैन्टर (Trochantor) : यह कुछ अस्थियों पर पाये जाने वाला चौड़ा खुरदरा उभार है।

13. गण्डक या ट्यूबरोसिटी (Tuberosity) : यह किसी-किसी अस्थि पर विद्यमान चौड़ा खुरदरा उभार है।

14. ट्यूबरकल (Tubercle) : यह अस्थि पर छोटी , गोल आकार की उभरी रचना है।

15. खाँच या नोच (Notch) : यह विशेषकर किसी अस्थि के बार्डर पर गहरा दाँतेदार कटाव है।

16. ट्रॉक्लीया (Trochlea) : यह अस्थि की ग्रूवदार सतह जो एक पुली (pulley) की भाँति कार्य करती है।

17. एपिकोण्डाइल (Epicondyle) : यह अस्थि में कॉण्डाइल केऊपर का उभार है।

8.11 **अस्थियों के प्रकार**

मानव शरीर में रचना एवं आकृति के अनुसार अस्थियों को निम्न पाँच प्रकारों में बांटा जा सकता है जैसे-

1. लम्बी या दीर्घास्थियां **Long bones** : ऐसी अस्थियाँ जो चौड़ाई की अपेक्षा लम्बाई में अधिक होती है, लम्बी अस्थियाँ कहलाती है। इस प्रकार की अस्थियाँ जैसे- शरीर की सबसे लम्बी अस्थि जांघों की Femur है। पैरों में Tibia, Fibula होती है। भुजाओं में Humerus पायी जाती है। हाथों में Radius, Ulna होती है। ये लम्बी अस्थियाँ उत्तोलन lever की भाँति कार्य करती है , जो पेशियों के संकुचन (contraction) से खिंचती है। इसी उत्तोलन क्रिया से शरीर में गतियाँ होती है।

लम्बी अस्थि को जब दीर्घ अक्ष में काटा जाता है, तो दो प्रकार के ऊतकों संहत ऊतक और सुषिर ऊतक का वितरण स्पष्टः हो जाता हैं। लम्बी अस्थियों के मध्य भाग में एक काण्ड या शैफ्ट (diaphyses) तथा इसके दोनों सिरों पर दो अधिवर्ध (epiphysis) होते है शैफ्ट या काण्ड सघन अस्थि ऊतक का बना होता है। इसकी अनुप्रस्थ काट (transverse section) का सूक्ष्मदर्शी से परीक्षण करने पर इसके बीच में एक खोखला स्थान पाया जाता है , जिसे मज्जा गुहा (Medullary cavity) कहते है, जिसमें पीला अस्थि-मज्जा (yellow bone marrow) भरा होता है। ये दोनों सिरे स्पंजी अस्थि के बने होते है और सघन अस्थि की पतली तह द्वारा ढ़ंके रहते है , जिनके भीतर लाल अस्थिमज्जा (red bone marrow) होता है, जो रक्त प्रवाह में लाल रक्ताणुओं की पर्याप्त संख्या बनाये रखती है। शैफ्ट तथा अधिवर्ध , अधिवर्धी उपास्थि (epiphyseal cartilage) द्वारा अलग-अलग रहते है। लम्बी अस्थि तंतुमय ऊतक (fibrous tissue) के मजबूत आवरण से ढ़ँकी रहती है, जिसे अस्थ्यावरण (periosteum) कहते है।

2. छोटी अस्थियां **Short bones** : इस प्रकार की अस्थियाँ लम्बाई, चौड़ाई एवं मौटाई में लगभग समान या बराबर होती है, लेकिन इनकी आकृति असम होती है। इनका अधिकाँश भाग स्पंजी अस्थि ऊतक का बना होता है, जिसके ऊपर पतले सघन अस्थि ऊतक का आवरण चढ़ा रहता है। छोटी अस्थियाँ केवल कलाई में मणिबन्धीय अस्थियाँ तथा टखनों (ankles) में गुल्फका-अस्थियाँ पायी जाती है , जहाँ कि केवल सीमित गति की आवश्यकता होती है।

सहंत अस्थि की आड़ी काट का निरीक्षण करने पर वृत्तों का बना एक विलक्षण डिजाइन पाया जाता हैं। प्रत्येक वृत्त के केन्द्र में एक हैवर्स नलिका (Haversian canal) होती है , जिसके गिर्द सकेन्द्रिक (Concentric) रूप में अनेक अस्थि प्लेटें या पटलिकाएं (Lamellae) सुसज्जित रहती हैं। इन पटलिकाओं के मध्य सूक्ष्म रिक्तिकाएं (Lacunae) होती हैं। ये रिक्तिकाएं सूक्ष्म नलिकाओं (Canaliculi) द्वारा एक दूसरे से तथा केन्द्रीय हैवर्स नलिका से सम्बन्धित रहती हैं। इन रिक्तिकाओं में अस्थि कोशिकाएं (Osteocytes) रहती हैं। एक सम्पूर्ण हैवर्स तन्त्र (Haversian system) के निम्नलिखित अंग होते हैं:

1. एक केन्द्रीय हैवर्स नलिका , जिसमें तन्त्रिकाएं , रक्त वाहिकाएं (blood vessels) तथा लसीका वाहिनियां (lymph vessels) होती हैं।
2. पटलिकाएं जो संकेन्द्रिक होती हैं।
3. रिक्तिकाएं जिनमें अस्थि कोशिकाएं होती हैं।
4. सूक्ष्म नलिकाएं जो रिक्तकाओं को परस्पर तथा हैवर्स नलिका से जोड़ती हैं।

हैवर्स तन्त्रों के बीच के स्थान (interstitial space) में अन्तराली पटलिकाएं होती है तथा उनकी सूक्ष्म नलिकाओं की बनावट कुछ भिन्न होती हैं। हैवर्स नलिकाएं अस्थि के लम्बे अक्ष में विद्यमान होती हैं। सुषिर अस्थि में पटलिकाएं नियमित रूप से व्यवस्थित नहीं होती, इनमें हैवर्स नलिकाएं नहीं पायी जाती, तथापि इस अस्थि के अन्तराली अवकाशों में रक्तवाहिकाओं (blood vessels) की शाखाएं पायी जाती हैं। इन लघु शाखाओं को अपने स्थान पर स्थित रहने में मज्जा से सहायता मिलती है जो सुषिर अस्थि के अवकाशों में भरी रहती हैं।

अस्थि एक वाहिकामय कला Vascular membrane से ढक़ी रहती हैं , जिसे पर्यस्थि Periosteum कहते है। अस्थि के सन्धि पृष्ठः पारदर्शी उपास्थि में ढक़े होते हैं।

पर्यस्थि एक तन्तुमय तथा वाहिकामय कला है जो अस्थि को ढकती हैं। इसमें रक्तवाहिकाओं (blood vessels) की बहुलता होती है तथा यह अस्थि की सतह पर मजबूती से ढकी रहती हैं। पर्यस्थि की रक्तवाहिकाएं (blood vessels) अस्थि में पहुंच कर शाखाओं में बंट जाती है तथा अस्थि को रक्त प्रदान करती हैं। विकासशील अस्थि तथा पर्यस्थि के मध्य-उत्पादक कोशिकाओं की परत होती हैं। इन कोशिकाओं के बहुगुणन से अस्थि का आकार बढ़ता रहता हैं। पर्यस्थि से प्राप्त होने वाले रक्त के अतिरिक्त अस्थि को एक विशेष पोषक धमनी Nutrient artery द्वारा भी रक्त प्राप्त होता हैं। यह धमनी अस्थि में एक तिरछे कोण पर किसी सुरक्षित स्थान पर प्रविष्ठ होती हैं।

ऊध्र्व शाखा की अस्थियों में यह तिरछी दिशा कोहनी की ओर इंगित करती हुई होती हैं। अत: शाखा की अस्थियों में यह दिशा घुटने से विपरीत दिशा में होती हैं। लम्बी अस्थियों में पोषक रन्ध्र (Foramen स्पष्ट दिखाई पड़ते हैं। पोषक धमनी की यह दिशा यह भी दर्शाती हैं कि इस अस्थि का विपरीत छोर दूसरे छोर की अपेक्षा ज्यादा समय तक बढ़ता रहता है , जैसे हाथ की ऊपरी अस्थि प्रगण्डिका में पोषक रन्ध्र की दिशा कोहनी की ओर हैं। इसका ज्यादा समय तक बढने वाला छोर कंधे का छोर हैं।

3. चपटी अस्थियां **Flat bones**: चपटी अस्थियाँ वास्तव में पतली अथवा प्राय: कुछ मुड़ी हुई होती है। इस प्रकार की अस्थियों में पर्शुकाएँ, स्कंधास्थियाँ, वक्षोस्थि तथा कपाल की अस्थियाँ आदि आाती है। अस प्रकार की अस्थियों में सघन अस्थि ऊतक की दो पतली प्लेटों के बीच में स्पंजी अस्थि ऊतक होता है, जिसमें लाल अस्थि मज्जा रहता है। ये अस्थियाँ उन स्थानों पर पायी जाती है , जहाँ पर अस्थि को अन्तरांगों की रक्षा करने की आवश्यकता होती है।

4. आड़ी-तिरछी या असमाकृति अस्थियां **Irregular bones**: इस प्रकार की अस्थियों का कोई निश्चित आकार-प्रकार नहीं होता है , जैसे- कशेरूकाएं (Vertebra), चेहरे की कुछ अस्थियाँ तथा कूल्हें की अस्थियाँ। ये स्पंजी अस्थि की बनी होती है और सघन अस्थि की पतली तह द्वारा ढ़ँकी रहती है।

5. तिलाकार या कण्डरास्थियां **Sesamoid bones**: ये अस्थियाँ तिल के समान होने के कारण तिलाकार अस्थियाँ कहलाती है। इस तरह की छोटी अस्थियाँ जो मासंपेशियों की बड़ी अस्थियों के जुड़ाव स्थल (Tendon) पर पाई जाती हैं , जैसे घुटने की ऊपरी अस्थि (Patella) एवं कलाई की पिसिफॉर्म अस्थि। इस तरह की अस्थियाँ जोड़ों की कार्य क्षमता को बढ़ाती है।

अस्थियों का विवरण देते हुए निम्नलिखित आधारभूत बिन्दुओं को जानना चाहिए-

1. अस्थि का क्या नाम है और वह शरीर के किस भाग और किस तरफ(Right or left) की अस्थि हैं?
2. अस्थि का प्रकार क्या है और मुख्य विशेषताएं क्या हैं?
3. मुख्य मांसपेशियाँ जो उससे जुड़ती हैं।
4. शरीर के कौन-से जोड़ बनाने में सहायक है?
5. कौन-कौन सी रक्त नलिकाएं एवं नाडिय़ाँ इसके सम्पर्क में आती हैं?
6. अस्थि का चित्र बनाना अवश्य आना चाहिए।

हमारी मासंपेशियां अस्थियों पर जुड़ी रहती हैं। इन्हीं अस्थियों और मांसपेशियों के बीच से होकर रक्त नलिकाएं और नाडिय़ाँ शरीर के प्रत्येक भाग तक पहुचंती हैं। मांसपेशियों का जुड़ाव तथा रक्त नलिकाओं और नाडिय़ों का प्रवाह अस्थियों पर कुछ निशान जैसे खुरदरे स्थल (Rough areas), छोटे और बड़े

गोल उभार (Tuberosity and trochanter), रेखा रूपी उभार (Ridges), नलिका रूपी गहराव (Canals and grooves) आदि जहाँ अस्थियों की पहचान में सहायक हैं, वहीं दूसरी और अस्थियों के टूटने पर आस-पास के इन दूसरे ऊतकों (Tissues) को नुकसान भी हो सकता हैं।

8.12 अस्थि एवं जोड़ संस्थान के रोगों की सूची

क्र.	हिन्दी या संस्कृत नाम	English name	क्र.	हिन्दी या संस्कृत नाम
1.	हड्डी का ह्रास या गलना	Osteoarthritis	12.	हड्डी का मुड़ना
2.	हड्डियों का खोखलापन	Osteoporosis	13.	हड्डी का बढ़ना
3.	हड्डी का टूटना	Fracture	14.	हड्डी का क्षीण-भीन होना
4.	दाँतों के रोग- सड़ना, टूटना, गलना, दंतक्षय	Disease of the teeth	15.	हड्डी का पदच्यूत होना या उखड़ना
5.	नाखून से सम्बन्धित समस्या, नाखून क्षय	Nail Problem		
6.	कमर दर्द	Sleep disc		
7.	जोड़ों का दर्द	Joint problem		
8.	गठिया	Gout		
9.	संधिवात	Rheumatoid arthritis		
10.	कमर व पैर दर्द	Sciatica		
11.	कमरदर्द	Back pain		

8.13 अस्थि एवं जोड़ संस्थान के प्रमुख रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा

1. हड्डियों का खोखलापन (Osteoporosis)

परिचय : यह ज्यादातर 50 वर्ष की आयु के बाद की समस्या है , लेकिन आजकल यह हर आयु वर्ग के बच्चों, वयस्कों एवं वृद्धों में देखने को मिलती है और ज्यादातर महिलाओं में उस समय देखने को मिलती है, जब वे रजोनिवृत्ति की अवस्था से गुजरती है।

कारण : अप्राकृतिक भोजन, असंतुलित आहार, धूप से दूर रहना, कैल्शियम एवं विटामिन डी की कमी, धुम्रपान, शराब, रजोनिवृत्ति के बाद हार्मोन का असंतुलन, कैल्शियम का न पचना या आत्मसात न होना आदि।

लक्षण : पैरों में दर्द , कमर दर्द, कमर का झुक जाना , कूल्हे की हड्डी का पतला पड़ जाना , माँस-पेशियों की ऐंठन, ऐंठन से मुडऩे-झुकने में दर्द व तकलिफ , घुमने की शक्ति में कमी , जरा से झटके से दर्द या हड्डियों का टूटना आदि।

प्राकृतिक चिकित्सा : ऐसी समस्या में रोगी को 4-5 दिनों तक फल-सब्जियों जैसे- संतरा , नीम्बू, अनानास, पपीता, हरी पत्तेदार सब्जियाँ, पत्तागोभी, चुकन्दर, गाजर आदि का रस दिनभर में हर 3-3 घण्टे से पीना चाहिए। इस तरह रसाहार के बाद फल-सब्जियाँ , नारियल गिरी एवं अंकुरित अनाज के साथ संतुलित आहार शुरू करें। ऐसा हर एक सप्ताह के अन्तराल करते रहें।

तिल व गुड़ खाये, तिल का दूध बनाकर पीयें। सुखे मेवे खायें। ध्यान रहें कि ठूस-ठूस कर न खायें, लेकिन बहुत चबा चबाकर खायें।

गरिष्ठ भोजन, तलाभूना, मैदा, चीनी से बने चीजें, मिठाई आदि नहीं खायें।

रसाहार के दौरान एनीमा लेवें।

सुबह-शाम टहले और व्यायाम करें।

2. कमर दर्द **(Backache)**

कारण : बैठने, उठने, लेटने, चलने, दौडऩे, उछलने, कुदने, भार उठाने आदि की सही स्थिति न होने के कारण यह समस्या पैदा हो जाती है। ऊँची एड़ी की चप्पल व जूते पहनने से भी ऐसी समस्या हो जाती है। आलस्य पूर्ण जीवन शैली , माहवारी की समस्या , अप्राकृतिक भोजन से पोषक तत्वों की कमी , माँस-पेशियों की कमजोरी, मोटापा, रीढ़ में कोई समस्या से भी यह समस्या हो जाती है। विश्राम व व्यायाम की कमी से भी यह समस्या होती है। ज्यादा नरम एवं गद्देदार बिस्तर पर सोना , कमर में चोट लगना एवं संधिवात या अन्य कोई रोग होने पर कमर दर्द होता है।

लक्षण : कमर के क्षेत्र में दर्द होना शुरू होकर कभी-कभी यह थोड़ा ऊपर की ओर गुर्दो तक भी हो जाता है। ज्यादातर कमर का दर्द नीचे कुल्हों की ओर बढ़ता है तो वह रुश 2ढ्ढह्य् ह्यश्चशठ्ठस्र4द्यशह्यद्बह्य के नाम से जाना जाता है।

प्राकृतिक चिकित्सा : ऐसे रोगी को अपने भोजन में फल, सलाद एवं अंकुरित अनाज लेना चाहिए। फल-सब्जियों का रसाहार लेवें। कैल्शियम, विटामिन सी एवं डी प्रधान खाद्य-पदार्थ लेवें जैसे- तिल, सहजन, आँवला, चुकन्दर, गुड़ आदि।

कमर पर ठण्ड़ा-गरम सेंक, रीढ़ स्नान, रोगग्रस्त स्थान पर मालिश करे और वहाँ 15-20 मिनट लाल प्रकाश का सेवन करें।

कठोर आसन पर बैठे व लेटे और पूर्ण विश्राम करें। हर समय ध्यान रहें कि रीढ़ सीधी रहे।

दौडऩे, उछलने, कुदने, भार उठाने आदि क्रिया न करें। आगे झुकने वाले काम व आसनों से बचे।

पीछे झुकने वाले आसन व व्यायाम करे जैसे- भुजंगासन, धनुरासन, शलभासन आदि।

8.14 सारांश

शरीर की कुछ हड्डियां लचीली एवं कम कठोर होती हैं , उसे उपास्थि (cartilage) कहते हैं। नाक की कुछ हड्डी, कान की हड्डी उपास्थि के उदाहरण हैं। हड्डियों में कठोरता कैल्शियम फास्फेट, कैल्शियम कार्बोनेट, मैग्नीशियम फास्फेट व मैग्नीशियम कार्बोनेट लवणों से आती है, जिनमें कैल्शियम फास्फेट की मात्रा सबसे ज्यादा रहती हैं। शरीर पर से त्वचा और मांस तथा भीतरी अंग निकाल देने पर केवल हड्डियों का ढ़ांचा रह जाता हैं। कंकाल तन्त्र कड़ी हड्डियों का बना है , परन्तु इसमें कई जोड़ होते हैं जिनसे हम शरीर को आवश्यकता व इच्छानुसार मोड़ या घुमा सकते हैं।

अस्थि की केन्द्रीय मेड्यूलरी नलिका में तथा सुषिर अस्थि के बीच-बीच के रिक्त स्थानों(interstitial space) में कोशिकामय वाहिकामय ऊतक (cellulovascular tissue) विद्यमान रहते है। इन सबको अस्थि-मज्जा (bone marrow) कहते है।

8.15 बोधात्मक प्रश्न

1. अस्थि एवं जोड़ संस्थान के कोई पाँच रोगों के नाम बताइये?
2. हड्डियों का खोखलापन (Osteoporosis) के कारण व लक्षणों का वर्णन करते हुए प्राकृतिक चिकित्सा बताइए?
3. कमर दर्द (Backache) के कारण व लक्षणों का वर्णन करते हुए प्राकृतिक चिकित्सा बताइए?

8.16 सन्दर्भ ग्रन्थ

संदर्भ साहित्य	**लेखक**	**संदर्भ साहित्य**	**लेखक**
प्राकृतिक आयुर्विज्ञान	डॉ. राकेश जिन्दल	जीवेम् शरद शतम्	पं. श्री राम शर्मा आचार्य वाङ्मय
वृहद प्राकृतिक चिकित्सा	डॉ. ओ. पी. सक्सेना	बिना औषधियों के कायाकल्प	पं. श्री राम शर्मा आचार्य
स्वस्थवृत विज्ञान	प्रो. रामहर्ष सिंह	निरोग जीवन का राज मार्ग	पं. श्री राम शर्मा आचार्य
प्राकृतिक स्वास्थ्य शास्त्र	आचार्य शेषांद्रि स्वामीनाथन	दीर्घ जीवन की प्राप्ति	पं. श्री राम शर्मा आचार्य
आदिऊर्जा प्राण	अमश्ता भारती	पंच तत्वों द्वारा सम्पूर्ण रोगों का निवारण	पं. श्री राम शर्मा आचार्य
स्वास्थ्य के सोपान	धनरूपमल सुराणा	रोगों की सरल चिकित्सा	विट्ठलदास मोदी
सरल प्राकृतिक चिकित्सा	डॉ. लक्ष्मी नारायण शर्मा	जीने की कला	विट्ठलदास मोदी
पातंजली योगसूत्र	स्वामी विवेकानंद	आरोग्य प्रकाश	वैद्यराज पं. रामनारायण शर्मा
प्राकृतिक चिकित्सा एवं योग	श्रीमत्ती राज कुमारी गुप्ता	मौलिक चिकित्सा कौन सी?	डॉ. चंचलमल चोरडिया
प्राकृतिक जीवन की ओर	श्री एडोल्फ जस्ट	100 वर्ष कैसे जीयें	आचार्य श्याम सुन्दर सुमन
100 वर्ष निरोगी रहिए	माणेक लाल म. पटेल	प्राकृतिक चिकित्सा दर्शन	हेनरी लिंडलार
रोगों की अचूक चिकित्सा	जानकी शरण वर्मा	Fasting can sour your life	H.N. Shelton
प्रकृति से मैत्री	प्रकाशन विभाग	उपवास चिकित्सा	बर्नर मैकफेडन
आरोग्य की कुंजी	राष्ट्रपिता महात्मा गांधी	प्राकृतिक चिकित्सा	डॉ. सतीश गोयल
कुदरती चिकित्सा	राष्ट्रपिता महात्मा गांधी	Diet and diet reform	Sebastian kneipp
जीव-विज्ञान भग-1	बी. एस. राम दास, देव ज्योति दास	प्राकृतिक चिकित्सा एवं स्वास्थ्य	डॉ. महेन्द्र कुमार जाजपुरा
जीव-विज्ञान भाग-2	ओसवाल ट्यूटोरियल	मानव शरीर रचना एवं क्रिया-विज्ञान	डॉ. महेन्द्र कुमार जाजपुरा
शरीर रचना एवं क्रिया-विज्ञान	डॉ. विमल कुमार मोदी	रोग, उनके कारण, लक्षण एवं उपचार	डॉ. महेन्द्र कुमार जाजपुरा
बिना दवा परफेक्ट हेल्थ	डॉ. बलराम पटेल	प्राण शक्ति उपचार; प्राचीन विज्ञान कला	चौ. कोक सुई
नवीन मेडिकल प्रवेश परीक्षा	नवीन ग्रुप ऑफ पब्लिकेशन्स्- इलाहाबाद	जीवनी शक्ति कैसे जगायें	डॉ. चन्द्र दीप सिंह
मानव शरीर रचना एवं क्रिया-विज्ञान	डॉ. अनन्त प्रकाश गुप्ता	आपका आरोग्य आपके हाथ में	देवेन्द्र वोरा
प्राकृतिक स्वास्थ्य एवं योग	डॉ. बृज भूषण गोयल	प्राकृतिक चिकित्सा एवं योग वैज्ञानिक प्रयोग	डॉ. नागेन्द्र कुमार नीरज

इकाई 9

कंकालीय पेशीय संस्थान एवं उसके रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा

(Skeletal muscular system & nature cure for its diseases)

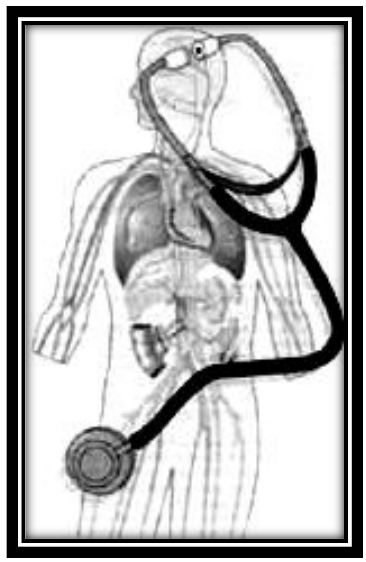

इकाई की रूपरेखा

9.1 उद्देश्य
9.2 प्रस्तावना
9.3 कण्डराएँ या टेण्डन्स (Tendons)
9.4 कण्डराकला या एपोन्यूरोसिस (Aponeuroses)
9.5 प्रावरणी या फैशिया (Fascia)
9.6 पेशियों का नामकरण
9.7 पेशियों का उद्गम एवं निवेशन (Origin and insertion of muscles)
9.8 पेशियों की बनावट (Architecture of muscles)
9.9 पेशियों के कार्य एवं गतियाँ
9.10 पेशी का संकुचन
9.11 प्रतिवर्त क्रिया
9.12 कंकालीय पेशीय संस्थान के रोगों की सूची

9.13 कंकालीय पेशीय संस्थान के प्रमुख रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा
9.14 सारांश
9.15 बोधात्मक प्रश्न
9.16 संदर्भ ग्रंथ

9.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्यनन के बाद आप निम्न जानकारी प्राप्त कर सकेगे -

- कण्डराएँ या टेण्डन्स (Tendons)
- कण्डराकला या एपोन्यूरोसिस (Aponeuroses)
- प्रावरणी या फैशिया (Fascia)
- पेशियों का नामकरण
- पेशियों का उद्गम एवं निवेशन (Origin and insertion of muscles)
- पेशियों की बनावट (Architecture of muscles)
- पेशियों के कार्य एवं गतियाँ
- पेशी का संकुचन
- प्रतिवर्त क्रिया
- कंकालीय पेशीय संस्थान के रोगों की सूची
- कंकालीय पेशीय संस्थान के प्रमुख रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा

9.2 प्रस्तावना

मानव शरीर का ढ़ाँचा अस्थियों से बना होता है , जिसमें अस्थियाँ लीवर की भाँति कार्य करती है , परन्तु पेशियाँ उन्हें गति करने की शक्ति प्रदान करती है। शरीर का सम्पूर्ण ढ़ाँचा ऐच्छिक (voluntary) या कंकालीय पेशियों (skeletal muscles) से ढँक्रा रहता है तथा ये जोड़ या संधि पर एक अस्थि को दूसरी अस्थि से जोड़े रहती है। पेशियों के सिकुडऩे पर अस्थियाँ मुड़ती एवं फैलती है तथा फैलने से सीधी हो जाती है। इन्हीं पेशियों से हमारा शरीर सुगठित रहता है तथा इस प्रकार ये पेशियाँ हमें खड़ा रहने , चलने-फिरने, दौडऩे, तैरने, कूदने, बैठने एवं वज़न उठाने आदि कार्यो में सहायता प्रदान करती है।

हमारे शरीर में लगभग 600 कंकालीय पेशियाँ (skeletal muscles) होती है , जिन्हें सामूहिक रूप से कंकालीय पेशीय संस्थान या तंत्र कहा जाता है। कंकालीय पेशियाँ (skeletal muscles)युवकों में उनके शरीर के कुल वज़न का लगभग 40-50 प्रतिशत तथा युवतियों में उनके शरीर के कुल वज़न का लगभग 30-40 प्रतिशत हिस्सा बनाती है।

कंकालीय पेशियाँ (skeletal muscles) अस्थियों , उपास्थियों, लिगामेंटों, त्वचा या अन्य पेशियों से टेंडन (tendons) और एपोन्यूरोसिस (aponeuroses) के द्वारा जुड़ी रहती है। इन पेशियों का प्रत्येक तंतु सार्कोलीमा नामक झिल्ली से ढँक्रा होता है। ये तंतु समूहों में संगठित होकर छोटे-छोटे, समान्तर बण्डल्स बनाते है, जिन्हें फेसीक्यूली कहते है। ये फेसीक्यूली एण्डोमाइसियम नामक संयोजी ऊतक (connective

tissue) की पतली परत से आच्छादित रहते है। बण्डल या फेसीक्यूली आपस में एक और मोटी मेम्ब्रेन पेरीमाइसियम से बँधे रहते है। यही शरीर में कंकालीय पेशियों (skeletal muscles) के समूह बनाते है , जो एपीमाइसियम नामक संयोजी ऊतक (रचना में एण्डोमाइसियम और पेरीमाइसियम के समान) से आच्छादित रहती है। सभी पेशियों को आस-पास की रक्तवाहिकाओं (blood vessels) से उचित मात्रा में रक्त मिलता है। आर्टिरियोल्स पेरीमाइसियम में केशिकाएँ फैली रहती है , जो एण्डोमाइसियम में तंतु के ऊपर फैली रहती है। रक्तवाहिकाएँ (blood vessels) एवं तंत्रिकाएँ पेशी में हाइलम (hilum) के समीप प्रवेश करते है।

अधिकाँश कंकालीय पेशियाँ बीच में माँसल और चौड़ी होती है, जिसे पेशी की बैली कहा जाता है तथा दोनों सिरों पर पतली होती है, जिन्हें टेण्डन्स (ह्लद्गठ्ठस्रशठ्ठह्य) कहा जाता है, जो अन्य ऊतकों से जुड़ते है।

9.3 कण्डराएँ या टेण्डन्स (Tendons)

पेशियों के सिरे टेण्डन या कण्डराएँ(tendons) कहलाती है, जो पेशियों को अस्थियों या उपास्थियों से जोड़ते है। ये सघन कोलेजन तंतुओं (packed collagen fibres) से बनी संयोजी ऊतक (connective tissue) की दृढ़ डोरी के समान रचनाएँ होती है, जो गहन फैशिया (deep fascia) या पेशी के चारों ओर स्थित एपीमाइसियम का विस्तार है। कैल्केनियल टेण्डन (tendon) शरीर में सबसे मोटा टेण्डन (tendon) है, जिसे सामान्यत: एकील्स टेण्डन (packed collagen fibres) कहा जाता है। यह पिण्डली की पेशी (gastrocnemius) को एड़ी की अस्थि (calcaneus) से जोड़ता है। टेण्डन्स में लचीलापन नहीं होता है, जिससे इनमें संकुचन नहीं होता है।

9.4 कण्डराकला या एपोन्यूरोसिस (Aponeuroses)

शरीर के कुछ भागों में जैसे- उदरीय भित्ति में, टेण्डन फैलकर एक चादर (flat sheet) का रूप धारण कर लेती है, जिसे एपोन्यूरोसिस (aponeuroses) कहा जाता है। यह विभिन्न पेशी आवरणों (muscle sheaths) एवं अस्थ्यावरण (periosteum) से प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से जुड़ी रहती है जैसे- हथेली की त्वचा के नीचे स्थित तंतुमय आवरण (fibrous sheath), जिसे पॉमर एपोन्यूरोसिस (palmar aponeumosis) कहा जाता है। ऐसे ही उदर भित्तियों के तंतु आपस में मिलकर नाभि के ऊपर एक नालीनुमा रचना बनाते है, जिसे लिनिया एल्बा (linea alba) कहते है, जिसे प्रत्यक्ष रूप से देखा जा सकता है।

9.5 प्रावरणी या फैशिया (Fascia)

यह कंकालीय पेशियों (skeletal muscles) को ढँक्ने वाला एवं उन्हें एक साथ बाँधे रखने वाला तंतुमय संयोजी ऊतक (fibrous connective tissue) का बना होता है , जिसे फैशिया कहते है। यह निम्र दो प्रकार का होता है-

1. उपास्थि या सुपरफिशियल : सुपरफिशियल फैशिया त्वचा की डर्मिस में गहराई में अवस्थित होती है तथा विशेषकर खोपड़ी , हथेलियों एवं तलुवों में पायी जाती है। यह शरीर के विभिन्न क्षेत्रों में अलग-अलग मोटाई की होती है। सामान्यत: सुपरफिशियल फैशिया ढ़ीले संयोजी ऊतकों की बनी होती है , जिसमें रक्त वाहिकाएँ , तंत्रिकाएँ, लसीका वाहिनियाँ तथा अनेक वसा कोशिकाएँ पायी जाती है। यह एक

रक्षात्मक परत उपलब्ध कराती है तथा त्वचा को गहराई में स्थित संरचनाओं के ऊपर उन्मुक्त रूप से गति करने में सहायता देती है।

2. गहन फैशिया : डीप फैशिया सुपरफिशियल फैशिया के नीचे स्थित रहती है , जो घने संयोजी ऊतक (dense connective tissue) की परतों से मिलकर बनी होती है और यह पेशियों को लपेटती है तथा उन्हें बाँधती है। इसमें रक्त वाहिकाएँ (blood vessels), तंत्रिकाएँ, लसीका वाहिनियाँ (lymph vessels) तथा कुछ मात्रा में वसा पायी जाती है।

9.6 पेशियों का नामकरण

सामान्यत: पेशियों के नाम उनकी आकृति, उनके तंतुओं की दिशा, पेशी की स्थिति तथा उनके कार्यो के अनुसार किये जाते है जैसे-

1. डेल्टॉइड पेशी (deltoid muscle) का नाम उसकी त्रिकोणीय या डेल्टा की आकृति के अनुसार होता है।
2. रेक्टस एब्डोमिनिस पेशी (rectus abdominis muscle) का नाम उसके तंतुओं की दिशा के अनुसार होता है।
3. ग्लूटियस मैक्जिमस पेशी (gluteus maximus muscle) का नाम उसकी लम्बाई लम्बी होने के अनुसार होता है।
4. ग्लूटियस मिनिमस पेशी (gluteus minimus muscle) का नाम उसकी लम्बाई छोटी होने के अनुसार होता है।
5. सुप्रास्पाइनेटस पेशी (supraspinatus muscle) का नाम उसका स्कैपुला के ऊपर अवस्थित होने के अनुसार होता है।
6. इंफ्रास्पाइनेटस पेशी (infraspinatus muscle) का नाम उसका स्कैपुला के नीचे अवस्थित होने के अनुसार होता है।
7. इसी प्रकार कुछ पेशियों का नाम उनके जुडने के स्थान(attachment sites) के अनुसार होता है जैसे- स्टर्नोहायॉइड पेशी (sternohyoid muscle) स्टर्नम एवं हायॉइड अस्थियों (hyoid bones) से जुड़ी होता है।
8. क्रिया या कार्य के अनुसार पेशियों को आकुंचिनी(flexor) एवं प्रसारक (extensor) कहा जाता है।

9.7 **पेशियों का उद्गम एवं निवेशन** (Origin and insertion of muscles)

एनाटॉमी में पेशियों के लिए उद्गम (origin) एवं निवेशन (insertion) शब्दों का प्रयोग किया जाता है। उद्गम (origin) का अर्थ पेशी का वह सिरा है जो संकुचन (contraction) के दौरान स्थिर रहता है। यह अस्थि के जिस स्थल से संलग्र रहता है , वह उद्गम स्थल (origin place) होता है अर्थात् अस्थि के उस स्थल से पेशी का उद्गम होता है।

निवेशन (insertion) का अभिप्राय पेशी के गतिशील सिरे से है अर्थात् अस्थि के उस स्थल पर पेशी का निवेशन (insertion) होता है। सामान्यत: पेशी का उद्गम (origin) अक्षीय कंकाल के अधिक समीप

तथा निवेशन (insertion) दूरस्थ जुड़ाव होता है। पेशियों की क्रिया के अनुसार इनके उद्गम (origin) एवं निवेशन (insertion) स्थल भी परिवर्तित हो जाते है। बाइसेप्स पेशी का उद्गम (origin) स्कैपुला अस्थि से होता है तथा निवेशन (insertion) रेडियस अस्थि की रेडियल ट्यूबरोसिटी पर होता है।

इस प्रकार स्कैपुला अधिक स्थिर स्थल तथा रेडियस अस्थि बाइसेप्स पेशी द्वारा बनी अधिक गतिशील स्थल होती है , परन्तु यदि कोई व्यक्ति किसी क्षैतिज डण्डे को हाथों से पकडक़र लटक जाय और फिर कोहनियों को मोड़ते हुए ऊपर उठ कर शरीर को बाहों के पास लाने की कोशिश करे तो इस गति में सहायता करने के लिए बाइसेप्स पेशी संकुचित होगी और तब यह उद्गम (origin) एवं निवेशन (insertion) के विपरीत होते कार्य करेगी। ऐसी अवस्था में रेडियस अधिक स्थिर स्थल हो जाती है तथा स्कैपुला गतिशील स्थल हो जाती है।

9.8 पेशियों की बनावट (Architecture of muscles)

कंकालीय पेशियों (skeletal muscles) के तंतु (fibre) छोटे-छोटे गुच्छों के समूह में होते है, जिन्हें कहा जाता है। इनमें तंतु (fibre) एक-दूसरे के समान्तर होते है। यद्यपि विभिन्न पेशियों में ये फेशिकिल्स (fascicles) अलग-अलग तरह से संगठित होते है , जो पेशी की गति की सीमा तथा शक्ति को सुनिश्चित करते है। यदि पेशी का मध्य भाग (belly) अधिक लम्बा है तो गति की सीमा भी अधिक होगी। यदि किसी पेशी में तंतुओं की संख्या अधिक है तो पेशी द्वारा शक्ति भी अधिक उत्पन्न होगी। फेशिकिल्स (fascicles) की व्यवस्था तथा उनके टेण्डन्स के जुड़ाव स्ट्रेप पेशी , तर्कुरूप या फ्यूजीफोर्म पेशी, पंख के समान या पीनेट पेशी तथा गोलाकार पेशी के रूप में होते है।

1. स्ट्रेप पेशी (Strap muscle)

इसके फेशिकिल्स (fascicles) लॉग एक्सिस के समानान्तर रहते है , गति की रेंज काफी होती है, परन्तु अधिक शक्तिशाली नहीं होती है जैसे- गर्दन की स्टर्नोहायॉइड पेशी (sternohyoid muscle), उदरीय भित्ति की रेक्टस एब्डोमिनिस पेशी (rectus abdominis muscle) ।

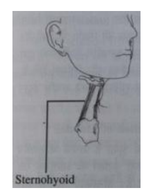

स्ट्रेप

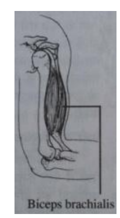

तर्कुरूप

2. तर्कुरूप या फ्यूजीफोर्म पेशी (Fusiform muscle)

यह तकले के आकार की होती है, इसका मध्य भाग मोटा होता है जैसे- बाँह की बाइसेप्स पेशी।

3. पंख के समान या पीनेट पेशी **(Pennate muscle)**

इसके छोटे फेशिकिल्स (fascicles) टेण्डन (tendon) के तिरछे कोण पर होते है अथवा पेशी की पूरी लम्बाई में टेण्डन (tendons) के साथ-साथ होते है। ये पंख के समान दिखती है। अधिकाँश फेशिकिल्स (fascicles) प्रत्यक्षत: टेण्डन्स (tendons) से जुड़ते है। सामान्यत: अन्य तरह की पेशियों की अपेक्षा ये अधिक शक्तिशाली होती है। ये तीन प्रकार की होती है-

3.1. यूनिपीनेट पेशी (Unipennate muscle) : इसमें टेण्डन (tendon) के एक ओर तिरछे फेशिकिल्स होते है जैसे- अंगूठें की फ्लेक्सर पॉलिसिस लोंगस पेशी(flexor policis longus muscle)।

3.2. बाइपीनेट पेशी (Bipennate muscle) : इसमें तिरछे फेशिकिल्स (fascicles) टेण्डन (tendon) के दोनों ओर होते है, जिससे टेण्डन (tendon) पर दोनों ओर से खिंचाव पड़ता है जैसे- टाँग की रेक्टस फीमोरिस पेशी (rectus fimoris muscle)l

3.3. मल्टीपीनेट पेशी (Multipennate muscle) : इसमें अनेकों तिरछे फेशिकिल्स (fascicles) कुछ टेण्डन्स (tendon) के साथ-साथ व्यवस्थित रहते है जैसे- कंधे की डेल्टॉइड पेशी(deltoid muscle)l

4. गोलाकार पेशी (Circular muscle)

इसमें फेशिकिल्स (fascicles) किसी छिद्र अथवा रचना के चारों ओर व्यवस्थित रहते है जैसे- मुँह की ऑर्बिकुलेरिस ओरिस पेशी (orbicularis oris muscle) तथा नेत्र की ऑर्बिकुलेरिस ओकुलाइ पेशी (orbicularis muscle)l

9.9 **पेशियों के कार्य एवं गतियाँ** (Actions and movements of muscles)

कंकालीय पेशियाँ (skeletal muscles) दो वर्गो में विभाजित रहती है- आंकुचनी तथा प्रसारक। ये दोनों एक-दूसरे के विपरीत कार्य करती है। अंगों को मोडऩे वाली पेशियाँ आंकुचनी तथा अंगों को फैलाने और सीधा करने वाली पेशियाँ प्रसारक होती है। किसी जोड़ में गति होने के लिए एक वर्ग की पेशियाँ संकुचित होती है, जबकि दूसरे वर्ग की पेशियाँ शिथिल होती है।

इन पेशियों की क्रियाओं से ही शरीर के विभिन्न अंगों में गति होती है , जिससे मनुष्य तरह-तरह के कार्य कर पाता है। सामान्यत: पेशियों में आंकुचन , प्रसारण , अपवर्तन , अभिवर्तन , घूर्णन तथा पर्यावर्तन (circumduction) गतियाँ होती है।

कंकालीय पेशियाँ (skeletal muscles) शरीर के विभिन्न भागों में गति लाने के लिए अकेले कार्य न करके समूहों में कार्य करती है। पेशियों का प्रत्येक समूह या वर्ग अन्य समूह (groups) के विपरीत कार्य करता है और उसका विरोधी (antagonist) कहलाता है। अविरोधी पेशियाँ (agonists शरीर के किसी भाग में गति लाने के लिए कार्यरत संकोचक पेशियाँ होती है, जबकि प्रतिरोधी पेशियाँ (antagonists) वे होती है, जो उनके विपरीत कार्य करती है। अपवर्तन पेशियाँ अभिवर्तक पेशियों की विरोधी होती है। कुछ पेशियाँ शरीर के अन्य भागों में गतियाँ होने के दौरान किसी भुजा के भागों को स्थिर रखने का कार्य करती है, जिन्हें स्थिरीकारक पेशियाँ (fixators) कहा जाता है। जब किसी गति को उत्पन्न करने के लिए दो या दो से अधिक पेशियाँ मिलकर यह कार्य करती है , तो ऐसी पेशियों को योगावाही पेशियाँ (synergists) कहा जाता है।

शरीर के किसी भी भाग में गति किसी एकल पेशी के कारण नहीं होती है। यहाँ तक कि साधारण गति भी प्राय: कई पेशियों की क्रिया द्वारा होती है, जैसे- पैंसिल उठाने के लिए अंगुलियों, अंगूठे, कलाई, कोहनी और सम्भवत: कंधे तथा धड़ की गति आवश्यक होती है, क्योंकि पैंसिल तक पहुँचने के लिए शरीर आगे की ओर झुकता है। इस क्रिया में भाग लेने वाली प्रत्येक पेशी को पर्याप्त रूप से संकुचित होना आवश्यक है तथा प्रत्येक गति को पूरी करने के लिए न सिर्फ सम्बन्धित पेशी का संकुचित होना आवश्यक है ,

अपितु विरोधी पेशी का शिथिल होना भी जरूरी है। कई पेशियों की इस सम्मिलित क्रिया को पेशीय समन्वय (muscle co-ordination) कहते है।

संवेदी तंत्रिकाएँ (sensory nervous) पेशीय संवेद (muscle sense) पैदा करते है। यह संवेद बहुत तीव्र नहीं होता है, केवल पेशी को संकुचन (contraction) और शिथिलन की जागरूकता भर देता है। यह जागरूकता ऐच्छिक (voluntary) होती है अर्थात् पेशी की इच्छानुसार शिथिल किया जा सकता है। सामान्य स्थिति में पेशी स्वयं ही कुछ तनी होती है, जिसे टोन (tone) कहते है। टोन ही के कारण पेशियाँ बिना थके एक-सी स्थिति में रहती है। यह क्रिया एक कार्य-प्रणाली पर आधारित है, जिसके द्वारा विभिन्न समूह के पेशिय तंतु (fibre) संकुचित और शिथिल होते है, जो प्रत्येक समूह को आराम एवं सक्रियता की अवधि प्रदान करती है।

9.10 **पेशी का संकुचन** (Contraction of muscle)

जैसा पहले बताया कि प्रत्येक कंकालीय पेशी में पेशी तंतुओं एवं संयोजी ऊतकों (connective tissue) के अतिरिक्त रक्त वाहिकाएँ (blood vessels) एवं तंत्रिकाएँ होती है। तंत्रिकाएँ पेशियों और केन्द्रीय तंत्रिका-तंत्र (central nervous system) के बीच सम्बन्ध स्थापित करती है। पेशियों में प्रेरक (motor) तथा संवेदी (sensory) दोनों प्रकार के तंत्रिका तंतु (nerve fibres) विद्यमान रहते है। संवेदी (sensory) तंत्रिका तंतुओं से होकर पेशी की अवस्था के विषय में आवेग (impulses) मस्तिष्क को संचारित होते है और प्रेरक (motor) तंत्रिकाओं द्वारा मस्तिष्क से आवेग (impulses) पेशी में पहुँचते है , जिससे वह पेशी संकुचित हो जाती है।

पेशीय तंतुओं को संकुचित होने के लिए ऊर्जा (energy) की आवश्यकता होती है और ये ऊर्जा (energy) आहार विशेषत: कार्बोहाइड्रेट्स (carbohydrates) के ऑक्सीकरण से प्राप्त होती है। पाचन के दौरान कार्बोहाइड्रेट्स (carbohydrates) ग्लूकोजन में परिवर्तित होते है। वैसे ग्लूकोज की शरीर को तुरन्त आवश्यकता नहीं रहती है , ग्लूकोजन में परिवर्तित हो जाता है और यकृत एवं पेशियों में संचित रहता है। पेशियों में संचित ग्लाकोजन पेशीय-क्रिया के लिए उष्मा एवं ऊर्जा (energy) का स्त्रोत होता है। ग्लाकोजन का ऑक्सीकरण होने पर कार्बन डाइऑक्साइड (CO_2) एवं जल (H_2O) बनते है तथा ऊर्जा (energy) से भरपूर एक यौगिक बनता है , जिसे एडिनोसिन ट्राइफॉस्फेट (ATP) कहते है। पेशी संकुचन (contraction of muscle) के लिए आवश्यक ऊर्जा ATP से प्राप्त होती है और यह यौगिक एडीनोसिन डाइफॉस्फेट (ADP) में परिवर्तित हो जाता है। ग्लाकोजन के ऑक्सीकरण के दौरान पाइरूविक अम्ल (pyruvic acid) बनता है।

यदि ऑक्सीजन पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हो तो पाइरूविक अम्ल (pyruvic acid) कार्बन डाइऑक्साइड और जल में विभाजित हो जाता है तथा इस प्रक्रिया के दौरान जो ऊर्जा (energy) मुक्त होती है, उसका उपयोग और अधिक एडिनोसिन ट्राइफॉस्फेट (ATP) बनने में होता है। यदि ऑक्सीजन की पर्याप्त मात्रा उपलब्ध न हो तो पाइरूविक अम्ल (pyruvic acid) लैक्टिक अम्ल (lactic acid) में परिवर्तित हो जाता है, जो एकत्रित होकर पेशीय थकावट (fatigue) पैदा कर देता है।

9.11 **प्रतिवर्त क्रिया** (Reflex action)

कार्टेक्स (cortex) शरीर की प्रत्येक क्रिया को नियंत्रित करता है। कार्टेक्स (cortex)की कोशिकाओं में उद्दीपन उत्पन्न होते रहते है और कोशिकाओं से निकलने वाले तंतुओं द्वारा पेशियों में आते है। पेशी के भी उद्दीपन मस्तिष्क के कार्टेक्स (cortex)को निरन्तर प्रसारित (extend) होते रहते है। मस्तिष्क से पेशी में आने वाले तंत्रिका तंतुओं को अपवाही तंतु (efferent fibres) कहते है। कुछ तंतु पेशी के उद्दीपन को मस्तिष्क में पहुँचाते है, उन्हें अभिवाही तंतु (afferent fibres) कहते है। शरीर की त्वचा, संधि या जोड़, पेशी या अन्य अंगों में जो भी उद्दीपन होता है , वह तंत्रिका-तंतु द्वारा कार्टेक्स (cortex) की कोशिकाओं में पहुँचता है। जिन तंत्रिकाओं के तंतुओं से होकर उद्दीपन मस्तिष्क को जाता है , उन्हें संवेदी तंत्रिका (sensory nervous) कहते है। जिन कोशिकाओं से निकलकर संवेग पेशी में पहुँचता है , उन्हें प्रेरक तंत्रिका (motor nervous) कहते है। संवेदी तंत्रिका (sensory nervous) द्वारा संवेग कार्टेक्स (cortex) में पहुँचता है और वहाँ से प्रेरक कोशिकाओं(motor cells) में संवेग उत्पन्न होता है।

स्पाइनल कॉर्ड में भी संवेदी एवं प्रेरक कोशिकाएँ (sensory or motor cells) रहती है। संवेदी कोशिकाएँ (sensory cells) स्पानल कॉर्ड के पोस्टीरियर हॉर्न में स्थित होती है और उनमें पोस्टीरियर नर्वरूट द्वारा संवेग पहुँचता रहता है। प्रेरक कोशिकाएँ (motor cells) एण्टीरियर हॉर्न में स्थित होती है। इनमें संवेग उत्पन्न होते है और तंतुओं द्वारा पेशियों में पहुँचते है। सामान्यत: कार्टेक्स (cortex) से प्रेरक (motor) संवेग उत्पन्न होकर पेशियों में पहुँचता है। फलस्वरूप पेशियाँ अपना कार्य करती है। कभी-कभी संवेग मस्तिष्क में न जाकर स्पाइनल कॉर्ड के पोस्टीरियर हॉर्न में पहुँचता है और वहाँ से एंटीरियर हॉर्न में पहुँचता है, जहाँ से पेशियों को प्रेरणा मिलती है। इस क्रिया को प्रतिवर्त-क्रिया कहते है।

9.12 **कंकालीय पेशीय संस्थान के रोगों की सूची**

क्र.	हिन्दी या संस्कृत नाम	English name	क्र.	हिन्दी या संस्कृत नाम
1.	माँसपेशियों की ऐंठन	Muscle cramps	4.	माँसपेशियों का कटना-फटना
2.	पार्किन्सन रोग	Parkinson’s disease	5.	माँसपेशियों में घाव
3.	पेशी वात	Muscular rheumatoid, Rheumatoid arthritis	6.	माँसपेशियों का गलना-सड़ना
			7.	माँसपेशियों में सूजन
			8.	माँसपेशियों का विकृत होना या सिकुड़ना
			9.	माँसपेशियों का दर्द
			10.	माँसपेशियों का ढ़िला हो जाना

9.13 **कंकालीय पेशीय संस्थान के प्रमुख रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा**

1. माँसपेशियों की ऐंठन Muscle cramps

कारण : विटामिन बी, डी एवं खनिज-लवण जैसे- कैल्शियम, पोटेशियम, मैग्रीशियम आदि का शरीर में अभाव हो जाना या इनका शरीर में आत्मसात नहीं होना। हार्मोन्स की समस्याओं से मानसिक तनावच , चिड़चिड़ापन आदि इस समस्या को पैदा कर जटिल बनाते है।

लक्षण : यह शरीर के किसी भी भाग में हो सकती है, ज्यादातर पैरों में यह समस्या पैदा होती है।

प्राकृतिक चिकित्सा : संतुलित भोजन करें। फल , सलाद, अंकुरित अनाज ज्यादा मात्रा में खायें। हरी पत्तेदार सब्जियों का रस व सूप पीयें। दूध, म_ा, तिल, नारियल, खुमानी लेवें।

गौमूत्र का सेवन करें।

कच्चे व खट्टे फल न खायें।

आँवले का मौसम हो तो उसका रस बनाकर पीयें।

गरम-ठण्ड़ी सेंक तथा मालिश करें।

2. पार्किन्सन रोग Parkinson's disease

परिचय : यह रोग अचानक पैदा नहीं होता। आलसी लोग इसके ज्यादा रोगी बनते है।

कारण : ऐसे रोगी को बचपन से ही कब्ज की समस्या होती है। अप्राकृतिक जीवन-शैली , नकारात्मक सोच एवं मानसिक तनाव रोग को पैदा करते है। नींद व डिप्रेशन की दवायें , विटामिन ई की कमी एवं नशीले पदार्थ रोग को जटिल बनाता है। दिमाग पर चोट लगने से भी समस्या हो जाती है।

लक्षण : यह दिमाग का चिरकालिक जीर्ण रोग है, जो अपना प्रभाव धीरे-धीरे डालता है। इसलिए इस रोग के सम्बन्ध में रोगी को बहुत बाद में मालुम चलता है। तब रोगी के हाथ-पैरों में कम्पन्न होना शुरू होता है। शुरूआत में यह समस्या कभी-कभार ही होती है , लेकिन बढ़ते-बढ़ते जटिल हो जाती है। अधिकाँश रोगी को लिखने में समस्या पैदा होती है जैसे- अस्पष्ट व टेढ़े-मेढ़े लिखना या लिखने में असमर्थ होना। बोलने व देखने में भी थोड़ी-थोड़ी समस्या पैदा होती है , क्योंकि जबड़ा, जीभ व आँखों की माँसपेशियों में भी कंपन होने लगता है। मुख से लार टपकती है। आवाज़ धीमी , लडख़ड़ाती, कंपकपाती, हकलाती एवं अस्पष्ट हो जाती है।

धीरे-धीरे ऐसा ही कंपन हाथ व पैरों में भी शुरू होता है , जिससे चलने में समस्या पैदा होती है। शरीर का संतुलन गड़बड़ा जाता है।

सोचने व समझने की क्षमता कम हो जाती है। इसलिए रोगी चुपचाप बैठे रहना ही पसन्द करता है, लेकिन उसका मानसिक चिंतन जटिल, विध्वंसक एवं नकारात्मक होता है। चिड़चिड़ा स्वभाव हो जाता है।

रोगी को पसीना बहुत आता है। रोगी को पेशाब करने व गर्दन मोडऩे में परेशानी होती है।

प्राकृतिक चिकित्सा : सप्ताहभर नीम्बू-पानी, नारियल पानी, फल-सब्जियों का रस व सूप पर रहने के बाद एक सप्ताह अपक्वाहार जैसे- फल-सब्जियाँ एवं अंकुरित अनाज लेवें।

प्रतिदिन तिल-गुड़, तिल का दूध, बकरी का दूध पीयें।

चाय, काफी, नशीली चीजें, नमक, डिब्बाबंद खाद्यों को न लेवें।

ध्यान करें, हल्के व्यायाम करें, गहरी श्वास-प्रश्वास के साथ टहलें।

सकारात्मक विचार व सोच बनाते हुए सदैव खुश-प्रसन्नचित्त रहने की कोशिश करें।

3. पेशी वात Muscular rheumatoid, Rheumatoid arthritis

परिचय : ऐसे रोगी को विशेषकर छोटे जोड़ों, अंगुलियों, कलाइयों, कुहनियों, घुटनों, टखनों आदि में दर्द, सूजन व अकडऩ होती है। ऐसे रोगी की उपास्थियों पर अपशिष्ट जमा होने से क्षतिग्रस्त हो जाती है। साथ

ही माँसपेशियों, कण्डराओं, कोशिकाओं एवं ऊतकों में विकृतियाँ पैदा होने से व्यक्ति धीरे-धीरे विकलांग बन जाता है। यह पुरूषों की अपेक्षा महिलाओं में अधिक होती है।

कारण : अप्राकृतिक जीवन-शैली के कारण शरीर में यूरिक एसिड़ का बाहरी निकास न होकर जोड़ों में जमना या संचित हो जाना इसका प्रमुख कारण है। अधिक प्राटीन युक्त भोजन करना, माँस, मछली, अण्ड़ा, दाले, मिलावटी दूध व दूध की बनी चीजें, नमक, मिर्च-मसाले एवं दवाओं के अधिकाधिक सेवन के कारण शरीर में अपशिष्ट ज्यादा बनकर बाहरी निकास को अवरूद्ध कर देता है।

कब्ज, गैस, श्रम व व्यायाम का अभाव रोग पैदा करने में सहायक है।

लक्षण : जोड़ों में दर्द, सूजन एवं अकडऩ आदि का ज्यादा असर मौसम में बदलाव आने पर होता है।

प्राकृतिक चिकित्सा : ऐसे रोगी उपवास, रसाहार, फलाहार से ही ठीक होते है।

सप्ताहभर पोटेशियम प्रधान फल-सब्जियाँ जैसे- अनानास, आँवला, संतरा, नीम्बू, खीरा, लौकी, ककड़ी, तरबूज, पत्तागोभी, पालक, सफेद पेठा आदि के रस को पीना चाहिए। जिससे शरीर में जमना या संचित यूरिक एसिड़ घुलकर शरीर से बाहर निष्कासित हो सकें।

फिर एक सप्ताह अपक्वाहार जैसे- मौसमानुसार फल-सब्जियों की सलाद व सूप लेवें।

प्रतिदिन तिल का दूध, बकरी का दूध, नारियल पानी, गेहूँ के ज्वारे का रस, कच्चे आलू का रस पीयें। पानी खूब पीयें। हो सके तो ताम्र कलश का पानी पीयें।

अंगूर व सीताफल खायें।

रात को भिगोई हुई अंजीर, मुनक्का, खुमानी प्रतिदिन खायें।

अंकुरित मेथी, शहद, खजूर, तिल-गुड़, हल्दी, लहसुन प्रतिदिन खायें।

अदरक व तुलसी का रस गर्म पानी के साथ पीयें।

सूर्य तप्त हरी बोतल का पानी 250 ग्राम सुबह-शाम लेवें। प्रभावित अंग पर लाल प्रकाश डालें। तेल में कपूर मिलाकर मालिश करें। सूजन की अवस्था में बर्फ की सेंक करें।

ऐसे रोगी को हर रोज कोई न कोई प्राकृतिक उपचार लेते रहना चाहिए जैसे- एनीमा, मिट्टी-पट्टी, कटिस्नान, मेहस्नान, धूपस्नान, सूखा घर्षण, गर्म पाद स्नान, गर्म पट्टी, गर्म सेंक, गर्म मिट्टी-पट्टी, एप्सम साल्ट बाथ, गरम-ठण्ड़ी सेंक आदि।

दालें, दूध, दही, गरिष्ठ भोजन, चाय, काफी, नशीली चीजें, नमक, डिब्बाबंद खाद्यों को न लेवें।

ध्यान करें, हल्के व्यायाम करें, गहरी श्वास-प्रश्वास के साथ टहलें, प्राणयाम करें, आसनों में विशेषकर भुजंगासन करें।

9.14 सारांश

शरीर के कुछ भागों में जैसे- उदरीय भित्ति में, टेण्डन फैलकर एक चादर (flat sheet) का रूप धारण कर लेती है , जिसे एपोन्यूरोसिस (aponeuroses) कहा जाता है। यह विभिन्न पेशी आवरणों (muscle sheaths) एवं अस्थ्यावरण (periosteum) से प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से जुड़ी रहती है जैसे- हथेली की त्वचा के नीचे स्थित तंतुमय आवरण (fibrous sheath), जिसे पॉमर एपोन्यूरोसिस (palmar aponeumosis) कहा जाता है। ऐसे ही उदर भित्तियों के तंतु आपस में मिलकर नाभि के ऊपर एक

नालीनुमा रचना बनाते है , जिसे लिनिया एल्बा (linea alba) कहते है, जिसे प्रत्यक्ष रूप से देखा जा सकता है।

कंकालीय पेशियाँ (skeletal muscles) अस्थियों, उपास्थियों, लिगामेंटों, त्वचा या अन्य पेशियों से टेंडन (tendons) और एपोन्यूरोसिस (aponeuroses) के द्वारा जुड़ी रहती है। इन पेशियों का प्रत्येक तंतु सार्कोलीमा नामक झिल्ली से ढँक़ा होता है। ये तंतु समूहों में संगठित होकर छोटे-छोटे, समान्तर बण्डल्स बनाते है, जिन्हें फेसीक्यूली कहते है। ये फेसीक्यूली एण्डोमाइसियम नामक संयोजी ऊतक (connective tissue) की पतली परत से आच्छादित रहते है। बण्डल या फेसीक्यूली आपस में एक और मोटी मेम्ब्रेन पेरीमाइसियम से बँधे रहते है।

9.15 बोधात्मक प्रश्न

1. कंकालीय पेशीय संस्थान किसे कहते है?
2. कंकालीय पेशियाँ शरीर के कुल वज़न का लगभग कितने प्रतिशत हिस्सा बनाती है।
3. कंकालीय पेशियाँ अस्थियों, उपास्थियों, लिगामेंटों, त्वचा या अन्य पेशियों से किसके द्वारा जुड़ी रहती है?
4. पेशियों का प्रत्येक तंतु किस झिल्ली से ढँक़ा होता है?
5. फेसीक्यूली किसे कहते है?
6. पेशी की बैली किसे कहते है?
7. पेशियों का नामकरण किस आधार पर किया गया है? समझाइये।
8. पेशियों का उद्गम एवं निवेशन से क्या अभिप्राय है?
9. निम्न पर टिप्पणी कीजिए-
    1. कण्डराएँ (Tendons) 4. फेशिकिल्स (Fascicles)
    2. कण्डराकला (Aponeuroses) 5. गैलीया एपोन्यूरोटिका (Galea aponeurotica)
    3. प्रावरणी (Fascia)
10. पेशियों की बनावट का वर्णन कीजिए?
11. पेशियों के कार्य एवं गतियाँ विस्तार से बताइये?
12. पेशी का संकुचन किस प्रकार होता है? समझाइये।
13. शरीर की प्रत्येक क्रिया को नियंत्रित कौन करता है?
14. अपवाही तंतु (Efferent fibres) किसे कहते है?
15. अभिवाही तंतु (Afferent fibres) किसे कहते है?
16. प्रतिवर्त क्रिया (Reflex action) को समझाइये?
17. कंकालीय पेशीय संस्थान के कोई पाँच रोगों के नाम बताइये?
18. माँसपेशियों की ऐंठन (Muscle cramps) के कारण व लक्षणों का वर्णन करते हुए प्राकृतिक

चिकित्सा बताइए?

19. पार्किन्सन रोग (Parkinson’s disease) के कारण व लक्षणों का वर्णन करते हुए प्राकृतिक चिकित्सा बताइए?

20. पेशी वात (Muscular rheumatoid, Rheumatoid arthritis)के कारण व लक्षणों का वर्णन करते हुए प्राकृतिक चिकित्सा बताइए?

9.15 सन्दर्भ ग्रन्थ

क्र	संदर्भ साहित्य	लेखक	क्र	संदर्भ साहित्य	लेखक
1.	जीव-विज्ञान भग-1	बी. एस. राम दास, देव ज्योति दास	27.	प्राकृतिक चिकित्सा एवं स्वास्थ्य	डॉ. महेन्द्र कुमार जाजपुरा
2.	जीव-विज्ञान भाग-2	ओसवाल ट्यूटोरियल	28.	मानव शरीर रचना एवं क्रिया-विज्ञान	डॉ. महेन्द्र कुमार जाजपुरा
3.	शरीर रचना एवं क्रिया-विज्ञान	डॉ. विमल कुमार मोदी	29.	रोग, उनके कारण, लक्षण एवं उपचार	डॉ. महेन्द्र कुमार जाजपुरा
4.	बिना दवा परफेक्ट हेल्थ	डॉ. बलराम पटेल	30.	प्राण शक्ति उपचार; प्राचीन विज्ञान कला	चौ. कोक सुई
5.	नवीन मेडिकल प्रवेश परीक्षा	नवीन ग्रुप ऑफ पब्लिकेशन्स्- इलाहाबाद	31.	जीवनी शक्ति कैसे जगायें	डॉ. चन्द्र दीप सिंह
6.	मानव शरीर रचना एवं क्रिया-विज्ञान	डॉ. अनन्त प्रकाश गुप्ता	32.	आपका आरोग्य आपके हाथ में	देवेन्द्र वोरा
7.	प्राकृतिक स्वास्थ्य एवं योग	डॉ. बृज भूषण गोयल	33.	प्राकृतिक चिकित्सा एवं योग वैज्ञानिक प्रयोग	डॉ. नागेन्द्र कुमार नीरज
8.	प्राकृतिक आयुर्विज्ञान	डॉ. राकेश जिन्दल	34.	जीवेम् शरद शतम्	पं. श्री राम शर्मा आचार्य वाङ्मय
9.	वृहद प्राकृतिक चिकित्सा	डॉ. ओ. पी. सक्सेना	35.	बिना औषधियों के कायाकल्प	पं. श्री राम शर्मा आचार्य
10.	स्वस्थवृत विज्ञान	प्रो. रामहर्ष सिंह	36.	निरोग जीवन का राज मार्ग	पं. श्री राम शर्मा आचार्य
11.	प्राकृतिक स्वास्थ्य शास्त्र	आचार्य शेषांद्रि स्वामीनाथन	37.	दीर्घ जीवन की प्राप्ति	पं. श्री राम शर्मा आचार्य

इकाई 10

लसीका संस्थान एवं उसके रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा

(Lymphatic system & nature cure for its diseases)

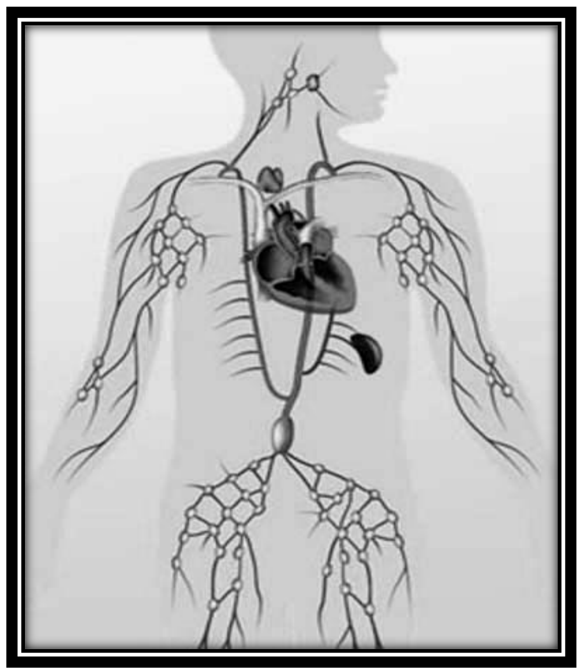

इकाई की रूपरेखा

10.1 उद्देश्य

10.2 प्रस्तावना

10.3 लसीकीय तंत्र या संस्थान

10.4 लसीका परिसंचरण (Circulation of lymph)

10.5 लसीका संस्थान के प्रमुख रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा

10.6 सारांश

10.7 बोधात्मक प्रश्न

10.8 संदर्भ ग्रंथ

10.1 उद्देश्य

1.	– लसीकीय तंत्र या संस्थान 1. – लसीका (Lymph) 1. लसीका उत्पत्ति (Origin of lymph) 2. लसीकीय केशिकाएँ एवं अन्य वाहिकाएँ (Lymphatic capillaries and other vessels) 3. लसीका परिसंचरण (Circulation of lymph) 4. लसीका पर्व (Lymph nodes) एवं उसके कार्य 2. – प्लीहा (Spleen) एवं उसके कार्य 3. – बाल ग्रंथि या थाइमस ग्रंथि (Thymus gland) 4. – टॉन्सिल या गलतुण्डिकाएँ (Tonsils) 1. फेरिंजियल टॉन्सिल (Pharyngeal tonsil) 2. पैलाटाइन टॉन्सिल (Palatine tonsil) 3. लिंग्वल टॉन्सिल (Lingual tonsil) 5. – पेयर की चित्तियाँ या पेयर्स पैचेज (Peyer's patches)
2.	– लसीका संस्थान के रोगों की सूची
3.	– लसीका संस्थान के प्रमुख रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा

10.2 प्रस्तावना

हृदवाहिकीय (cardiovascular) एवं लसीकीय संस्थान दोनों सम्पूर्ण शरीर में तरल (fluid) का प्रवाह करते है, लेकिन ये तरल (fluid) अलग-अलग तरह के होते है। लसीका संस्थान में न तो बंद परिपथ (closed circuit) होता है और न ही हृदय की भाँति केन्द्रीय पम्प। यह तो पतली भित्तियों वाली वाहिकाओं से बना एक जाल है , जो शरीर में रक्त वाहिनियों के समान सर्वत्र फैला रहता है। यह एक स्वच्छ, रंगहीन तरल (fluid) का वहन करता है। लसीकीय संस्थान निम्न चार मुख्य कार्यो को सम्पादित करता है-

1. यह सम्पूर्ण शरीर की कोशिकाओं के चारों ओर उपस्थित रहने वाली अंतरालीय तरल या द्रव (interstitial fluid) से अधिक जल एवं प्रोटींस को एकत्रित कर लेता है तथा इन्हें लसीका या लिम्फ (lymph) के रूप में रक्त प्रवाह में पहुँचा देता है।
2. यह छोटी आँत के आस-पास के ऊतकों से वसा(fat) को रक्त प्रवाह में पहुँचाता है।
3. यह सूक्ष्म जीवाणुओं एवं अन्य हानिकारक बाह्य पदार्थो को नष्ट करता है।
4. यह सूक्ष्म जीवाणुओं एवं अन्य बाह्य पदार्थो के प्रति दीर्घावधि रक्षा उपलब्ध करता है।

10.3 लसीकीय तंत्र या संस्थान

लसीका संस्थान के अंग निम्न रस ग्रंथियाँ है-

1. लसीका (lymph)
2. प्लीहा (Spleen)

3. बाल ग्रंथि या थाइमस ग्रंथि (Thymus gland)

4. टॉन्सिल या गलतुण्डिकाएँ (Tonsils)

5. पेयर की चित्तियाँ या पेयर्स पैचेज (Peyer's patches)

1. लसीका (Lymph)

लसीका (lymph) रक्त प्लाज्मा के समान स्वच्छ, पानी जैसा द्रव (fluid) होता है, जिसका संघटन (composition) अंतरालीय द्रव (interstitial fluid) के जैसा होता है, परन्तु इसमें प्लाज्मा की अपेक्षा प्रोटींस की मात्रा कम रहती है। ऊतकों में चयापचय (metabolism) के फलस्वरूप उम्पन्न होने वाले कुछ व्यर्थ पदार्थ जैसे- कार्बन डाइऑक्साइड, यूरिया आदि भी इसमें मिले रहते है। इसमें कुछ श्वेत रक्त कोशिकाएँ (leucocytes or WBCs) भी पायी जाती है, जो रक्त कोशिकाओं की पतली, छिद्रमय भित्तियों से प्रवेश कर जाती है। लसीका ग्रंथियों (lymph glands) में उत्पन्न लिम्फोसाइट्स भी बड़ी लसीका वाहिकाओं (lymph vessels) में पायी जाती है।

लसीका उत्पत्ति (Origin of lymph)

निलयी संकुचन (contraction) द्वारा उत्पन्न रक्त वाहिकाओं (blood vessels) के भीतर रक्त के हाइड्रोस्टैटिक दाब से जल, प्रोटींस की कुछ मात्रा विशेषकर एल्ब्यूमिन एवं अन्य पदार्थ केशिकाओं से रिसकर बाहर की तरफ ऊतक एवं कोशिकाओं के बीच के स्थान (interstitial space) में आ जाते है। यह द्रव पदार्थ अंतरालीय द्रव (interstitial fluid) कहलाता है। यह अंतरालीय द्रव (interstitial fluid) जीवित ऊतकों को भिगोकर रखता है तथा उनका पोषण करता है। ऊतकों को पोषण करने के उपरान्त उत्पन्न व्यर्थ पदार्थो जैसे- कार्बन-डाइऑक्साइड एवं यूरिया आदि भित्तियों को पार करके उनके भीतर पहुँच जाता है, लेकिन उसका कुछ भाग रक्त केशिकाओं में न जाकर लसीकीय केशिकाओं (lymphatic capillaries) में पहुँच जाता है, जो लसीका (lymph) कहलाता है और लसीकीय तंत्र द्वारा रक्त प्रवाह में चला जाता है।

लसीकीय केशिकाएँ एवं अन्य वाहिकाएँ **(Lymphatic capillaries and other vessels)**

लसीकीय तंत्र : प्रमुख लसीका वाहिकाएँ एवं पर्व

लसीकीय केशिकाओं (lymphatic capillaries) की संरचना कुछ-कुछ रक्त केशिकाओं से मिलती-जुलती है। रक्त केशिकाओं के समान ये भी एण्डोथीलियमी कोशिकाओं की केवल एक परत की बनी होती है, परन्तु इनकी भित्तियाँ अधिक पारगम्य होती है, जिससे अंतरालीय द्रव (interstitial fluid) के घटकों का अवशोषण कर लेती है तथा श्वेत रक्त कोशिकाएँ (leucocytes or WBCs) भित्तियों से होकर बाहर निकल जाती है। लसीकीय केशिकाएँ (lymphatic capillaries) ऊतकों की केशिकाओं के बीच जाल के समान फैली रहती है। इनमें स्वच्छ जल के समान पारदर्शी द्रव निरन्तर प्रवाहित होता है।

ये बंद सिरे वाली छोटी-छोटी नलियों के रूप में प्राय: सभी अंगों के अंतरालीय अवकाशों (interstitial spaces) से आरम्भ होती है।

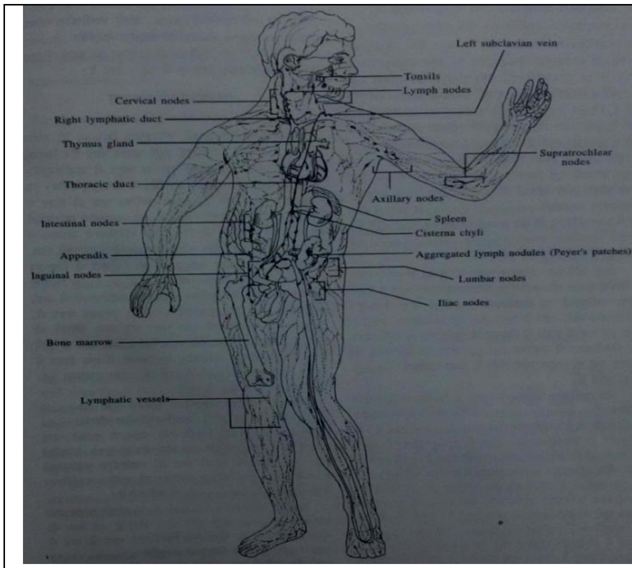

लसीकीय तंत्र : प्रमुख लसीका वाहिकाएँ एवं पर्व

केन्द्रीय स्नायविक संस्थान (central nervous system) एवं कार्निया में इनका अभाव रहता है। छोटी आँत की आंतरिक सतह पर स्थित अंकुरों (villi) में विशेष प्रकार की लसीकीय केशिकाएँ (lymphatic capillaries) पायी जाती है , जिन्हें दुग्ध वाहिकाएँ या लैक्टीयल्स (lacteals) कहा जाता है।

लैक्टीयल्स (lacteals) छोटी आँत से वसा (fat) को अवशोषित करती है तथा इसे सम्पूर्ण शरीर में वितरिण के लिए रक्त में पहुँचा देती है। लैक्टीयल्स (lacteals) में लसीका (lymph) वसा (fat) की उपस्थिति के कारण दूध के समान श्वेत होती है, जिसे काइल (chyle) कहा जाता है।

कई लसीकीय केशिकाएँ (lymphatic capillaries) आपस में मिलकर बड़ी संचयी वाहिकाएँ (collecting vessels) बनती है जिन्हें लसीकीय वाहिकाएँ (lymphatic vessels) या लिम्फेटिक्स (lymphatics) कहा जाता है। ये शिराओं से मिलती-जुलती होती है , परन्तु इनकी भित्तियाँ शिराओं की भित्तियों की अपेक्षा पतली होती है। इनमें शिराओं की भाँति अपेक्षाकृत अधिक संख्या में कपाट या वाल्व (valve) रहते है , जो लसीका (lymph) को पीछे की ओर प्रवाहित होने से रोकते है। लसीकीय वाहिकाएँ (lymphatic vessels) प्राय: रक्त वाहिकाओं (blood vessels) के समानान्तर रहने वाले संयोजी ऊतक (connective tissue) में पायी जाती है। शरीर के भीतर ये लसीकीय या लिम्फेटिक्स (lymphatics) उपरिस्थ (superficial) एवं गहन (deep) दो सेटों में व्यवस्थित रहती है तथा विभिन्न लिम्फ नोड्स (lymph nodules) में से होकर गुजरती है। त्वचा एवं अवत्वचीय ऊतकों (subcutaneous tissues) में उपरिस्थ (superficial) लसीकीय वाहिकाएँ उपरिस्थ (superficial vessels) शिराओं के साथ-साथ तथा गहन वाहिकाएँ (deep vessels), गहन शिराओं (deep vains) एवं धमनियों के साथ-साथ चलती है।

लसीकीय वाहिकाएँ (lymphatic vessels) एक-दूसरे से जुडक़र दो बड़ी नलिकाएँ (ducts) दायीं लसीकीय नलिका (right lymphatic duct) एवं वक्षीय नलिका (thoracic duct) बनाती है जो अपने-अपने लसिका को हृदय के ऊपर स्थित सबक्लेवियन शिराओं में उड़ेल देती है।

10.4 **लसीका परिसंचरण** (Circulation of lymph)

लसीकीय वाहिकाओं (lymphatic vessels) की रचना शिराओं के समान होती है तथा इनकी भित्तियाँ बहुत पतली होती है। शिराओं की तरह उनमें थोड़ी-थोड़ी दूरी पर बहुत से अद्र्धचंद्राकार कपाट (semilunar valve) होते है। ये कपाट (valve) इस तरह व्यवस्थित रहते है ताकि लसीका एक ही दिशा में निरन्तर प्रवाहित होता रहे। लसीका को लसीकीय वाहिकाओं (lymphatic vessels) में आगे को धकेलने के लिए रक्त परिसंचरण संस्थान में विद्यमान हृदय की भाँति कोई प्रभावशाली पम्प नहीं होता है, लेकिन बड़ी लसीकीय वाहिकाओं (lymphatic vessels) की भित्तियों में विद्यमान वृत्ताकार (circular) एवं लम्बवत् (longitudinal) चिकनी पेशियों की गति से लसीका लसीकीय वाहिकाओं (lymphatic vessels) में आगे को बढ़ती रहती है।

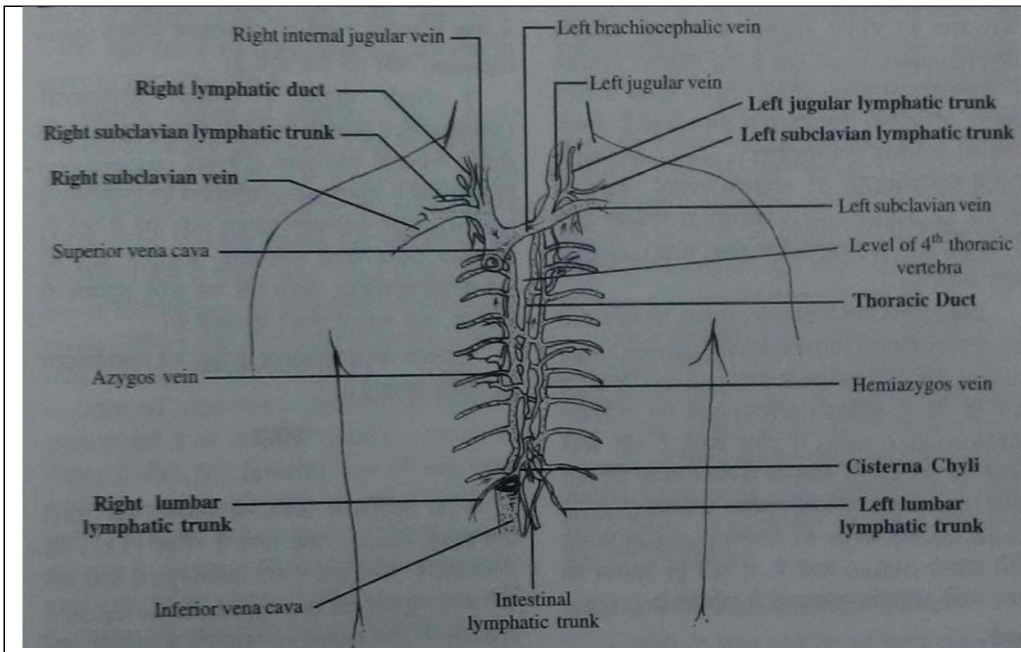

लसीका परिसंचरण (Circulation of lymph)

ऊतकीय तरल (fluid) का उत्पादन बढने पर श्वसन-तंत्र की पेशियाँ उसे शरीर के एक भाग से दूसरे भाग में पहुँचती है। लसीकीय वाहिकाओं (lymphatic vessels) में एक दिशा में खुलने वाले कपाट (valve) रहने के कारण लसीका पुन: पीछे को प्रवाहित नहीं हो पाती। समस्त लसीका वाहिकाएँ (lymph vessels) वक्षीय-गुहा (thoracic cavity) की ओर पहुँचती है। दायीं लसीकीय नलिका (right lymphatic duct) सिर, चेहरे और गर्दन के दाहिने भाग, दाहिनी ऊध्र्व भुजा, दाहिनी वक्ष और फेफड़ा, हृदय के दाहिने भाग तथा यकृत के ऊपरी भाग की लसीकीय वाहिकाओं (lymphatic vessels) द्वारा संचित लसीका को दायीं सबक्लेवियन शिरा में पहुँचाती है।

वक्षीय नलिका (thoracic duct) दायीं लसीकीय नलिका (right lymphatic duct) की अपेक्षा बड़ी और मोटी होती है, जो उदर के भीतर, डायाफ्राम के नीचे एक विस्फारित भाग के रूप में आरम्भ होती है जिसे सिस्टर्ना काइलि (cistern chyli) कहते है। यहाँ से यह नलिका डायाफ्राम के महाधमनी-छिद्र (aorta holl) से होकर ऊपर को हृदय के पीछे स्थित मीडियास्टाइनम में होती हुई गर्दन के आधार में

बायीं ओर पहुँचती है। यहाँ पर यह सिर और गर्दन से आने वाली बायीं जगुलर शिरा के मुख्य भाग, बायीं ऊपरी भुजा से आने वाली बायीं सबक्लेवियन शिरा के मुख्य भाग (left subclavian trunk) तथा वक्ष एवं इससे सम्बन्धित भागों से आने वाली अन्य लसीकीय वाहिकाओं (द्य4द्वश्चद्धड्डह्लद्वष् 1द्गह्यह्यद्गद्यह्य) से जुड़ती है। अंतत: वक्षीय नलिका (thoracic duct) बायीं सबक्लेवियन शिरा में खुलती है और लसीका (lymph) को रक्त में पहुँचा देती है।

इस प्रकार लसीकीय नलिकाएँ (lymphatic duct) दायीं और बायीं सबक्लेवियन शिरा में खुलकर निरन्तर रक्त प्रवाह में लसीका (lymph) को मिलती रहती है।

लसीका पर्व (Lymph nodes)

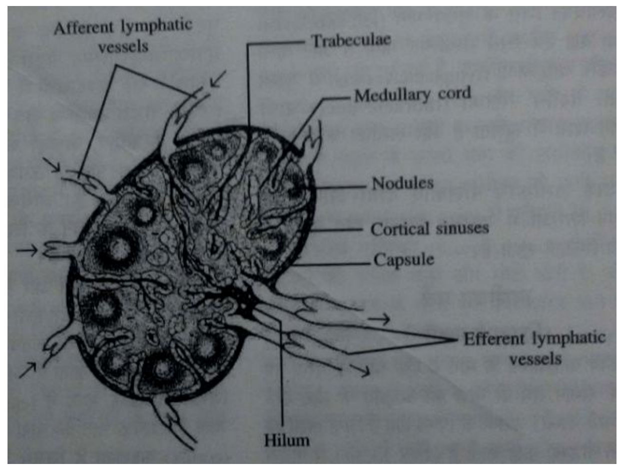

लसीका पर्व की काट (A section of lymph node)

लसीकीय वाहिकाओं (lymphatic vessels) के मार्ग में एक धागे में पिरोए हुए मनकों के समान सेम के बीज की आकृति के छोटे-छोटे लगभग 1 से 25 मिमी. लम्बे ऊतक के पिण्ड होते है, जिन्हें लसीका पर्व कहा जाता है। ये पर्व मुख्य रूप से गर्दन, बगल, वक्ष, उदर एवं पेट और जाँघ के बीच उरूसंधियों (groins) में अधिक संख्या में तथा कोहनी एवं घुटनों के जोड़ के पीछे कम संख्या में पाए जाते है। सुपरफीशियल लिम्फ नोड्स (lymph nodules) त्वचा के समीप गर्दन, बगल या काखों एवं उरूसंधि (groin) क्षेत्र के भीतर गहराई में, लम्बर वर्टिब्री के समीप, फेफड़ों के आधार पर, छोटी आँतों के आस-पास के ऊतकों या मीसेंट्री में एवं यकृत में अवस्थित रहते है। अधिकाँश लसीका रक्त प्रवाह में वापस पहुँचने के लिए कम से कम एक लसीका पर्व से होकर गुजरता है।

लसीका पर्व चारों ओर से तंतुमय संयोजी ऊतक (fibrous tissue connective tissue) के एक कैप्सूल से आच्छादित होती है। कैप्सूल से लसीका पर्व के केन्द्र की ओर संयोजी ऊतक(connective tissue) के प्रवर्ध, जिन्हें तंतुबंध (trabeculae) कहा जाता है, अंदर की ओर निकले होते है, जिससे नोड कई भागों में (compartments) विभाजित हो जाता है। प्रत्येक भाग का बाह्य भाग लिम्फ नोड(lymph nodules) का कॉर्टेक्स (cortex) कहलाता है, जिसमें लिम्फोसाइट्स घने (dense) गुच्छों में विद्यमान रहती है, जिन्हें लिम्फ नोड्यूल्स (lymph nodules) कहा जाता है। प्रत्येक नोड्यूल के मध्य में जर्मिनल केन्द्र (germinal center) होता है, जहाँ कोशिका विभाजन से लिम्फोसाइट्स उत्पन्न होते है। लिम्फ नोट्स प्रतिदिन लगभग 10 बिलियन लिम्फोसाइट्स उत्पन्न करते है। लिम्फ नोड(lymph nodule) का आंतरिक भाग मेड्यूला (medulla) कहलाता है, जिसमें लिम्फोसाइट्स की रस्सीनुमा रचनाएँ, मेड्यूलरी कॉडर्स (medullary cords) नोड्यूल से निकली रहती है, जो एक-दूसरे से लिपटकर एक ढ़ीला, स्पंजी (reticular) जाल बनाती है।

प्रत्येक लिम्फ नोड (lymph nodules) में लसीका को लाने वाली चार या पाँच अभिवाही लसीकीय वाहिकाएँ (afferent lymph vessels) होती है, जो कैप्सूल के उत्तल (convex) किनारी से होती हुई नोड के अपेक्षाकृत कोशिका-मुक्त क्षेत्र, कॉर्टिकल साइनस (cortical sinus) में प्रवेश करती है और अपने लिम्फ को छोड़ देती है। साइनसेस से होकर लिम्फ धीरे-धीरे छनता या निस्यन्दन (filter) है तथा अपवाही लसीका वाहिकाएँ (efferent lymph vessels) कैप्सूल की अवतल (concave) किनारी, जिसे हाइलम (hilum) कहते है, इससे होती हुई लसीका को वहन करके लसीकीय नलिकाओं (lymphatic ducts) में पहुँचती है।

लसीका पर्व के कार्य

1. लसीका पर्व फिल्टर या छलनी का कार्य करती है। इन नोड्स में पहुँचा लिम्फ छन जाता है, जिससे ये बाह्य हानिकारक पदार्थ एवं रोगोत्पादक जीवाणु(micro organism) आदि को रोक लेती है।

2. लसीका पर्व में लसीका कोशिकाओं, विशेष रूप से बी-लिम्फोसाइट्स की उत्पत्ति होती है तथा इनमें वृहत्भक्षक कोशिकाएँ (macrophages) विद्यमान रहती है, जिनसे उत्पन्न एण्टीबॉडीज एवं एंटीटॉक्सिंस (antitoxins) द्वारा रोगोत्पादक जीवाणु (micro organism) आदि नष्ट हो जाते है। इस प्रकार लिम्फ नोड्स (lymph nodules) रोगोत्पादक जीवाणुओं आदि को रक्त में जाने से रोककर अथवा उन्हें नष्ट करके संक्रमण को शरीर के अन्य भागों में फैलने से रोकती है।

3. लसीका पर्व परिसंचरण के लिए नये लिम्फोसाइट्स का निर्माण करती है।

2. प्लीहा **(Spleen)**

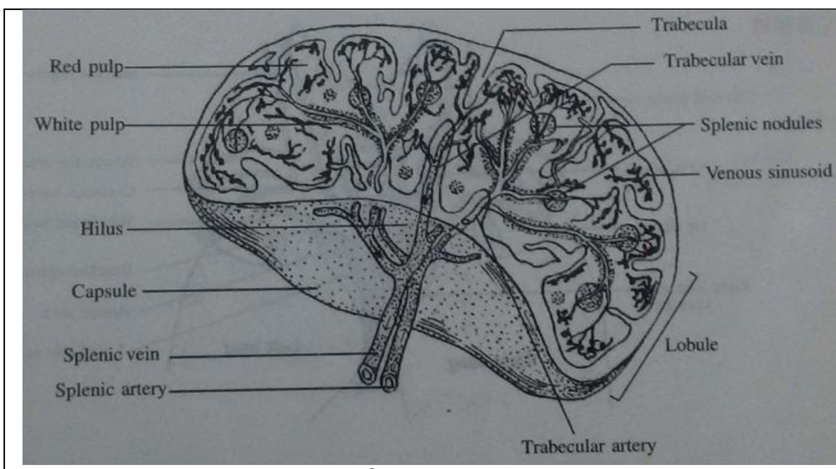

प्लीहा (Spleen)

प्लीहा लसीकाभ ऊतक से निर्मित एक चपटी दीर्घायताकार (oblong) बड़ी ग्रंथि है। यह नलिकाविहीन ग्रंथि है तथा उदरीय गुहा (abdominal cavity) में बायीं ओर बाएँ अध:पर्शुकीय क्षेत्र (left hypochondriac region) में डायाफ्राम के नीचे, आमाशय के फण्डस, बाएँ वृक्क, पैंक्रियाज की पुच्छ एवं बड़ी आँत के प्लीहज बंक (splenic flexure) को स्पर्श करती हुई स्थित रहती है।

इसका आकार एवं आकृति लगभग एक बंद मुट्ठी के समान होती है जो एक सामान्य व्यक्ति में औसतन 12 सेमी. लम्बी, 7 सेमी. चौड़ी एवं 2.5 सेमी. मोटी होती है तथा वज़न में लगभग 200 ग्राम होता है। इसका रंग गहरा बैंगनी होता है। प्लीहा के एंटीरियर एवं पोस्टीरियर दो किनारे तथा दो सतह होती है। एक सतह उत्तल (convex) होती है, जो डायाफ्राम के नीचे स्थित होती है। दूसरी सतह अवतल (concave)

होती है, जो आमाशय के फण्डस, बाँए वृक्क, पैंक्रियाज एवं प्लीहज बंक (splenic flexure) के सम्पर्क में होती है। अवतल (concave) सतह के नीचे की ओर एक हाइलम (hilum) होता है, जिससे होकर प्लीहज धमनी (splenic artery), तंत्रिकाएँ एवं लसीका वाहिकाएँ (lymph vessels)) प्लीहा में प्रवेश करती है तथा प्लीहज शिरा (splenic vein इससे बाहर की ओर निकलती है।

प्लीहा की ऊतक संरचना लिम्फोसाइट्स की संरचना के समान ही होती है , जो चारों ओर से संयोजी ऊतक (connective tissue) के एक कैप्सूल से ढ़ँकी होती है जिससे अंदर की ओर निकले तंतुबंधों (trabeculaes) से प्लीहा कई भागों में (compartments) विभाजित हो जाती है। इन विभक्त भागों को खण्ड या लोब्यूल्स (lobules) कहा जाता है। मेडय़ूला के क्रियात्मक भाग में एक कोशिकीय पदार्थ रहता है, जिसे प्लीहज लुगदी (splenic pulp)) कहते है, यह निम्र दो तरह का होता है-

लाल लुगदी (red pulp) सम्पूर्ण प्लीहा में प्रचुर मात्रा में रहता है , जिसमें सफेद लुगदी के छोटे-छोटे द्वीपसमूह बिखरे रहते है। सफेद लुगदी (whit pulp) प्लीहज धमनी (splenic artery) की छोटी-छोटी शाखाओं के चारों ओर लिम्फोसाइट्स के घने पिण्डों (compact masses) की बनी होती है तथा जो अंतरालों में होते है, इन पिण्ड को प्लीहज पर्विकाएँ या स्प्लीनिक नोडय़ूल्स (splenic nodules) अथवा मैल्पीघीयन कार्पल्स (malpighian corpuscles) कहा जाता है।

लाल लुगदी के भीतर रक्त से भरे हुए शिरीय विवर (venous sinusoids) होते है तथा इनमें मोनोसाइट्स एवं वृहत्भक्षक कोशिकाएँ (macrophages) रहती है। इनमें से मोनोसाइट्स रक्त प्रवाह के लिए श्वेत रक्त कोशिकाओं (leucocytes or WBCs) के निर्माण में सहायता करती है तथा भक्षक कोशिकाएँ (macrophages) या फैगोसाइट्स (phagocytes) टूटने वाली लाल रक्त कोशिकाओं का भक्षण करके उन्हें विखण्डित कर देती है।

प्लीहज धमनी (splenic artery) की शाखाएँ प्लीहा में पहुँचकर रक्त को सीधे प्लीहज लुगदी (splenic pulp) में डालती है। प्लीहा में केशिकाएँ नहीं होती है , जिससे रक्त प्लीहा की कोशिकाओं के सीधे सम्पर्क में आता है और शिरीय विवरों (venous sinusoids) में संचित होता है। यहाँ से रक्त प्लीहज शिरा (splenic vein) की शाखाओं में चला जाता है , जिनके आपस में मिलने से प्लीहज शिरा (splenic vein) बनती है। यह प्लीहज शिरा (splenic vein) पोर्टल शिरा (portal vein) से मिल जाती है।

प्लीहा के कार्य

1. प्लीहा का मुख्य कार्य रक्त को छानना या निस्यन्दन (filter) तथा भक्षक कोशिकाओं (macrophages) जैसे- लिम्फोसाइट्स और मोनोसाइट्स का निर्माण करना है।

2. प्लीहा में विद्यमान प्रचुर संख्या में भक्षक कोशिकाएँ(macrophages) रक्त से क्षय प्राप्त (damaged) या मृत लाल कोशिकाओं (erythrocytes) एवं प्लेटलेट्स , सूक्ष्म जीवाणुओं तथा अन्य कोशिकीय कचरे (debris) को हटाने में सहायता करती है। भक्षक कोशिकाएँ (macrophages) जीर्ण लाल रक्त कोशिकाओं के हीमोग्लोबिन से आयरन को भी हटाती है तथा अस्थि-मज्जा (bone marrow) में लाल रक्त कोशिकाओं के उत्पादन के लिए इसे परिसंचरण में लौटा देती है। हीमोग्लोबिन के टूटने से बिलिरूबिन पिगमेंट का उत्पादन होता है, जो यकृत में परिसंचरित होता है।

3. प्लीहा के रक्त में विद्यमान एंटीजंस लिम्फोसाइट्स को क्रियाशील बनाकर कोशिकाओं में विकसित होते है तथा एंटीबॉडीज का निर्माण करते है।

4. भ्रूणावस्था में प्लीहा लाल रक्त कोशिकाओं का निर्माण करती है। बाद में यह ताजी बनी लाल रक्त कोशिकाओं एवं प्लेट्लेट्स को संचयित (store) रखती है तथा आवश्यकता पडने पर इन्हें रक्त प्रवाह में छोड़ती है।

5. प्लीहा रक्त के भण्डार (reservoir) का काम करती है।

3. बाल ग्रंथि या थाइमस ग्रंथि (Thymus gland)

थाइमस ग्रंथि वक्ष में मीडियास्टाइनम के ऊपरी भाग में स्टर्नम के पीछे स्थित चपटे लसीकाभ ऊतक से निर्मित गुलाबी-भूरे रंग की एक नलिकाविहिन ग्रंथि होती है।

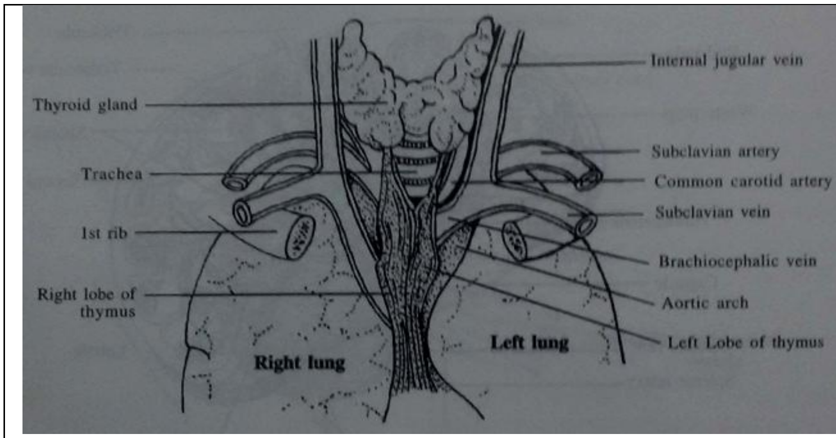

थाइमस ग्रंथि (Thymus gland)

यह हृदय एवं इसकी मुख्य रक्त वाहिकाओं (blood vessels) के ऊपर रहती है। इसके दाएँ-बाएँ दो खण्ड (lobes) होते है , जो आपस में संयोजी ऊतक (connective tissue) द्वारा जुड़े होते है तथा संयोजी ऊतक (connective tissue) के एक कैप्सूल में बंद रहते है। प्रत्येक खण्ड तंतुबंधों (trabeculaes) द्वारा छोटे-छोटे खण्ड़ों (lobules) में विभाजित रहता है।

प्रत्येक खण्डक या लोब्यूल में बाहर की ओर कॉर्टेक्स (cortex) तथा अंदर केन्द्र में मेड्यूला (medulla) होता है। कॉर्टेक्स (cortex) में अनेकों छोटे-छोटे लिम्फोसाइट्स रहते है, जिन्हें प्राय: थ्रॉम्बोसाइट्स कहा जाता है। जिनमें से अधिकाँश लिम्फोसाइट्स थाइमस ग्रंथि से निकलने के पूर्व विघटित (degenerate) हो जाते है।

थाइमस ग्रंथि के अंदर केवल केशिकाएँ (capillaries) होती है। मेड्यूला (medulla) में इयोसिनोफिलिक कॉर्पस्किल्स (eosinophilic corpuscles), जिन्हें थाइमिक कॉर्पस्किल्स (thymic corpuscles) या हैसल्स कॉर्पस्किल्स (hassall's corpuscles) कहा जाता है, इसमें पायी जाती है। इन कॉर्पस्किल्स या कोशिकाओं के केन्द्र पर काचाभ (hyaline) पदार्थ रहता है जो चारों ओर से चपटी एपीथीलियल कोशिकाओं के साथ संयोजी ऊतक (connective tissue) के घेरे से घिरा रहता है अर्थात् जाल-सा बना होता है।

भ्रूणावस्था में थाइमस ग्रंथि लिम्फोसाइट्स का उत्पादन करती है तथा एंटीबॉडीज बनाने में सहायता करती है। जन्म के समय थाइमस ग्रंथि अपेक्षाकृत बड़ी होती है लगभग 12 से 15 ग्राम वज़न की , नवजात शिशु में एंटीबॉडीज बनाती है तथा रोगक्षमता या इम्यूनिटी संस्थान के प्रारम्भिक विकास में

महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। इसका आकार जन्म से लेकर यौवनारम्भ (puberty) तक बढ़ता रहता है तथा बाल्यावस्था और वयस्क होने से पूर्व की आयु में यह अधिक सक्रिय होती है।

4. टॉन्सिल या गलतुण्डिकाएँ (Tonsils)

टॉन्सिल संयोजी ऊतक (connective tissue) के एक कैप्सूल में बंद लसीकाभ ऊतक के पिण्ड होते है ये निम्र तीन प्रकार के होते है-

1. फेरिंजियल टॉन्सिल **(Pharyngeal tonsil)** : यह नाक के पीछे ग्रसनी की ऊपरी पश्च भित्ति में स्थित रहता है। इसे लुस्चकाज टॉन्सिल (Luschka's tonsil) एवं एडीनॉयड्स (adenoids) भी कहते है।

2. पैलाटाइन टॉन्सिल **(Palatine tonsil)** : यह ग्रसनी के दोनों ओर गलतोरणिका (fauces) के स्तम्भों के बीच या टॉन्सिलर फोसा में स्थित रहते है।

3. लिंग्वल टॉन्सिल **(Lingual tonsil)** : यह जिह्वा की मूल पर स्थित रहता है।

टॉन्सिल्स में अभिवाही लसीकीय वाहिकाओं (afferent lymphatic vessels) का अभाव रहता है, जो इन्हें लिम्फ नोड्स (lymph nodules) से अलग करता है। टॉन्सिल्स की अपवाही लिम्फेटिक्स (efferent lymphatics) लसीका (lymph) में अनेकों लिम्फोसाइट्स पहुँचाती है। ये लिम्फोसाइट्स टॉन्सिल्स तथा शरीर के अन्य भागों में आक्रमण करने वाले सूक्ष्म जीवाणुओं को नष्ट करने में समर्थ होती है।

टॉन्सिल्स के साथ मिलकर ये लसीकाभ ऊतक का एक बेण्ड बनाती है, जो पाचन एवं श्वसन संस्थानों के ऊपरी प्रवेश स्थलों पर स्थित रहता है , जहाँ से बाह्य पदार्थ सहज ही प्रवेश कर सकते है। अधिकाँश संक्रामक सूक्ष्मजीवाणु ग्रसनी की सतह पर लिम्फोसाइट्स द्वारा नष्ट कर दिये जाते है। टॉन्सिल्स के भीतर प्लाज्मा कोशिकाओं की उपस्थिति एंटीबॉडीज के निर्माण को इंगित करती है। यद्यपि टॉन्सिल्स प्राय: संक्रमण रोकने का कार्य करते है, परन्तु ये स्वयं भी संक्रमित हो सकते है। ऐसे मामलों में कुछ चिकित्सक इनके उच्छेदन (removal) यानि इनको निकलवाने की सलाह देते है।

5. पेयर की चित्तियाँ या पेयर्स पैचेज **(Peyer's patches)**

पेयर की चित्तियाँ समूहों में पाये जाने वाली लिम्फ नोड्यूल्स (Aggregated lymph nodules) है। ये लसीकाभ ऊतक गुच्छों के रूप में बिना कैप्सूल के टॉन्सिल्स , छोटी आँत एवं एपेण्डिक्स (appendix) में पाये जाते है। इन्हीं के समान ऊतक के गुच्छे श्वसन-पथ की ब्रोंकाई के साथ पाये जाते है।

समूहों में एकत्रित लिम्फ नोड्यूल्स (lymph nodules) प्लाज्मा कोशिकाओं का उत्पादन करते है और आँत में विद्यमान एंटीजन की अनुक्रिया में अधिक मात्रा में एंटीबॉडीज स्त्रावित करते है।

लसीका संस्थान के रोगों की सूची

क्र. हिन्दी या संस्कृत नाम

1. लसीका ग्रंथियों में सूजन या गिल्टी
2. मवादीत गिल्टियाँ
3. यौन रोगों में गिल्टियाँ
4. फाइलेरिया की गिल्टियाँ

5. गल ग्रंथि की सूजन (Tonsillitis)

10.5 लसीका संस्थान के प्रमुख रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा

1. लसीका ग्रंथियों की गिल्टियाँ

परिचय, कारण एवं लक्षण : जब लसीका पर्व में अपशिष्ट जमा होने पर सूजन आ जाती है , तो बाहर से स्पष्ट उभार दिखाई देता है कि त्वचा के भीतर कोई गाँठ या गिल्टी हो गई है। ये अनेक प्रकार की होती है, जो निम्न है-

1. आमतौर पर ये हाथ-पैरों और मुँह में होती है। चोट लगने, अल्सर या छाले होने पर संक्रमण के कारण बुखार की शिकायत भी रहती है।

2. यौन संक्रमण के दौरान भी सिफलिस नामक बैक्टीरिया से पैदा हुई गिल्टियाँ दबाने पर दबती है। ये लिंग, आँख, होठ, ऊँगलियाँ एवं स्तन पर और आस पास पैदा होती है। जब इसमें मवाद पैदा हो जाता है तो बैक्टीरिया के संक्रमण के कारण वह स्थान सूजकर लाल हो जाता है और दर्द करता है। इसका समय पर समाधान नहीं करने पर परिणाम बढ़ता है , अंधापन, पागलपन, बहरापन पैदा होकर अधमरा सा हो जाता है और कभी-कभी तो रोगी की मृत्यु भी हो जाती है।

3. यक्ष्मा (टी.बी.) रोग में रबर जैसी सख्त और उलझी हुई गिल्टियाँ होती है।

4. कैंसर से हुई गिल्टियाँ पत्थर जैसी सख्त होती है।

5. एलर्जी के दौरान हुई गाठें कुछ समय के बाद ठीक हो जाती है, वे गिल्टियाँ नहीं होती है।

6. फाइलेरिया के बुखार में होने वाली गिल्टियाँ बगल में पैदा होती है। बुखार ठीक होने के बाद भी ये गिल्टियाँ बनी रहती है।

प्राकृतिक चिकित्सा : ऐसे रोगी को जल्द ही प्राकृतिक भोजन (विशेषकर गेहूँ के ज्वारे का रस) पर आ जाना होता है। जहाँ भी ये गिल्टियाँ पैदा हुई हो वहाँ हल्की मालिश करके चन्दन का लेप या चिकनी मिट्टी का लेप करना चाहिए। सप्ताह में दो-तीन बार पूरे शरीर पर मिट्टी का लेप 50-60 मिनट के लिए करना चाहिए। ऐसे रोगी को आराम भी करना आवश्यक है।

रोगी को हर समय अपने शरीर की आंतरिक व बाहरी साफ-सफाई पर विशेष ध्यान रखना होता है। उसके लिए प्राकृतिक उपचार जैसे- 20 मिनट का भाप स्नान , पूरे शरीर की चादर लपेट , एनीमा, नीम व फिटकरी के पानी से नहाना और जननांगों को धोना एवं पूरे शरीर का स्पंज स्नान करना।

प्रभावित अंगों पर धूप में नीला प्रकाश देना। अपने कपड़े व बिस्तर को रोज धूप दिखाना तथा दूसरों उपयोग न करने देना। सहवास से दूर रहना।

फल-सब्जियों के रस व नारियल पानी पर उपवास करना चाहिए।

10.6 सारांश

लसीका संस्थान में न तो बंद परिपथ (closed circuit) होता है और न ही हृदय की भाँति केन्द्रीय पम्प। यह तो पतली भित्तियों वाली वाहिकाओं से बना एक जाल है, जो शरीर में रक्त वाहिनियों के समान सर्वत्र फैला रहता है। यह एक स्वच्छ, रंगहीन तरल (fluid) का वहन करता है।

लसीका (lymph) रक्त प्लाज्मा के समान स्वच्छ , पानी जैसा द्रव (fluid) होता है , जिसका संघटन (composition) अंतरालीय द्रव (interstitial fluid) के जैसा होता है, परन्तु इसमें प्लाज्मा की अपेक्षा प्रोटींस की मात्रा कम रहती है। ऊतकों में चयापचय (metabolism) के फलस्वरूप उम्पन्न होने वाले कुछ व्यर्थ पदार्थ जैसे- कार्बन डाइऑक्साइड , यूरिया आदि भी इसमें मिले रहते है। इसमें कुछ श्वेत रक्त कोशिकाएँ (leucocytes or WBCs) भी पायी जाती है , जो रक्त कोशिकाओं की पतली , छिद्रमय भित्तियों से प्रवेश कर जाती है। लसीका ग्रंथियों (lymph glands) में उत्पन्न लिम्फोसाइट्स भी बड़ी लसीका वाहिकाओं (lymph vessels) में पायी जाती है।

लसीकीय वाहिकाओं (lymphatic vessels) की रचना शिराओं के समान होती है तथा इनकी भित्तियाँ बहुत पतली होती है। शिराओं की तरह उनमें थोड़ी-थोड़ी दूरी पर बहुत से अर्द्धचंद्राकार कपाट (semilunar valve) होते है। ये कपाट (valve) इस तरह व्यवस्थित रहते है ताकि लसीका एक ही दिशा में निरन्तर प्रवाहित होता रहे। लसीका को लसीकीय वाहिकाओं (lymphatic vessels) में आगे को धकेलने के लिए रक्त परिसंचरण संस्थान में विद्यमान हृदय की भाँति कोई प्रभावशाली पम्प नहीं होता है, लेकिन बड़ी लसीकीय वाहिकाओं (lymphatic vessels) की भित्तियों में विद्यमान वृत्ताकार (circular) एवं लम्बवत् (longitudinal) चिकनी पेशियों की गति से लसीका लसीकीय वाहिकाओं (lymphatic vessels) में आगे को बढ़ती रहती है।

10.7 **बोधात्मक प्रश्न**

1. सम्पूर्ण शरीर में कौन-कौन से संस्थान तरल (fluid) का प्रवाह करते है?
2. लसीका संस्थान की विशेषताएँ बताइये?
3. लसीकीय संस्थान के मुख्य कार्य कौन-कौन से है?
4. लसीका संस्थान के कौन-कौन से है?
5. लसीका क्या है? समझाइये।
6. लसीका उत्पत्ति की उत्पत्ति कैसे होती है? बताइये।
7. लसीकीय केशिकाओं (lymphatic capillaries) की संरचना का वर्णन कीजिए?
8. लसीका परिसंचरण का वर्णन कीजिए?
9. निम्न पर टिप्पणी कीजिए-
    1. दुग्ध वाहिकाएँ या लैक्टीयल्स (lacteals)
    2. लसीकीय वाहिकाएँ (lymphatic vessels)
10. कौन-कौन सी नलिकाएँ (ducts) लसिका को हृदय के ऊपर स्थित सबक्लेवियन शिराओं में उड़ेल देती है?
11. लसीका पर्व (Lymph nodes) एवं उसके कार्य बताइये?
12. प्लीहा (Spleen) की संरचना का वर्णन करते हुए उसके कार्य बताइये?
13. बाल ग्रंथि या थाइमस ग्रंथि (Thymus gland) की संरचना का वर्णन करते हुए उसके महत्व को समझाइये?

14. टॉन्सिल या गलतुण्डिकाएँ (Tonsils) क्या है तथा ये कितने प्रकार के होते है? वर्णन कीजिए।

15. टॉन्सिल के महत्व को बताइये?

16. पेयर की चित्तियाँ (Peyer's patches) क्या है तथा इसके महत्व को समझाइये?

17. लसीका संस्थान के कोई दो रोगों के नाम बताइये?

18. लसीका ग्रंथियों की गिल्टियाँ कैसे पैदा होती है तथा इसकी प्राकृतिक चिकित्सा बताइयें।

10.8 **सन्दर्भ ग्रन्थ**

संदर्भ साहित्य	**लेखक**	**संदर्भ साहित्य**	**लेखक**
प्राकृतिक आयुर्विज्ञान	डॉ. राकेश जिन्दल	जीवेम् शरद शतम्	पं. श्री राम शर्मा आचार्य वाड्मय
वृहद प्राकृतिक चिकित्सा	डॉ. ओ. पी. सक्सेना	बिना औषधियों के कायाकल्प	पं. श्री राम शर्मा आचार्य
स्वस्थवृत विज्ञान	प्रो. रामहर्ष सिंह	निरोग जीवन का राज मार्ग	पं. श्री राम शर्मा आचार्य
प्राकृतिक स्वास्थ्य शास्त्र	आचार्य शेषांद्रि स्वामीनाथन	दीर्घ जीवन की प्राप्ति	पं. श्री राम शर्मा आचार्य
आदिऊर्जा प्राण	अमश्ता भारती	पंच तत्वों द्वारा सम्पूर्ण रोगों का निवारण	पं. श्री राम शर्मा आचार्य
जीव-विज्ञान भग-1	बी. एस. राम दास, देव ज्योति दास	प्राकृतिक चिकित्सा एवं स्वास्थ्य	डॉ. महेन्द्र कुमार जाजपुरा
जीव-विज्ञान भाग-2	ओसवाल ट्यूटोरियल	मानव शरीर रचना एवं क्रिया-विज्ञान	डॉ. महेन्द्र कुमार जाजपुरा
शरीर रचना एवं क्रिया-विज्ञान	डॉ. विमल कुमार मोदी	रोग, उनके कारण, लक्षण एवं उपचार	डॉ. महेन्द्र कुमार जाजपुरा
बिना दवा परफेक्ट हेल्थ	डॉ. बलराम पटेल	प्राण शक्ति उपचार; प्राचीन विज्ञान कला	चौ. कोक सुई
नवीन मेडिकल प्रवेश परीक्षा	नवीन ग्रुप ऑफ पब्लिकेशन्स्- इलाहाबाद	जीवनी शक्ति कैसे जगायें	डॉ. चन्द्र दीप सिंह
मानव शरीर रचना एवं क्रिया-विज्ञान	डॉ. अनन्त प्रकाश गुप्ता	आपका आरोग्य आपके हाथ में	देवेन्द्र वोरा
प्राकृतिक स्वास्थ्य एवं योग	डॉ. बृज भूषण गोयल	प्राकृतिक चिकित्सा एवं योग वैज्ञानिक प्रयोग	डॉ. नागेन्द्र कुमार नीरज

इकाई 11

अंत: स्रावी ग्रंथियाँ एवं उसके रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा

(Endocrine or Ductless glands & nature cure for its diseases)

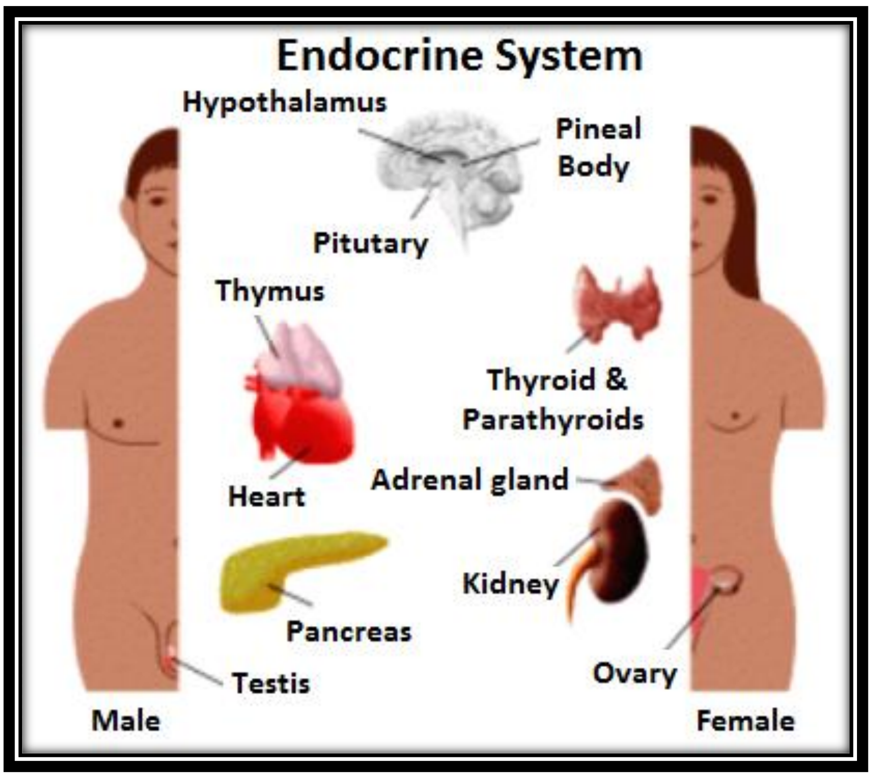

इकाई कि रूपरेखा

11.1 उद्देश्य

11.2 प्रस्तावना

11.3 अंत:स्रावी ग्रंथियां

11.4 अंत: स्रावी ग्रंथियों के रोगों की सूची

11.5 अंत: स्रावी ग्रंथियों के प्रमुख रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा

11.6 सारांश

11.7 बोधात्मक प्रश्न

11.8 संदर्भ ग्रंथ

11.1 **उद्देश्य**

<table>
<tr><td>1.</td><td colspan="2">– अंत:स्रावी ग्रंथिया</td></tr>
<tr><td></td><td>1.</td><td>पीयूष (Pituitary gland)
1. अग्र खण्ड Anterior lobe
1. वृद्धि प्रेरक हॉर्मोन (Growth hormone)
2. अवटुप्रेरक हॉर्मोन (Thyriod stimulating hormone)
3. परावटुका प्रेरक हॉर्मोन (Parathyroid hormone)
4. अधिवृक्क प्रांतस्थ प्रेरक हॉर्मोन (Adreno corticotrophic hormone)
5. वर्णक-प्रेरक हॉर्मोन (Melanocyte stimulating hormone)
6. जनन ग्रंथि प्रेरक हॉर्मोन
1. पुटक उत्तेजक हॉर्मोन (Follicle stimulating hormone)
2. ल्यूटीनाइजिंग (Leutinizing hc
7. Prolactin

2. पश्च खण्ड Posterior lobe
1. मूत्रक रोधी हॉर्मोन (Anti diuretic hormone)
2. आक्सीटोसिन (Oxytocin hormone)</td></tr>
<tr><td></td><td>2.</td><td>अवटु ग्रंथि (Thyroid gland)
1. अल्प स्राव (Hypothyroidism) 2. अतिस्राव (Hyper thyroidism)</td></tr>
<tr><td></td><td>3.</td><td>परावटु ग्रंथि (Para thyroid gland)
1. अल्प परावटुता (Hypo parathyroidism) 2. अतिपरावटुता (Hyper parathyroidism)</td></tr>
<tr><td></td><td>4.</td><td>बाल–ग्रंथि (Thymus gland)</td></tr>
<tr><td></td><td>5.</td><td>अधिवृक्क (Adrenal or Suprarenal glands)
1. अधिवृक्क प्रान्तस्था (Adrenal cortex) 2. अधिवृक्क अन्तस्था (Adrenal medulla)</td></tr>
<tr><td>2.</td><td colspan="2">– अंत: स्रावी ग्रंथियों के रोगों की सूची</td></tr>
<tr><td>3.</td><td colspan="2">– अंत: स्रावी ग्रंथियों के प्रमुख रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा</td></tr>
</table>

उपरोक्त सूचीबद्ध समस्त बिन्दुओं की जानकारी प्राप्त करना इस अध्याय का मूल उद्देश्य है।

11.2 **प्रस्तावना**

हमारे शरीर में प्रतिक्षण कोई-न-कोई रासायनिक क्रिया होती रहती है- जैसे पाचन-अंगों की ग्रंथियों में बने किण्वों की भोजन पर प्रतिक्रिया, किसी भी अंग के मांसपेशियों द्वारा काम लेने पर उसमें लैक्टिक एसिड (lactic acid), कार्बन-डाई-ऑक्साइड एवं जल का बनना , कोशिकाओं में निर्माण एवं टूटने का कार्य ,

इत्यादि। हम जानते हैं कि यदि हम पोटैशियम क्लोरेट को गर्म करें तो ऑक्सीजन गैस निकलती हैं। परन्तु इसे बहुत देर तक गर्म करना पड़ेगा। यदि इसमें थोड़ी मात्रा में मैगनीज-डाईऑक्साइड मिला दें तो थोड़ी ही देर में तीव्र गति से ऑक्सीजन निकलने लगेगी। जिसकी मात्रा भी अधिक होगी और अंत में मैगनीज-डाईऑक्साइड ज्यों का त्यों बचा रहेगा। इस क्रिया में मैगनीज-डाईऑक्साइड उत्प्रेरक (Catalyst) का काम करता हैं। रक्त में भी एक प्रकार के रासायनिक उत्प्रेरक अत्यन्त सूक्ष्म मात्रा में पाये जाते हैं जिन्हें हॉर्मोन (hormone) कहा जाता हैं। हॉर्मोन एक ग्रीक शब्द है जिसका अर्थ है-'उत्तेजना या जगाना।'

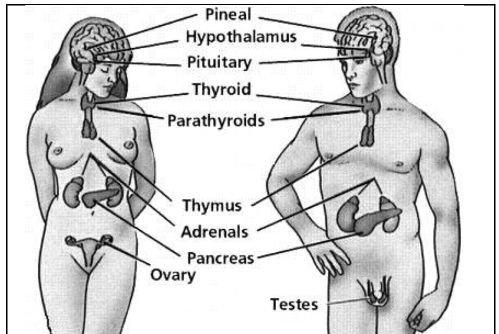

अन्तःस्रावी ग्रन्थियों की स्थिति
(Location of endocrine glands)

यद्यपि सम्पूर्ण जीवन काल में प्रत्येक अन्तःस्रावी ग्रंथि बहुत ही कम हॉर्मोन निकालती है, परन्तु वह हमारे जीवन के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं और उसके बिना जीवन का सुचारू रूप से चलना सम्भव भी नहीं हैं। किसी स्त्री की डिम्ब ग्रंथि से जीवन भर में एक डाक टिकट की तौल के बराबर ही हॉर्मोन निकलता हैं , परन्तु यही हॉर्मोन एक बालिका को स्त्री और स्त्री को माँ बना देता हैं। थायराइड ग्रंथि से जीवन भर में चाय के एक चम्मच भर हॉर्मोन निकलता है, पर यदि यह कम या अधिक हो जाये तो मनुष्य बौना या अत्यधिक लम्बा हो जाता हैं। शरीर के अन्दर चलने वाली विभिन्न रासायनिक क्रियाओं में आपस में सामंजस्य तथा शरीर के विकास में योग रासायनिक एकीकरण (Chemical equibrium)कहलाता हैं। यह रासायनिक एकीकरण शरीर में हॉर्मोन द्वारा होता हैं।

शरीर में प्रक्रिया करने वाले रासायनिक पदार्थों का उत्पादन किसी-न-किसी ग्रंथि में होता हैं। इनमें से कुछ ग्रंथियों में वाहिनी या नलिका होती है , जिसके द्वारा उनका स्राव कार्य वाले स्थान पर पहुंचता हैं। जैस-लार ग्रंथि (salivary gland) का स्राव नलिका द्वारा ही मुंह में आता हैं। परन्तु कुछ ग्रंथियों में नलिका नहीं होती और उसका स्राव सीधे रक्त में मिल जाता है। रक्त द्वारा ही वह अपने काम करने के स्थान पर पहुंचता हैं। इन ग्रंथियों को नलिका-विहीन ग्रंथि (Ductlees gland) या अंतःस्रावी ग्रंथि (Endocrine gland) कहते हैं।

11.3 अंतःस्रावी ग्रंथियां

हमारे शरीर में निम्नलिखित अंतःस्रावी ग्रथियां पाई जाती है:

क्र.	अंतःस्रावी ग्रंथि	स्थिति
1.	पीयूष (Pituitary gland)	मस्तिष्क के आधार
2.	पीनियल ग्रंथि या पिण्ड (Pineal gland or body)	मस्तिष्क
3.	अवटु ग्रंथि (Thyroid gland)	गर्दन
4.	परावटु ग्रंथि (Para thyroid gland)	गर्दन
5.	बाल–ग्रंथि (Thymus gland)	हृदय
6.	अधिवृक्क (Adrenal or Suprarenal glands)	गुर्दे

7.	अग्न्याशयिक या लैंगरहैंस की द्वीपिकाएँ (Pancreatic islets or Islets of langerhans)	अग्न्याशय
8.	प्लीहा या तिल्ली (Spleen)	आमाशय के पास
9.	डिम्ब ग्रंथियाँ (Ovaries)	स्त्रियों में जननांग
10.	शुक्र ग्रंथियाँ (Testes)	पुरूषों में जननांग

पीयूष ग्रंथि **(Pituitary gland)**

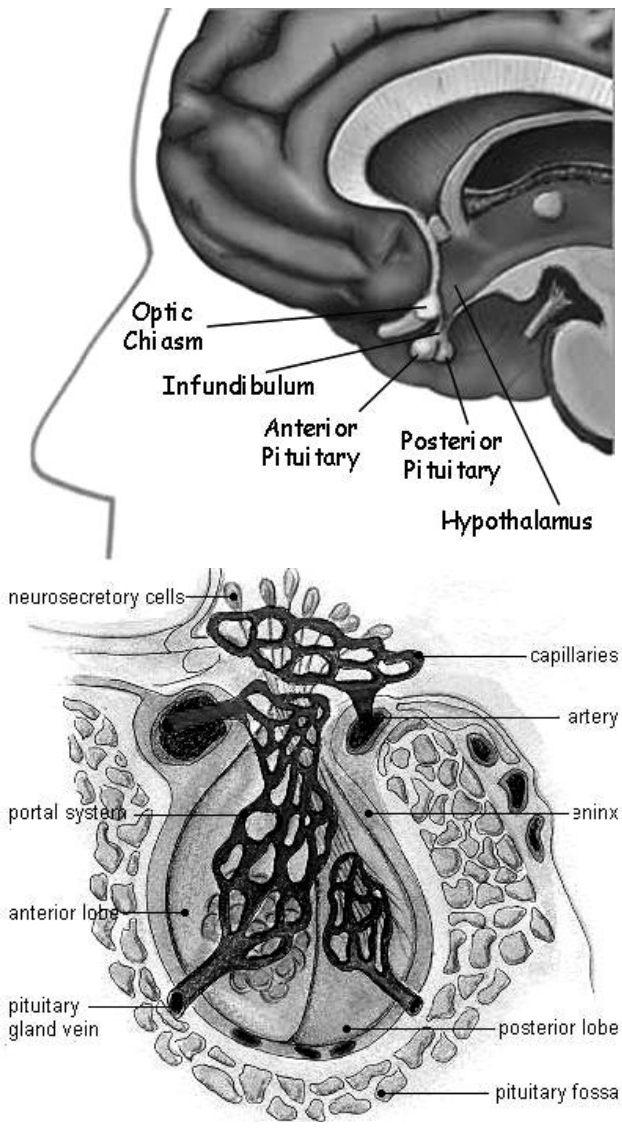

पीयूष ग्रंथि (Pituitary gland)

यह ग्रंथि कपाल आधार में स्फीनायड अस्थि में बने पीयूषिका खात (Pituitary fossa) में मस्तिष्क के नीचे स्थित होती हैं। यह मटर के दाने के बराबर लाल एवं भूरे रंग की होती हैं। इसको अंत:स्रावी ग्र्रंथियों का राजा (Band master of endocrine) कहते हैं। इसको दो खण्डों में बांटा जा सकता है:-

1. अग्र खण्ड (Anterior lobe) तथा 2. पश्च खण्ड (Posterior lobe)

1. अग्र खण्ड **(Anterior lobe)** : इससे निम्न हॉर्मोन निकलते हैं-

1. वृद्धि प्रेरक हॉर्मोन **(Growth hormone)** : यह शरीर की वृद्धि को नियंत्रित करता हैं। तरूणावस्था से पहले यदि यह कम निकलता है तो मनुष्य बौना Dwarf रह जाता है और तरूणावस्था के बाद यदि यह कम होता है, तो अन्य सभी ग्रंथियों के स्राव में कमी आ जाती हैं।

यदि तरूणावस्था के पहले यह अधिक निकलने लगे तो मनुष्य महाकाय (Giant) हो जाता हैं। मनुष्य के कंकाल तंत्र की अत्यधिक वृद्धि हो जाती है , अस्थियां कमजोर हो जाती है और खून में चीनी की मात्रा बढ़ जाती हैं। यदि तरूणावस्था के बाद यह अधिक बना , तो महाकायता (Acromegaly) नामक रोग हो जाता हैं। जिसमें अस्थियां कोमल ऊतक स्थूल व कठोर हो जाते हैं। हाथ-पैर की अंगुलियों की हड्डी में वृद्धि हो जाती है तथा मुंह में जबड़े का आकार भी बढ़ जाता हैं। व्यक्ति गुरिल्ले की तरह दिखने लगता हैं। खून, पेशाब में चीनी अधिक हो जाती हैं।

2. अवटुप्रेरक हॉर्मोन **(Thyriod stimulating hormone)** : यह थायरायड ग्रंथि से निकलने वाले हॉर्मोन थाइराक्सिन के निर्माण को नियंत्रित करता हैं।

3. परावटुका प्रेरक हॉर्मोन **(Parathyroid hormone)** : यह पैराथायरायड ग्रंथि से निकलने वाले हॉर्मोन को नियंत्रित करता हैं।

4. अधिवृक्क प्रांतस्थ प्रेरक हॉर्मोन **(Adreno corticotrophic hormone)** : यह अधिवृक्क ग्रंथि से निकलने वाले हॉर्मोन को नियंत्रित करता हैं।

5. वर्णक-प्रेरक हॉर्मोन **(Melanocyte stimulating hormone)** : यह मिलेनिन-पिगमेन्ट बनाने में मदद करता है जो त्वचा को रंग देती हैं।

6. जनन ग्रंथि प्रेरक हॉर्मोन : ये निम्नलिखित है:

1. पुटक उत्तेजक हॉर्मोन **(Follicle stimulating hormone)** : यह स्त्रियों में डिम्ब ग्रंथि के फालिकिल के विकास एवं पुरूषों में वृषण कोष में शुक्राणुओं के निर्माण को उत्तेजित करता हैं।

2. ल्यूटीनाइजिंग हॉर्मोन **(Leutinizing hormone)** : यह डिम्ब ग्रंथि में प्रोजेस्टेरान के स्राव को व वृषण कोष में टेस्टोस्टीरान के स्राव को उद्दीप्त करता हैं।

7. **Prolactin** : यह दूध बनाने में मदद करता हैं।

2. पश्च खण्ड **(Posterior lobe)** : इससे निम्न हॉर्मोन निकलते हैं-

1. मूत्रक रोधी हॉर्मोन **(Anti diuretic hormone)** : यह वृक्क द्वारा निष्कासित जल की मात्रा को नियंत्रित करता हैं। यदि यह न रहे तो शरीर का सारा जल मूत्र के रूप में बाहर निकल जायेगा। यह शरीर में पेशाब की सान्द्रता को बनाये रखता हैं। शिराओं और मांसपेशियों का संकुचन (contraction) होता हैं। जिससे रक्तचाप बढ़ जाता हैं। इसकी कमी से उदकमेह diabetes insipidus हो जाता है और पेशाब ज्यादा मात्रा में निकलने लगता है और प्यास बढ़ जाती हैं।

2. आक्सीटोसिन **(Oxytocin hormone)** : प्रसव के समय यह हॉर्मोन गर्भाशय के संकुचन (contraction) को उद्दीप्त करता है जिससे गर्भस्थ शिशु बाहर आता हैं। यह स्तनपान के समय दुग्ध स्राव की मात्रा को बढ़ाता हैं।

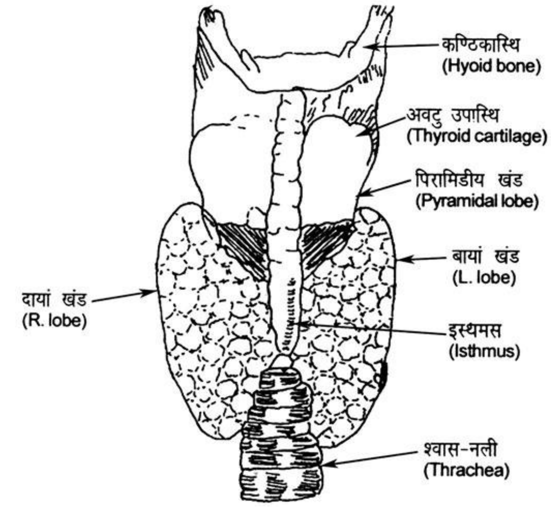

अवटु ग्रन्थि की स्थिति
(Location of Thyriod gland)

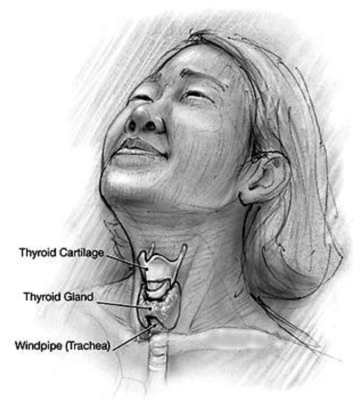

अल्प स्रावज रोग

नेत्रोत्सेधी गलगण्ड

अवटु ग्रंथि **(Thyriod gland)**

यह ग्रंथि गर्दन में सामने की ओर श्वास नली के ऊपर और स्वर यंत्र के दोनों ओर, दो खण्डों (Lobes) की बनी होती हैं। ये दोनो खण्ड, थायराइड ऊतक के एक संकरे भाग, जिसे संकीर्णपथ या इस्थमस (Isthumus) कहते हैं, द्वारा जुड़े होते हैं। स्वस्थ मनुष्य में इसका भार 25-50 ग्राम तक होता हैं। थायरायड ग्रंथि में असंख्य पुटिकायें (Vesicles) होती हैं जो संयोजी ऊतक द्वारा जुड़ी होती हैं। इनमें प्रचुर मात्रा में रक्त वाहिकायें (blood vessels) रक्त लाती हैं। इनसे एक चिपचिपा स्राव निकलता है जिसमें आयोडीन का यौगिक पाया जाता हैं।

इस यौगिक से थाइराक्सिन नामक हॉर्मोन बनता हैं। यह हार्मोन पहले पुटिकाओं में भरता है फिर रक्त प्रवाह में सीधे चला जाता हैं। थाइराक्सिन हॉर्मोन का बनना पिट्यूटरी के थायरायड प्रेरक हॉर्मोन द्वारा नियंत्रित होता हैं। यह हॉर्मोन शरीर की समस्त क्रियाओं पर अपना प्रभाव डालता हैं।

अवटु ग्रन्थि की स्थिति

(Hypothyroidism)

अल्प स्राव या अल्पवटुता **(Hypothyroidism)** :

इस ग्रंथि में जब थाइराक्सिन हॉर्मोन कम बनता है तो उसे अल्पवटुता **(Hypothyroidism)** कहते हैं। बच्चों में इस ग्रंथि के स्राव की कमी से अवटुवामन (Cretinism) नामक रोग होता हैं। इसमें मानसिक

तथा शारीरिक वृद्धि मन्द हो जाती हैं। इस रोग में हृदय की धडक़न , श्वास की गति मन्द पडऩे लगती हैं। हड्डियों की लम्बाई की बाढ़ रूक जाती है और वे झुकने लगती हैं। बाहर-चौदह वर्ष के बालक की लम्बाई चार-छह वर्ष के बच्चे जैसी होती हैं। वयस्कों में इसकी कमी से अल्प स्रावज रोग (Myxoedema) होता हैं। इसमें चयापचय (metabolism) की क्रियायें कम हो जाती हैं , वजन बढ़ जाता है, त्वचा, सूखने लगती है, उसकी चमक समाप्त होने लगती है, त्वचा के नीचे अधिक मात्रा में वसा (fat) एकत्रित होने लगती हैं, आलस्य बढ़ जाता है, सोचने और बोलने की क्रिया भी धीमी हो जाती है, केश गिरने लगते हैं एवं शरीर का तापमान सामान्य से कम हो जाता हैं।

अतिस्राव या अतिवटुता **(Hyper thyroidism) :**

थाइराक्सिन हॉर्मोन शरीर में अधिक बनने लगता है तो हृदय की धडक़न , श्वास की गति बढ़ जाती है , पसीना अधिक आता है, शरीर दुबला हो जाता है एवं शीघ्र थकान आती हैं। चयापचय (metabolism) की दर बढ़ जाती है , शरीर का तापमान सामान्य से अधिक रहता है , वजन घट जाता है, नींद कम आती है, उत्तेजनशीलता व घबड़ाहट बढ़ जाती है, हाथ की अंगुलियों में कंपन होने लगता हैं। यकृत से अधिक मात्रा में ग्लाइकोजन का ग्लूकोज में परिवर्तन होता है और मधुमेह की स्थिति हो जाती हैं। कभी-कभी इसकी अधिकता से गले में घेंघा (Goitre) हो जाता है और नेत्र उत्सेधित (Exophthalmic) हो जाते हैं। इसे नेत्रोत्सेधी गलगण्ड (Exophthalmic goiter) कहते हैं।

परावटु ग्रंथि (Parathyroid gland)

थायरायड ग्रंथि के ऊपर और मध्य भाग की ओर दोनो तरफ एक-एक जोड़ा पैराथायरायड ग्रंथि होती हैं। यह संख्या में चार होती हैं। इसमें निकलने वाले हॉर्मोन को पैराथार्मोन (Paratharmone) कहते हैं। यह रक्त , अस्थि में कैल्शियम और फास्फोरस नामक तत्वों की मात्रा को नियंत्रित करता हैं।

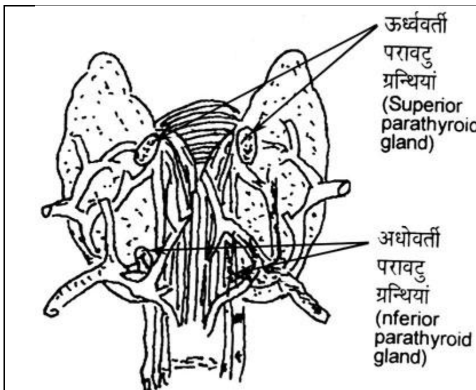

परावटु ग्रन्थियों की स्थिति

अल्प परावटुता (Hypo parathyroidism) :

यदि यह हॉर्मोन कम उत्पन्न होता है , तो रक्त में कैल्शियम की मात्रा कम हो जाती हैं। इसके फलस्वरूप नाड़ी एवं श्वास की गति तीव्र हो जाती है , तथा पेशियों में ऐंठन होने लगती है जिसे अपतानिका (Tetany) कहते हैं। रक्त आसानी से जमता नहीं हैं।

अतिपरावटुता (Hyper parathyroidism) :

इस अवस्था में यह ग्रंथि तेजी से काम करने लगती है और रक्त में हॉर्मोन की मात्रा बढ़ जाती है जिसके फलस्वरूप अस्थियों का कैल्शियम रक्त में आकर मिलने लगता है और अस्थि निर्बल होकर अपना आकार खोने लगती हैं। अस्थियों में विरलीभवन (Rarification) होने लगता हैं। रक्त में कैल्शियम अधिक होने के कारण वृक्क में यह रूकने लगता है जिसके फलस्वरूप उसमें पथरी (Stone) बनने की आशंका रहती हैं। पेशियां शिथिल होने लगती हैं। भूख नहीं लगती।

बाल ग्रंथि **(Thymus)**

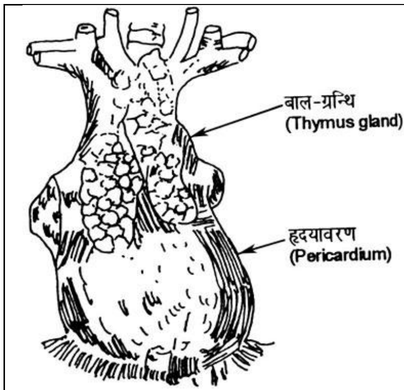

बाल ग्रन्थि की स्थिति

यह ग्रंथि वक्ष में श्वास नली के विभाजन के स्तर पर पाई जाती हैं। यह दो खण्डों की बनी होती है और इसका रंग गुलाबी सलेटी होता हैं। जन्म के समय यह छोटी होती हैं। इसका वजन 10 ग्राम होता हैं। दो या ढाई साल तक यह लगभग 30-40 ग्राम की हो जाती है और पुन: यह सिकुड़ कर छोटी हो जाती हैं। इसके कार्य के बारे में बहुत ठीक से ज्ञात नहीं पर इस बात का प्रमाण है कि यह शरीर में प्रतिपिंड (Anti body)बनाने एवं रोग रोधी क्षमता बनाये रखने में सहायता करती हैं। इसका प्रभाव जननेन्द्रियों के विकास पर भी पड़ता हैं।

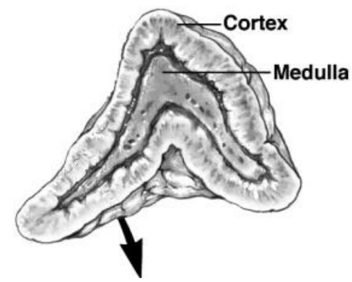

अधिवृक्क ग्रंथि **(Suprarenal gland)**

प्रत्येक वृक्क के ऊपर सिरे पर एक-एक सेम के बीज के आकार की अधिवृक्क ग्रन्थि होती हैं। इसके दो भाग होते हैं।

अधिवृक्क प्रान्तस्था **(Adrenal cortex) :**

अधिवृक्क ग्रन्थियों की स्थिति

यह बाहर वाला भाग पीले रंग का होता हैं। इसके कोशाएं तीन परतों में स्थित होती है और प्रत्येक से हॉर्मोन निकलता हैं।

1. सबसे बाहर वाले से एल्डोस्टीरान (Aldosterone) नामक हॉर्मोन निकलता हैं।

2. बीच वाली परत से ग्लूको कोर्टिकाएड(Glucocorticoid) निकलता हैं। ये रक्त में शर्करा की मात्रा को नियंत्रित करता हैं। इसके अतिरिक्त मिनरलो कार्टिकाएड निकलता है जो रक्त में खनिज लवणों(mineral salts) की मात्रा को नियंत्रित करता हैं।

3. अंदर वाली परत से कार्टिकोस्टीरायड (Corticosteroids) निकलता हैं। यह चयापचय-वृद्धि की कार्य-पेशियों के संकुचन (contraction) में सहायक होता हैं।

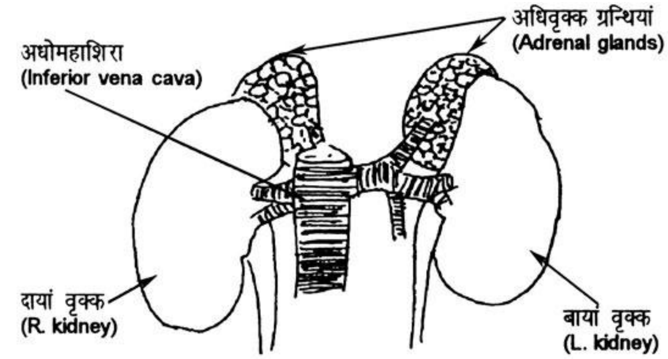

अधिवृक्क ग्रन्थियों की स्थिति

अधिवृक्क अन्तस्था **(Adrenal medulla) :** यह अन्दर वाला भाग है इसमें बहुत सी रक्त वाहिनियां (blood vessels) होती हैं। ये एड्रीनेलिन Adrenaline और नार एड्रीनेलिन (Nor adrenaline) नामक हॉर्मोन बनाता हैं। इन के स्राव पर अनुकंपी तंत्रिका तंत्र Sympathetic nervous system का नियंत्रण होता हैं।

भय, क्रोध और आवेग (impulses) की स्थिति में इसका निकलना बढ़ जाता है जिससे रक्तदाब बढ़ जाता हैं। आंख की पुतली बढ़ जाती है, रोयें खड़े हो जाते हैं, श्वास तेजी से चलने लगती है, गुदा संवरणी का संकुचन (contraction) बढ़ जाता हैं। यकृत में संचित ग्लाइकोजन ग्लूकोज में परिवर्तित होकर रक्त

में मिल जाता हैं। अकस्मा **त्** डर से एड्रीनेलिन का स्राव बढ़ जाता है और शरीर में उपर्युक्त प्रतिक्रियायें होने पर मनुष्य अपनी रक्षा करने में समर्थ हो पाता हैं।

यदि ग्रंथि काम कम करती है तो एडीसन का रोग(Addisons disease) हो जाती है जिसमें त्वचा का रंग तांबे सा हो जाता है , रक्त दाब घट जाता है , शरीर निर्बल और कृशकाय हो जाता हैं। वृक्क सोडियम संरक्षण में असफल हो जाते हैं और मूत्र में सोडियम की मात्रा बढ़ जाती हैं। प्रजनन पर भी इसका प्रभाव पड़ता हैं।

यदि यह ग्रंथि अधिक कार्य करने लगे , तो कुशिंग का संलक्षण (Cushings syndrome) हो जाता है , जिसमें मोटापा, चांद के समान गोल चेहरा (Moon face),अति रक्तदाब एवं प्रोटीन और कार्बोहाइड्रेट के चयापचय (metabolism) में दोष आ जाता हैं। यदि यह बच्चों में बढ़ जाये तो उचित आयु से पहले यौन लक्षण एवं स्त्रियों में पुरूषोचित व्यवहार परिलक्षित होने लगते हैं।

विशेष सूचना-

1. शेष अन्य ग्रंथियों का वर्णन आगे के अध्यायों में किया जा चुका है।

2. अंत: स्रावी ग्रंथियों की विशेषता एवं लाभों का वर्णन अध्याय में विस्तृत रूप से किया गया है। अप्राकृतिक खान-पान, रहन-सहन एवं आचार-विचारों के गलत प्रभाव से सम्बन्धित ग्रंथि प्रभावित होने से अनेक विकृतियों के साथ-साथ उससे स्रावित हॉर्मोन्स की मात्रा में भी कमी या वृद्धि हो जाती है। जिसके फलस्वरूप समस्या, व्याधि एवं रोग उत्पन्न होते है।

3. हॉर्मोन्स से उत्पन्न समस्या, व्याधि एवं रोगों का प्राकृतिक चिकित्सा में सरल व सटिक ईलाज है कि अप्राकृतिक खान-पान, रहन-सहन एवं आचार-विचारों की जीवन-शैली को भलीभाँति पहचान कर और उस पर विचार करके प्राकृतिक जीवन-शैली को अपना लिया जायें।

11.4 **अंत: स्रावी ग्रंथियों के रोगों की सूची**

क्र.	ग्रंथियाँ	हॉर्मोन्स	हॉर्मोन्स की कमी के रोग	हॉर्मोन्स की वृद्धि के रोग
1.	अवटु ग्रंथि (Thyroid gland)	ट्राईआयडोथाईरोनीन T_3 एवं थाईराक्सीन T_4	Hypothyrodism, चयापचय दर कम, तापमान कम, ठण्ड लगती, त्वचा शुष्क, बाल झड़ते, नाड़ी गति मंद, मासिक अनियमित	Hyperthyrodism, चयापचय दर बढ़ती, तापमान बढ़ती, नाड़ी गति व हृदय की धड़कन बढ़ती, गर्दन फूल जाती, आँखें बाहर की तरफ, घेंघा रोग
2.	परावटु ग्रंथि (Para thyroid gland)	पैराथर्मोन	कैल्शियम की कमी, फॉस्फोरस की अधिकता, शरीर में ऐंठन	कैल्शियम की अधिकता व फॉस्फोरस की कमी, पथरी, हड्डियों में कैल्शियम की कमी होने से कमजोर
3.	अधिवृक्क (Adrenal or Suprarenal glands)	कार्टिको स्टैरायड	खून की कमी, निम्न रक्तचाप, पेट में गड़बड़ी, भूख न लगना, वजन घटना, कमजोरी, त्वचा का रंग परिवर्तन	अस्थियाँ पोली, कमर दर्द, रीढ़ कमजोर, स्त्री में मासिक नहीं, स्त्रियों में अनचाहे बाल, मधुमेह, उच्च रक्तचाप, पतली त्वचा, जल्दी से नील पड़ जाना, पोटेशियम की कमी से शरीर सुन्न, शरीर पर कीड़ों के रेंगने जैसा अनुभव, सुई

				जैसा चुभन, रात्री को बहुमूत्रता
4.	अग्न्याशयिक या लैंगरहैंस की द्वीपिकाएँ (Pancreatic islets or Islets of langerhans)	ग्लूकैगान व इन्सुलिन	मधुमेह (Diabetes)	अल्प ग्लूकोजरक्तता (Hypoglycaemia)
5.	डिम्ब ग्रंथियाँ (Ovaries)	इस्ट्रोजन व प्रोजेस्टेरोन	बांझपन (Sterility)	
6.	शुक्र ग्रंथियाँ (Testes)	एन्ड्रोजन	नपुंसकता (Impotency)	

पीयूष (Pituitary gland) के रोग

क्र.	हॉर्मोन	हॉर्मोन्स की कमी के रोग	हॉर्मोन्स की वृद्धि के रोग
1.	वृद्धि प्रेरक हॉर्मोन (Growth hormone)	बौनापन	लम्बापन
2.	अधिवृक्क प्रांतस्थ प्रेरक हॉर्मोन (Adreno corticotrophic hormone)	अधिवृक्क ग्रंथि की कार्य क्षमता में कमी	बालों का आधिक्य, स्त्रियों में अनचाहे बालों की समस्या
3.	जनन ग्रंथि प्रेरक हॉर्मोन	नपुंसकता एवं बांझपन	
4.	मूत्रक रोधी हॉर्मोन (Anti diuretic hormone)	अधिक मूत्र त्याग, शरीर में पानी की कमी, निम्न रक्तचाप	कम मूत्र त्याग, उच्च रक्तचाप
5.	आक्सीटोसिन (Oxytocin hormone)	स्त्रियों में स्तन एवं गर्भाशय की समस्या	

11.5 अंत: स्रावी ग्रंथियों के प्रमुख रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा

1. थाइराईड रोग (Thyroid disease)

परिचय : थाइराईड ग्रंथि शरीर के दैनिक कार्यकलापों को नियंत्रित करती है। खासकर महिलाओं में यौवन प्रवेश के समय , गर्भावस्था के दौरान , रजोनिवृत्ति के समय एवं मानसिक तनाव के समय यह ज्यादा प्रभावित करती है। इस ग्रंथि में विकृति पैदा होने पर खासकर निम्न तीन तरह के रोग पैदा होते है-

1. थाइराईड का बढना Hyperthyrodism 2. थाइराईड का सिकुडना Hyperthyrodism 3. घेंघा रोग Goitre I

कारण : अप्राकृतिक भोजन के फलस्वरूप शरीर में आयोडीन की कमी हो जाती है। आयाडीन की कमी ग्रंथि के कार्य प्रणाली में बाधा पैदा करती है। मानसिक एवं भावात्मक तनाव व मनोदशा का ग्रंथि पर विशेष प्रभाव पड़ता है। यह वशांनुगत समस्या भी होती है।

1. थाइराईड का बढना **Hyperthyrodism :** थाइराईड ग्रंथि से स्त्रावित हार्मोन ज्यादा मात्रा में बनने पर यह ग्रंथि ही बढ़ जाती है।

2. थाइराईड का सिकुडना **Hypothyrodism :** थाइराईड ग्रंथि से स्त्रावित हार्मोन कम मात्रा में बनने पर यह ग्रंथि ही सिकुड़ जाती है।

3. घेंघा रोग (गलगंड) **Goitre :** थाइराईड ग्रंथि में सूजन आ जाने पर घेंघा रोग हो जाता है।

लक्षण :

क्र.	**थाइराईड का बढ़ना Hyperthyrodism**	**थाइराईड का सिकुड़ना Hypothyrodism**	**घेंघा रोग (गलगंड) Goitre**
1.	रक्त में T_3 एवं T_4 हार्मोन्स की मात्रा बढ़ना	रक्त में T_3 एवं T_4 हार्मोन्स की मात्रा कम होना	ग्रंथि में सूजन
2.	वज़न कम होना	वज़न बढ़ना	वजन में कमी आना
3.	गर्मी सहन न होना, अधिक पसीना आना	सर्दी सहन न होना	उदासी
4.	दिल की धड़कन बढ़ना, उच्च रक्तचाप	नब्ज की गति धीमी हो जाना	बैवज़ह रोना आना
5.	बालों का झड़ना	रूखे सूखे बाल	चिड़चिड़ापन
6.	बार–बार पेशाब आना	चेहरे पर सूजन	एकाग्रता में कमी
7.	थकावट, याददास्त में कमजोरी	जोड़ों में अकड़न आन	मानसिक संतुलन कमजोर
8.	अधिक भूख लगना	कमर दर्द	शरीर में अपशिष्ट की मात्रा बढ़ने
9.	माहवारी की गड़बड़ी	कब्ज रहना	
10.	ऊँगलियों में कंपकंपी		

प्राकृतिक चिकित्सा : थाइराईड के उक्त तीनों रोगों की एक ही प्राकृतिक चिकित्सा निम्नवत् है-

इन रोगों में लगभग छ: माह तक रसाहार एवं फलाहार पर रहना होता है।

रोगी एक सप्ताह रसाहार और एक सप्ताह फलाहार पर रहें।

रसाहार के दौरान नारियल पानी, तिल का दूध, गाजर, पत्तागोभी, चुकन्दर, अनानास, संतरा, सेब, अंगूर आदि का रस लेवें। फलाहार के दौरान मौसमानुसार फल-सब्जियों की सलाद , अंकुरित अनाज आदि लेवें। उपचार के दौरान इनके अलावा और कुछ भी न खायें।

प्रतिदिन शहद दिन में 3-4 बाद अवश्य लेवें।

रात को सोने से पहले जीरा पाउडर पानी के साथ लेवें।

प्रतिदिन रात को पानी में भिगोया धनिया पाउडर सुबह मसलकर छानकर पीयें।

प्रतिदिन सुबह-शाम नमक के गुनगुने पानी से गरारे करें।

गर्दन पर ऊनी-सूती गीली पट्टी या मिट्टी की पट्टी बाँधे, एनीमा, कटिस्नान लेवें।

विश्राम करे तथा समय पर नींद पूरी लेवें।

मानसिक व भावात्मक तनावों व विचारों से दूर रहें।

भ्रामरी व उज्जायी प्राणायाम करें तथा जालंधर बंध लगायें।

आसनों में पवनमुक्तासन, सुप्तवज्रासन, मत्स्यासन, योगनिद्रा, ग्रीवासन की क्रिया आदि करते रहें।

2. बांझपन **(Sterility)**

परिचय : स्त्रियों का गर्भधारण करने में असमर्थता को बांझपन कहते है। ऐसी महिला व उसके परिवार को इस समस्या का मानसिक कष्ट होता है।

कारण : जननेन्द्रिय अंगों में पैदाईशी या दुर्घटनाओं से विकृति पैदा हो जाना। अनियमित मासिक चक्र , चिंता, डर एवं तनाव का होना। शरीर में अन्य कोई रोग का होना।

प्राकृतिक चिकित्सा : ऐसी महिला को प्राकृतिक जीवन-शैली अपनानी चाहिए। तनाव से मुक्त रहना , विश्राम करना, अपने जनन अंगों की आंतरिक व बाहरी साफ-सफाई पर ध्यान देना होता है। जहाँ तक सम्भव हो सके तो अपक्वाहार एवं पानी में भिगोए मेवें , दही, छाछ, नीम्बू-पानी-शहद, आँवला, संतरा, अंकुरित अनाज, दूध के साथ लहसुन, गेहूँ के ज्वारे का रस एवं जामुन के पत्तों का रस लेना चाहिए। इनके अलावा अन्य सभी खाद्य-पदार्थो से परहेज करना चाहिए।

प्राकृतिक उपचारों में एनीमा, पेडू पर मिट्टी पट्टी, कटिस्नान, कटि लपेट आदि प्रतिदिन लेते रहना चाहिए। कटिस्नान का गुनगुना पानी में नीम पत्तियों का काढ़ा व फिटकरी मिलानी चाहिए। ऐसे ही पानी का योनि में डूस भी लेना चाहिए।

उपचार लगभग छ: माह तक चलता है, इस दौरान जनन अंगों को पूरा आराम देना चाहिए।

3. नपुंसकता **(Impotency)**

परिचय : पुरूष की इन्द्रिय या कमजोर शुक्राणओं की वज़ह से अपनी पत्नी को गर्भधारण कराने में असमर्थता को नपुंसकता कहते है। ऐसा पुरूष व उसके परिवार को इस समस्या का मानसिक कष्ट होता है।

कारण : अत्यधिक मैथुन, हस्त मैथुन, अप्राकृतिक मैथुन, शीघ्रपतन व अन्य जनन सम्बन्धी रोगों के साथ अति अप्राकृतिक आहार , पाचन सम्बन्धी समस्याएँ , मधुमेह, डर, तनाव एवं हार्मोन्स की कमी आदि कारणों की वज़ह से पुरूष को नपुंसकता की समस्या सताती है।

प्राकृतिक चिकित्सा : ऐसे पुरूष को समस्त उत्तेजक , नशीले पदार्थो का त्याग कर देना चाहिए। अपनी जीवनी-शक्ति को बढ़ाने के लिए उपवास, रासहार, फलाहार जैसे अपक्वाहार के मार्ग का अनुसरण करना होगा।

कुछ दिनों का निम्बू-पानी-शहद पर उपवास करें।

फिर कुछ दिन रसाहार में गेहूँ के ज्वरे का रस , गाजर का रस , आँवला रस एवं प्याज रस के साथ शहद मिलाकर पीयें।

मुनक्का, खजूर, अंजीर, बादाम, नारियल गिरी एवं सुखे मेवे पानी में भिगोकर शहद के साथ खायें।

अंकुरित अनाज खायें तथा अंकुरित के लिए भिगोए गये पानी को भी शहद के साथ पीयें

रात्रि को दूध के साथ शहद, लहसून, हल्दी लेवें।

जननेन्द्रिय पर गरम-ठण्ड़ा सेंक करके अरण्डी के तेल से मालिश करें।

कब्ज हो या न हो एनीमा नियमित लेते रहें। पेट पर मिट्टी पट्टी , गरम-ठण्डा कटिस्नान, पेडू पर गरम-ठण्डा सेंक, मेहन स्नान, रीढ़ स्नान एवं पूरे शरीर की चादर लपेट लेते रहें।

रीढ़ व जननेन्द्रिय पर धूप का लाल प्रकाश डाले या सूर्य तप्त लाल रंग के तेल की मालिश करें।

4. अल्प ग्लूकोजरक्तता, हीन रक्तशर्करा **(Hypoglycaemia, Low blood sugar)**

परिचय : रक्त में शर्करा अधिक या कम हो जाने पर शरीर को नुकसान होता है। जब रक्त में शर्करा की मात्रा कम हो जाए तो दिमाग पर खतरनाक प्रभाव पड़ता है।

कारण : मावा-मैदा-बेसन की मिठाईयों का अधिक सेवन , तनाव, निम्न रक्तचाप, अंत:स्रावी ग्रंथियों में गड़बड़ी, इंसुलिन के अनुपात में गड़बड़ी होने के कारण यह समस्या पैदा हो जाती है।

लक्षण : भोजन के साथ मीठा खाने की प्रबल इच्छा ही इसका प्रथम लक्षण है। सिरदर्द , घबराहट, चिड़चिड़ापन, थकावट, अवसाद, दृष्टिदोष, चक्कर आना , पसीना आना , कंपकंपी आना , दिल की धडक़न बढऩा, यौन समस्या एवं खोया खोया रहना आदि लक्षण रोगी में प्रकट होते है।

प्राकृतिक चिकित्सा : रोगी नियमित पुदीना-पानी , अंगूर व मौसमी का रस , मौसमानुसार मीठे फलों व सब्जियों का रस डेढ़-दो घण्टे के नियत अन्तराल में लेते रहना चाहिए।

इनके अलावा रोगी को अन्य कुछ भी खाना-पीना नहीं चाहिए।

11.6 **सारांश**

शरीर में प्रक्रिया करने वाले रासायनिक पदार्थों का उत्पादन किसी-न-किसी ग्रंथि में होता हैं। इनमें से कुछ ग्रंथियों में वाहिनी या नलिका होती है , जिसके द्वारा उनका स्राव कार्य वाले स्थान पर पहुंचता हैं। जैस-लार ग्रंथि (salivary gland) का स्राव नलिका द्वारा ही मुंह में आता हैं। परन्तु कुछ ग्रंथियों में नलिका नहीं होती और उसका स्राव सीधे रक्त में मिल जाता है। रक्त द्वारा ही वह अपने काम करने के स्थान पर पहुंचता हैं। इन ग्रंथियों को नलिका-विहीन ग्रंथि (Ductlees gland) या अंत:स्रावी ग्रंथि (Endocrine gland) कहते हैं।

हमारे शरीर में प्रतिक्षण कोई-न-कोई रासायनिक क्रिया होती रहती है- जैसे पाचन-अंगों की ग्रंथियों में बने किण्वों की भोजन पर प्रतिक्रिया, किसी भी अंग के मांसपेशियों द्वारा काम लेने पर उसमें लैक्टिक एसिड (lactic acid), कार्बन-डाई-ऑक्साइड एवं जल का बनना , कोशिकाओं में निर्माण एवं टूटने का कार्य , इत्यादि। हम जानते हैं कि यदि हम पोटैशियम क्लोरेट को गर्म करें तो ऑक्सीजन गैस निकलती हैं। परन्तु इसे बहुत देर तक गर्म करना पड़ेगा। यदि इसमें थोड़ी मात्रा में मैगनीज-डाईऑक्साइड मिला दें तो थोड़ी ही देर में तीव्र गति से ऑक्सीजन निकलने लगेगी। जिसकी मात्रा भी अधिक होगी और अंत में मैगनीज-डाईऑक्साइड ज्यों का त्यों बचा रहेगा। इस क्रिया में मैगनीज-डाईऑक्साइड उत्प्रेरक (Catalyst) का काम करता हैं। रक्त में भी एक प्रकार के रासायनिक उत्प्रेरक अत्यन्त सूक्ष्म मात्रा में पाये जाते हैं जिन्हें हॉर्मोन (hormone) कहा जाता हैं। हॉर्मोन एक ग्रीक शब्द है जिसका अर्थ है-'उत्तेजना या जगाना।'

11.7 **बोधात्मक प्रश्न**

1. हॉर्मोन (hormone) किसे कहते है तथा इसका अर्थ बताइये?

2. रासायनिक एकीकरण (Chemical equibrium) किसे कहते है तथा यह किसपर निर्भर करता है?
3. अंत:स्त्रावी ग्रंथि (Endocrine gland) किसे कहते है?
4. हमारे शरीर में कौन–कौन सी और कहाँ पर अंत:स्त्रावी ग्रंथियां पाई जाती है? बताइये।
5. बाल ग्रंथि (Thymus) पर टिप्पणी कीजिए?
6. निम्न अंत:स्त्रावी ग्रंथियों की संरचना का वर्णन कीजिए–
    1. पीयूष (Pituitary gland)
    2. अवटु ग्रंथि (Thyroid gland)
    3. परावटु ग्रंथि (Para thyroid gland)
    4. बाल–ग्रंथि (Thymus gland)
    5. अधिवृक्क (Adrenal or Suprarenal glands)
7. निम्न हॉर्मोन का वर्णन कीजिए–
    1. वृद्धि प्रेरक हॉर्मोन (Growth hormone)
    2. अवटुप्रेरक हॉर्मोन (Thyriod stimulating hormone)
    3. परावटुका प्रेरक हॉर्मोन (Parathyroid hormone)
    4. अधिवृक्क प्रांतस्थ प्रेरक हॉर्मोन (Adreno corticotrophic hormone)
    5. वर्णक–प्रेरक हॉर्मोन (Melanocyte stimulating hormone)
    6. जनन ग्रंथि प्रेरक हॉर्मोन
    7. मूत्रक रोधी हॉर्मोन (Anti diuretic hormone)
    8. आक्सीटोसिन (Oxytocin hormone)
    9. अल्प स्त्राव (Hypothyroidism)
    10. अतिस्त्राव (Hyper thyroidism)
    11. अल्प परावटुता (Hypo parathyroidism)
    12. अतिपरावटुता (Hyper parathyroidism)
8. अंत: स्त्रावी ग्रंथियों के कोई पाँच रोगों के नाम बताइये?
9. थाइराईड रोग (Thyroid disease) के कारण, लक्षण को बताते हुए, इसकी प्राकृतिक चिकित्सा लिखिए?
10. बांझपन (Sterility) के कारण, लक्षण को बताते हुए, इसकी प्राकृतिक चिकित्सा लिखिए?
11. नपुंसकता (Impotency) के कारण, लक्षण को बताते हुए, इसकी प्राकृतिक चिकित्सा लिखिए?

11.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

संदर्भ साहित्य	लेखक	संदर्भ साहित्य	लेखक
रोगों की अचूक चिकित्सा	जानकी शरण वर्मा	Fasting can sour your life	H.N. Shelton
प्रकृति से मैत्री	प्रकाशन विभाग	उपवास चिकित्सा	बर्नर मैकफेडन
आरोग्य की कुंजी	राष्ट्रपिता महात्मा गांधी	प्राकृतिक चिकित्सा	डॉ. सतीश गोयल

कुदरती चिकित्सा	राष्ट्रपिता महात्मा गांधी	Diet and diet reform	Sebastian kneipp
प्रेक्टिकल नेचर क्योर	डॉ. के. लक्ष्मण शर्मा	Food combining made easy	Dr. Herbert m. Shelton
The true healing art	R. T. Trall	The new science of healing, The doctrine of unity of diseases	Louis Kuhne and Benedict Lust
Mucusless diet healing system	Arnold ehret	A complete handbook of nature Cure – edition 4	Dr. H. K. Bakhru
Fasting can save your life	Dr. Herbert m. Shelton	My water-cure	Sebastian kneipp
वृहद प्राकृतिक चिकित्सा	डॉ. ओ. पी. सक्सेना	बिना औषधियों के कायाकल्प	पं. श्री राम शर्मा आचार्य
स्वस्थवृत विज्ञान	प्रो. रामहर्ष सिंह	निरोग जीवन का राज मार्ग	पं. श्री राम शर्मा आचार्य
प्राकृतिक स्वास्थ्य शास्त्र	आचार्य शेषांद्रि स्वामीनाथन	दीर्घ जीवन की प्राप्ति	पं. श्री राम शर्मा आचार्य
आदिऊर्जा प्राण	अमश्ता भारती	पंच तत्वों द्वारा सम्पूर्ण रोगों का निवारण	पं. श्री राम शर्मा आचार्य
स्वास्थ्य के सोपान	धनरूपमल सुराणा	रोगों की सरल चिकित्सा	विट्ठलदास मोदी
सरल प्राकृतिक चिकित्सा	डॉ. लक्ष्मी नारायण शर्मा	जीने की कला	विट्ठलदास मोदी
पातंजली योगसूत्र	स्वामी विवेकानंद	आरोग्य प्रकाश	वैद्यराज पं. रामनारायण शर्मा
प्राकृतिक चिकित्सा एवं योग	श्रीमत्ती राज कुमारी गुप्ता	मौलिक चिकित्सा कौन सी?	डॉ. चंचलमल चोरडिया
प्राकृतिक जीवन की ओर	श्री एडोल्फ जस्ट	100 वर्ष कैसे जीयें	आचार्य श्याम सुन्दर सुमन
100 वर्ष निरोगी रहिए	माणेक लाल म. पटेल	प्राकृतिक चिकित्सा दर्शन	हेनरी लिंडलार

इकाई 12

संवेदी ज्ञानेन्द्रियाँ एवं उसके रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा

(Sense organs & nature cure for its diseases)

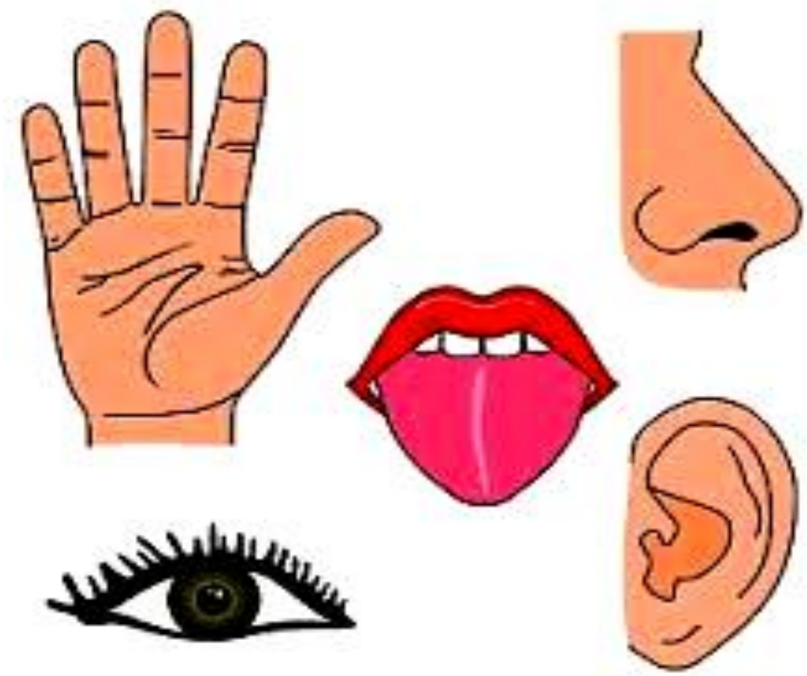

इकाई कि रूपरेखा

12.1 उद्देश्य

12.2 प्रस्तावना

12.3 संवेदी ज्ञानेन्द्रियाँ

12.4 संवेदी ज्ञानेन्द्रियों के रोगों की सूची

12.5 संवेदी ज्ञानेन्द्रियों के प्रमुख रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा

12.6 सारांश

12.7 बोधात्मक प्रश्न

12.8 संदर्भ ग्रंथों की सूची

12.1 उद्देश्य

1. – संवेदी ज्ञानेन्द्रियाँ

1. दर्शनेन्द्रिय- आंख, नेत्र (Eye) की संरचना

1. बाह्य तन्तुमय परत (Outer fibrous layer) 1. श्वेत पटल (Sclera) 2. स्वच्छ मण्डल (Cornea)	– नेत्र गोलक (Eye ball) की रचनाएं
2. मध्यम वाहिकीय परत (Middle vascular layer) 1. रंजित पटल (Choroid) 2. रोमक (Cilliary) पिण्ड 3. उपतारा (Iris)	1. लेन्स (Lens) 2. नेत्रोद (Aqueous humor)
3. आन्तरिक तन्त्रिका ऊतक की परत 1. दृष्टि पटल (Retina)	3. नेत्र काचाभ द्रव (Vitreous hu 4. दृष्टि तन्त्रिकाएं (Optic nerves)

– नेत्र की बाह्य पेशियां (Extra ocular)

1. सीधी पेशियां (Plain muscles)	2. तिर्यक पेशियां (Oblique muscles)
1. मध्यवर्ती रेक्टस 3. ऊर्ध्ववर्ती रेक्टस 2. पार्श्वीय रेक्टस 4. अधोवर्ती रेक्टस	1. उर्ध्व तिर्यक पेशी (Superior oblique muscle) 2. अधोवर्ती तिर्यक पेशी (Inferior oblique muscle)

– नेत्र के उपांग (Accessory organs of eye)

1. भौहें (Eye brow)	3. नेत्र श्लेष्मला पलकें (Eye conjunctiva)
2. नेत्रच्छद या पलकें (Eye lids)	4. पलकों के किनारे एवं बरौनी या पक्ष्म (Eyelids edges & Eyelashes)

– अश्रुप्रवाही उपकरण (Lacrimal apparatus)

– नेत्रों की क्रियाविधि

2. श्रवणेन्द्रिय- कान, कर्ण (Ear) की संरचना

1. बाह्य कर्ण (External ear or Outer ear)	1. कर्णपाली (Auricle or Pinna) 2. बाह्य कर्ण- कुहर (External auditory meatus) 3. कर्ण-पटह (Tympanic membrane or eardrum)
2. मध्यकर्ण या कर्णपटही गुहा (Middle ear or Tympanic cavity)	भित्तियाँ 1. पार्श्वीय या बाह्य भित्ति 4. ऊर्ध्ववर्ती तथा अधोवर्ती भित्तियां 2. अग्र भित्ति 5. मध्यवर्ती भित्ति 3. पश्च भित्ति 6. अण्डाकार गवाक्ष श्रवणीय अस्थिकाएं (Auditory ossicles) 1. मैलीयस 2. इन्कस 3. स्टैपीज
3. आन्तर कर्ण (Internal ear)	1. अस्थिल लेबीरिंथ (Bony labyrinth) 1. प्रघाण 2. कर्णावर्त 3. अर्धवृत्ताकार नलिकाएं 2. कलामय लैबीरिंथ (Membranous labyrinth)

– श्रवण की क्रियाविधि

– शरीर को सन्तुलन में रखना

2. – संवेदी ज्ञानेन्द्रियों के रोगों की सूची

3. – संवेदी ज्ञानेन्द्रियों के प्रमुख रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा

उपरोक्त सूचीबद्ध समस्त बिन्दुओं की जानकारी प्राप्त करना इस अध्याय का मूल उद्देश्य है।

12.2 प्रस्तावना

मानव शरीर में पांच ज्ञानेन्द्रियाँ होती हैं। ये मानव मस्तिष्क का सम्पर्क बाह्य जगत् से बनाती हैं। मनुष्य की बाह्यं जगत् के प्रति सजगता इन्हीं ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से बनी रहती है जिससे मानव अपना बचाव करने में सक्षम रहता हैं।

12.3 संवेदी ज्ञानेन्द्रियाँ

ये निम्नलिखित है:

1. दर्शनेन्द्रिय- आँख: इसके द्वारा व्यक्ति में बाह्या वस्तुओं को देखने की क्षमता आती हैं।
2. श्रवणेन्द्रिय- कान: इसके द्वारा व्यक्ति में ध्वनियो को सुनने की क्षमता आती हैं।
3. घ्राणेन्द्रिय- नाक: इसके द्वारा व्यक्ति में गन्ध को सूंघने की क्षमता आती हैं।
4. स्वादेन्द्रिय- जिह्वा: इसके द्वारा व्यक्ति में विभिन्न स्वादों को जानने की क्षमता आती हैं।
5. स्पर्शेन्द्रिय- त्वचा: इसके द्वारा व्यक्ति में स्पर्श, तापमान, वेदना को जानने की क्षमता आती हैं।

पूर्व के अध्यायों में नाक,जिह्वा: तथा त्वचा का वर्णन किया जा चुका हैं। अत: इस अध्याय में नेत्र (आंख) तथा कर्ण (कान) का ही वर्णन किया जायेगा।

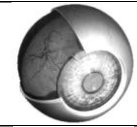	दर्शनेन्द्रिय - आँख
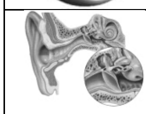	श्रवणेन्द्रिय- कान
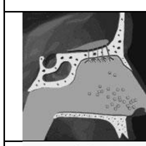	घ्राणेन्द्रिय - नाक

आँख या नेत्र (Eye ball)

नेत्र-संरचना

नाक की दायीं व बायीं दोनों तरफ एक-एक नेत्र, नेत्र कोटरीय गुहा (Orbital cavity) में स्थित होता हैं। इसका आकार लगभग गोल होता हैं। इसका व्यास लगभग 2.5 सेमी. होता हैं। इसे नेत्र गोलक (Eye ball) कहते हैं।

नेत्र संरचना: नेत्र भित्तियाँ ऊतक की तीन परतों से मिलकर बनी होती है:-

1. बाह्य तन्तुमय परत **(Outer fibrous layer)** : इस परत में श्वेत पटल (Sclera) तथा स्वच्छ मण्डल (Cornea) होता हैं।
2. मध्यम वाहिकीय परत **(Middle vascular layer)** : इस परत में रंजित पटल (Choroid), रोमक पिण्ड (Cilliary body) तथा उपतारा (Iris) होते हैं।
3. आन्तरिक तन्त्रिका ऊतक की परत : इस परत में दृष्टि पटल होता हैं।

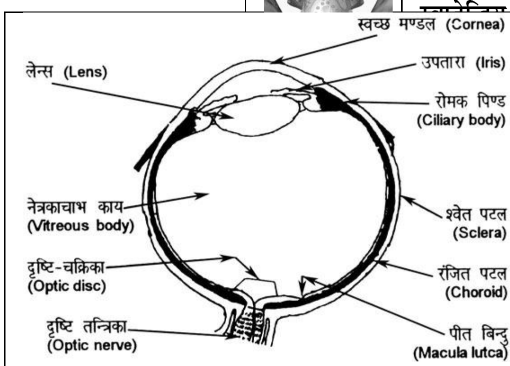

नेत्र-संरचना (Eye structure)

श्वेत पटल **(Sclera)** :

यह नेत्र गोल के पश्चज व पाश्र्वीय पक्षों की बाहरी दृढ़ तन्तुमय ऊतक की श्वेत परत होती हैं। यह बाहर से नेत्रों का सफेद दिखाई देने वाला भाग होता हैं।

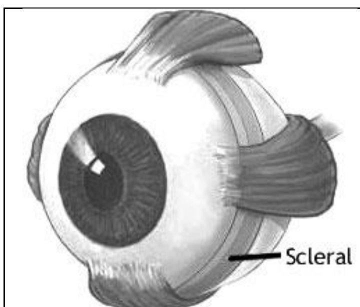

श्वेत पटल (Sclera)

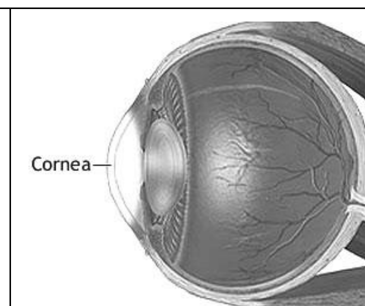

स्वच्छ मण्डल (Cornea)

स्वच्छ मण्डल (Cornea) :

श्वेत पटल (Sclera) आगे की ओर एक साफ पारदर्शक उपकलापरक कला (Epithelial membrane) मिल जाती है, जिसे स्वच्छ मण्डल कहते हैं।

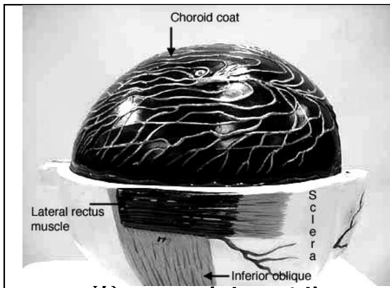

रंजित पटल (Choroid)

रंजित पटल (Cornea) :

श्वेत पटल **(Choroid)** की आन्तरिक सतह के पिछले भाग पर नेत्र गोलक के भित्ति की बीच के कत्थई रंग की परत रंजित पटल(Sclera) होती हैं।

रोमक पिण्ड **(Cilliary body)**

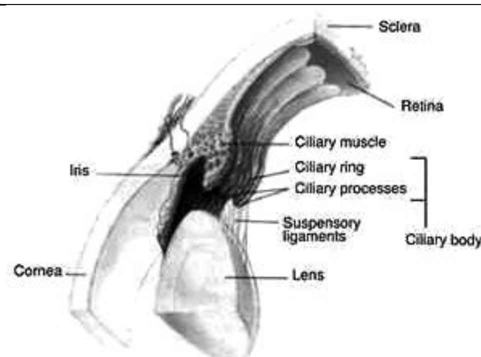

रोमक पिण्ड (Cilliary body)

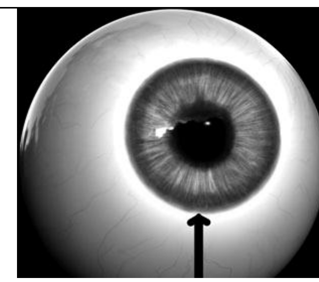
उपतारा (Iris)

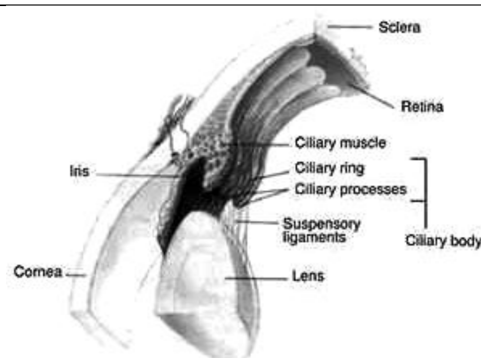

रोमक पिण्ड (Cilliary body)

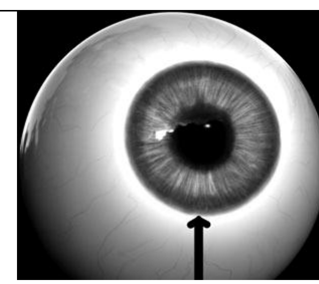
उपतारा (Iris)

रोमक पिण्ड (Cilliary body)

रंजित पटल (Choroid)की निरन्तरता में अरेखित पेशी तन्तुओं तथा स्रावी उपकला कोशिकाओं से बना एक-एक रोमक पिण्ड (Cilliary body) होता हैं।

उपतारा **(Iris) :**

रोमक पिण्ड से आगे उसी का प्रसारण (extension) उपतारा (Iris) होता हैं। जो स्वच्छ मण्डल के पीछे तथा लेन्स के आगे स्थित होता हैं। इससे नेत्र का अग्र खण्ड अग्र एव पश्च कक्षों (Chambers) में विभाजित हो जाता हैं। उपतारा रंगीन होता हैं। इसका रंग उसमें विद्यमान वर्णक कोशिकाओं के अनुरूप होता हैं।

दृष्टि पटल (Retina) :

आन्तरिक परत तन्त्रिका ऊतक की होती है, जिसे दृष्टि पटल (Retina) कहते हैं। यह पीछे की ओर मोटा तथा आगे की ओर पतला होता चला जाता हैं। रोमक पिण्ड के ठीक पीछे इसका अन्त हो जाता हैं। दृष्टि पटल लम्बी छड़ के आकार की कोशिकाओं, शालाकाओं, (Rods) शंकु के आकार की कोशिकाओं तथा शंकुओं (Cones) से युक्त होता है, जो अपने भीतर विद्यमान प्रकाश संग्राही वर्णकों

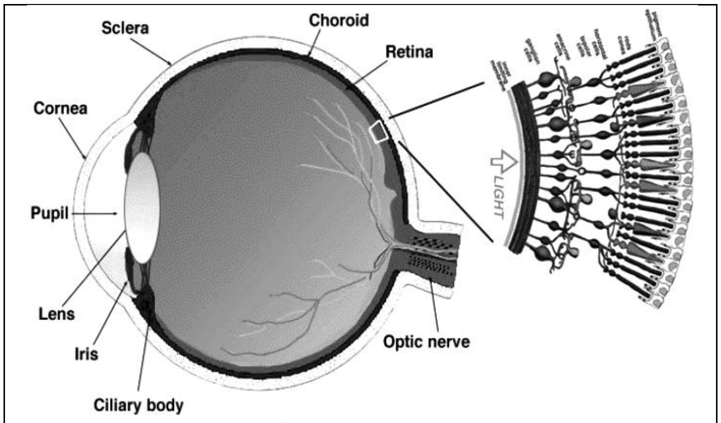

दृष्टि पटल (Retina)

(Photosensitive pigment) के कारण प्रकाश के प्रति अति संवेदनशील होता हैं। दृष्ठि पटल का पिछला भाग नेत्र बुध्र (Fundus ocili) कहलाता हैं। इसका पीला क्षेत्र पीत बिन्दु (Macula lutea) तथा केन्द्र का गड्ढा केन्द्रीय गर्तिका (Fovea centralis) कहलाता हैं। दृष्टिं पटल के केन्द्र में एक छोटा सा क्षेत्र दृष्टि चक्रिका (Optic disc) होता है, जिसमें प्रकाश की किरणों का अनुभव नहीं होता। अत: इसे अन्ध बिन्दु (Blind spot) भी कहते हैं। दृष्टिं पटल के सभी तन्त्रिका तन्तु दृष्टि-चक्रिका पर दृष्टि तन्त्रिका (Optic nerve) का निर्माण करते हैं। दृष्टिं तन्त्रिका रेटिना से मस्तिष्क में आवेग (impulses) संचारित करती हैं।

नेत्र गोलक (Eye ball) के भीतर की रचनाएं :

लेन्स **(Lens) :**

यह पुतली Pupil के ठीक पीछे अत्यन्त लचीली वृत्ताकार (circular) द्विउन्नतोदर पारदर्शक रचना हैं। यह एक पारदर्शक सम्पुट के भीतर बन्द रहता है तथा निलम्बक स्नायु (Suspensory ligament) द्वारा रोमक पिण्ड से लटका रहता हैं। विभिन्न दूरियों की वस्तु देखने के लिए उसकी मोटाई में परिवर्तन हो जाता हैं। नजदीक की वस्तु देखने के लिए मोटाई अधिक व दूर की वस्तु के लिए कम हो जाती हैं।

नेत्रोद **(Aqueous humor) :** अग्र व पश्च दोनों कक्षों में रोमक पिण्ड द्वारा पश्च कक्ष में स्रवित एक साफ तरल (fluid) होता है, जिसे नेत्रोद कहते हैं। नेत्रोद का निरन्तर उत्पादन तथा निकासी होती रहती है, परन्तु अन्त: चाक्षुष दाब (Intraocular pressure) एक सा (10-20 mm Hg) बना रहता हैं। नेत्रोद सामने वाली पारदर्शक रचनाओं, जैसे स्वच्छ मण्डल, लेन्स, लेन्स, कैप्सूल को पोषकों की आपूर्ति करता है तथा त्याज्य पदार्थों को पृथक करता हैं।

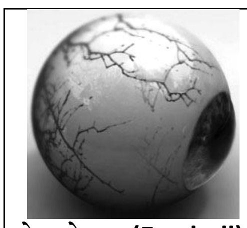

नेत्र गोलक (Eye ball)

लेन्स (Lens)

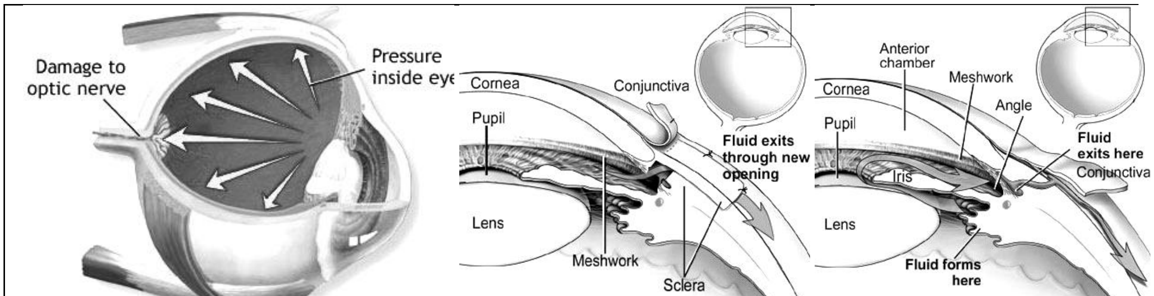

नेत्रोद (Aqueous humor)

नेत्र काचाभ द्रव

दृष्टि तन्त्रिकाएं

नेत्र काचाभ द्रव (Vitreous humor)

:

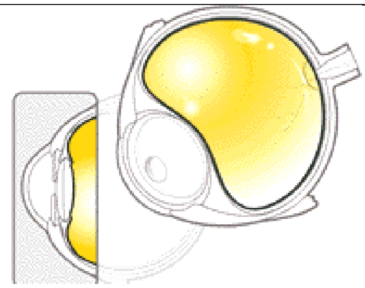
नेत्र काचाभ द्रव

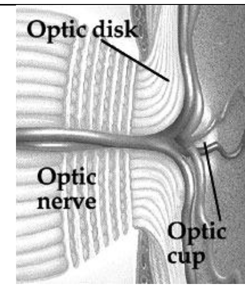

दृष्टि तन्त्रिकाएं

नेत्र गोलक के शेष लेन्स से पीछे रेटिना तक के भाग में एक कोमल, रंगहीन, पारदर्शक जैली के समान पदार्थ भरा होता है, जिसे नेत्रकाभाच द्रव कहा जाता हैं। यह दृष्टिं पटल को रंजित पटल से चिपका रखने के लिए तथा नेत्र गोलक की भित्तियों को पिचकने से रोकने के लिए पर्याप्त अन्त: चाक्षुष दाब को बनाए रखता हैं।

दृष्टि तन्त्रिकाएं **(Optic nerves) :**

दृष्टिं तन्त्रिकाएं प्रकाश संवेद की दो तन्त्रिकाएं होती हैं। दृष्घि तन्तुओं का उद्गम दृष्टि पटल में होता हैं।

नेत्र की बाह्य पेशियां (Extra ocular)

नेत्र गोलकों में 6 बाह्यं पेशियों द्वारा गतियां होती है, जो एक सिरे पर नेत्र गोलक से तथा दूसरे सिरे पर नेत्र कोटरीय गुहा की भित्तियों से संलग्न रहती हैं। इनमें से चार पेशियां सीधी तथा दो तिर्यक होती हैं।

सीधी पेशियां **(Plain muscles) :**

मध्यवर्ती रेक्टस (Medial rectus)

पाश्र्वीय रेक्टस (Lateral rectus)

ऊध्र्ववर्ती रेक्टस (Superior rectus)

अधोवर्ती रेक्टस (Inferior rectus)

तिर्यक पेशियां **(Oblique muscles) :**

उध्र्व तिर्यक पेशी (Superior oblique muscle)

अधोवर्ती तिर्यक पेशी (Inferior oblique muscle)

ये पेशियां नेत्र गोलक को विभिन्न दिशाओं में घुमाने का कार्य करती हैं।

नेत्र के उपांग **(Accessory organs of eye)**

नेत्र के निम्नलिखित उपांग होते है:

1. भौहें **(Eye brow) :** ललाटास्थि (Frontal bone) के ऊध्र्वाक्षिक किनारों (Supraobital margins) पर कुछ घुमावदार कटक (Ridges) होते हैं जिनके ऊपर स्थित त्वचा पर बाल उगे होते हैं, जो त्वचा की सतह से तिरछेपन के साथ निकले होते हैं।

2. नेत्रच्छद या पलकें **(Eye lids) :** पलकें प्रत्येक नेत्र के सामने ऊपर व नीचे पतली त्वचा से आच्छादित पतले अवकाशी ऊतक (Areolar tissue) की दो गतिशील परतें होती हैं।

3. नेत्र श्लेष्मला पलकें **(Eye conjunctiva) ::** एक पतली गुलाबी झिल्ली से ढकी रहती है, जिसे नेत्र श्लेष्मला कहते हैं। ये पलट कर नेत्र गोलक के सामने वाले भाग को आच्छादित करती हैं।

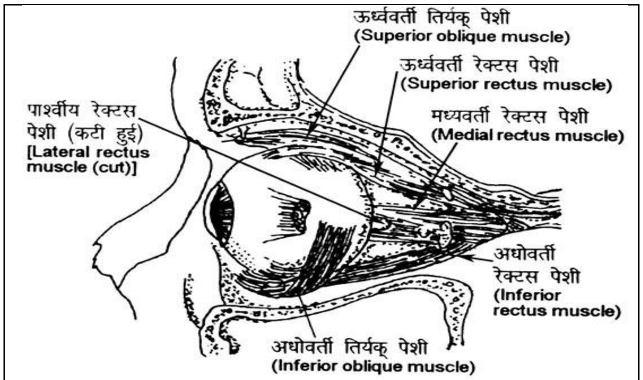

नेत्र की बाह्य पेशियां (Extra ocular)

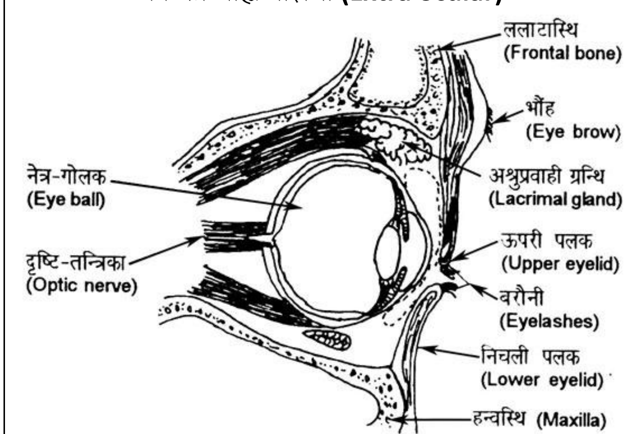

नेत्र के उपांग (Accessory organs of eye)

4. पलकों के किनारे एवं बरौनी या पक्ष्म **(Eyelids edges & Eyelashes) :** पलकों के मुक्त किनारों पर बहुत सी त्वग्वसीय ग्रंथियां (Lacrimal gland) होती है, जिनसे तैलीय पदार्थ स्रवित होता हैं। इन्हीं किनारों पर छोटे-छोटे घुमावदार बाल उगे होते हैं जिन्हें बरौनी या पक्ष्म कहते हैं।

अश्रुप्रवाही उपकरण (Lacrimal canaliculi)

प्रत्येक नेत्र एक अश्रुप्रवाही उपकरण होता है जो एक अश्रुप्रवाही ग्रन्थि (Lacrimal gland) और उसकी वाहिनियां दो अश्रुप्रवाही सूक्ष्म नलिकाओं (Lacrimal canaliculi) एक अश्रुप्रवाही कोष (Lacrimal sac) एक नासा अश्रुप्रवाही वाहिनी (Nasolacrimal duct) से बनता हैं।

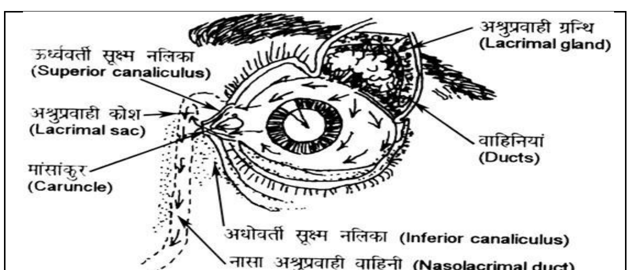

अश्रुप्रवाही उपकरण (Lacrimal apparatus)

नेत्रों की क्रियाविधि

प्रत्येक नेत्रगुहा में नेत्र गोलक के ऊपर और पाश्र्व में एक अश्रुप्रवाही ग्रंथि होती हैं। इनमें आंसू का निर्माण होता हैं। ये आंसू क्रमश: छोटी-छोटी वाहिनियों, अश्रुप्रवाही सूक्ष्म नलिकाओं, अश्रुप्रवाही कोश तथा नासा अश्रुप्रवाही वाहिनी से होते हुए नासिका में पहुंच जाते हैं। आंसू में जल, लवण तथा एक जीवाणु नाशक एन्जाइम, लाइसोजाइम (Lysozyme) होता हैं। आंसू व तैलीय स्राव श्लेष्मल कोष में भरे रहते हैं। ये नेत्र गोलक को तर रखते हैं।

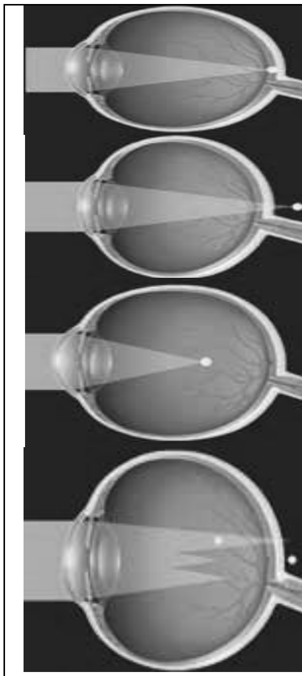
नेत्रों की क्रियाविधि

नेत्रों की क्रियाविधि

नेत्रों से संसार की वस्तुओं को देखा जाता हैं। दृष्टि ï क्षेत्र में आने वाली वस्तुओं से प्रकाश नेत्रों को परावर्तित हो जाता हैं। प्रकाश की किरणें जब एक घनत्व वाले माध्यम से भिन्न घनत्व वाले माध्यम में गुजरती हैं तो वे अपवर्तित (abducts) हो जाती है या झुक जाती हैं। नेत्र में प्रकाश के दृष्टिï पटल पर केन्द्रित होने में इस सिद्धान्त का उपयोग होता हैं। दृष्टि ï पटल पर पहुंचने से पूर्व प्रकाश की किरणें नेत्रों के पारदर्शक अपवर्तक माध्यमों अर्थात् क्रमश: नेत्रश्लेष्मला, स्वच्छ मण्डल, नेत्रोद, लेन्स तथा नेत्र काचाभ वायु के घनत्व से अधिक घनत्व वाले होते हैं और उनकी समान अपवर्तक शक्ति होती हैं। लेन्स ही ऐसी रचना है , जिसकी अपवर्तक शक्ति घटती-बढ़ती रहती हैं। नेत्र में प्रवेश करने वाली सभी प्रकाश किरणों को दृष्टिï पटल पर केन्द्रित होने के लिए अपवर्तन की आवश्यकता होती हैं।

दूर की वस्तुओं को देखने के उनसे आने वाले प्रकाश को कम अपवर्तन तथा पास की वस्तुओं को देखने के लिए अधिक अपवर्तन की आवश्यकता होती हैं। दूर की वस्तुओं को देखने के लिए लेन्स पतला हो जाता है, जिससे लेन्स की अपवर्तक शक्ति कम हो जाती हैं। इसके विपरीत पास की वस्तुओं को देखने के लिए लेन्स की अग्र सतह आगे निकल आती है, जिससे उसकी अपवर्तक शक्ति बढ़ जाती हैं।

प्रकाश किरणें लेन्स से अपवर्तित (abducts) होकर दृष्टिï पटल पर पड़ती हैं। देखी जाने वाली वस्तुएं दृष्टिï पटल में छोटी व उल्टी होती हैं। दृष्टि ï पटल प्रकाश सुग्राही होता हैं। इसमें विद्यमान शंकु तीव्र प्रकाश एवं रंग के प्रति संवेदनशील होते हैं , अत: इनका सम्बन्ध दिन में दिखायी देने तथा रंगों की पहचान से होता हैं। शलाकाएं मन्द या धुंधले प्रकाश में उद्दीप्त हो जाती है , अत: इनका सम्बन्ध रात्रि या धुंधले प्रकाश में दिखायी देने से होता हैं।

शलाकाओं में एक विशिष्ट प्रकाश सुग्राही वर्णक विजुअल पर्पिल (Visual purple) या रोह्डोप्सिन (Rhodopsin) पाया जाता हैं। तीव्र प्रकाश में विजुअल पर्पिल विरंजित (Bleached हो जाता है तथा विटामिन ए द्वारा तुरन्त बन जाता हैं। इसलिए विटामिन ए की कमी से निशान्धता या रतौंधी (Nyctalopia or Night blindness) हो जाती हैं।

प्रकाश की किरणें दृष्टि ïपटल पर पहुंच कर प्रकाश सुग्राही वर्णकों में रासायनिक परिवर्तन लाकर शलाकाओं और शंकुओं को उद्दीप्त करती हैं। इनसे तन्त्रिका आवेग (impulses) निकलते हैं जो दृष्टि ï

तन्त्रिकाओं द्वारा प्रमस्तिष्क के पश्चकपालीय खण्ड के प्रमस्तिष्कीय प्रान्तस्था (Cerebral cortex) में पहुंचते है और उसके दृष्टिं क्षेत्र में संवेदनाएं उत्पन्न होती है और वस्तुएं सीधी दिखायी देती हैं।

कान या कर्ण (Ear)

कानों का कार्य सुनना तथा शरीर को सन्तुलन में रखना हैं। प्रत्येक कान के तीन भाग होते है:

1. बाह्य कर्ण (External ear or Outer ear)

इसके दो भाग होते है- कर्णपाली तथा बाह्य कर्ण- कुहर।

कर्णपाली **(Auricle or Pinna) :** सिर के पाश्र्व से बाहर को निकला रहने वाला फैला हुआ कान का भाग कर्णपाली कहलाता हैं। इसका ऊपरी दो तिहाई भाग तन्तुमय लचीली उपास्थि से बना हुआ होता है तथा निचले एक तिहाई भाग (Ear lobule) में उपास्थि नहीं होती। यह तन्तुमय वसीय ऊतक (adipose tissue) से बना होता हैं। कर्णपाली कान की रक्षा करती हैं। तथा ध्वनि तंरगों को पकड़ने में मदद करती हैं।

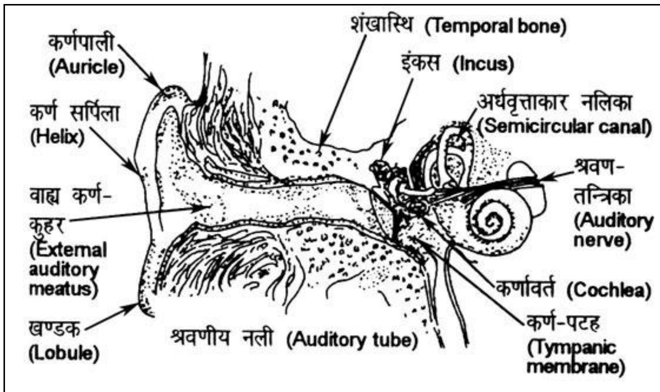

कान की रचना (Ear structure)

बाह्य कर्ण- कुहर (External auditory meatus) :

मध्यकर्ण या कर्णपटही गुहा

यह कर्णपाली से भीतर कर्ण पर ही Tympanic membrane or eardrum) तक जाने वाली कुछ घुमावदार लगभग 2.5 सेमी. लम्बी नली होती हैं। यह कर्ण पटह द्वारा मध्यकर्ण से अलग रहती हैं। इसका बाह्यां एक तिहाई भाग उपास्थि से बना होता है तथा शेष भाग एक नली के रूप में शंखास्थि (Temporal bone) में चला जाता हैं। कुहर रोमिल त्वचा से ढका रहता हैं। इसकी बाह्यं एक तिहाई भाग की त्वचा में स्थित त्वग्वसीय ग्रन्थियों से तैलीय स्राव तथा कर्णगूथीय ग्रन्थियों (Ceruminous glands) से कान का मैल निकलता हैं। कान के मैल, बालों तथा कुहर के घुमावदार होने से धूल के कण, कीटाणु आदि कान के भीतर नहीं जा पाते।

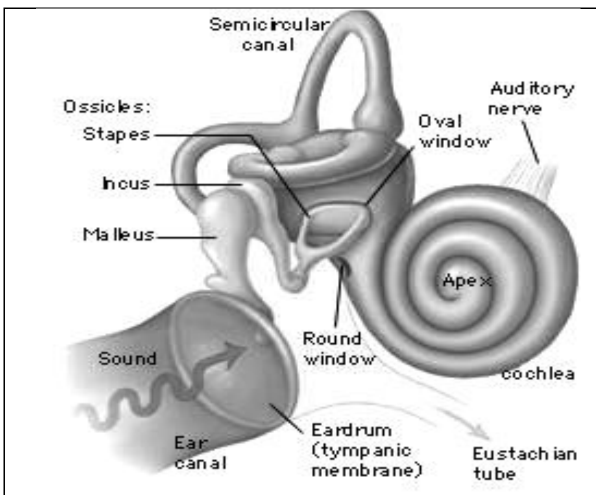

मध्यकर्ण या कर्णपटही गुहा

कर्ण-पटह (Tympanic membrane or eardrum)

यह बाह्य कर्ण-कुहर को मध्य कर्ण से पूर्णतया अलग करने वाली झिल्ली होती है, जिसका कुछ चौड़ा सिरा ऊपर की ओर होता हैं। यह बाह्यं कर्ण-कुहर की ओर बहुत पतली त्वचा तथा मध्य कर्ण की ओर श्लैष्मिक कला से ढका होता हैं। श्लैष्मिक कला मध्य कर्ण की श्लैष्मिक कला में विलीन हो जाती हैं।

2. मध्यकर्ण या कर्णपटही गुहा

(Middle ear or Tympanic cavity)

मध्यकर्ण कर्ण पटह के भीतर शंखास्थि में स्थित लगभग 1 सेमी. आयतन वाली असमाकृति की एक गुहा होती है, जो श्लैष्मिक कला से ढक़ी होती हैं। मध्यकर्ण में तीन छोटी हड्डियां होती हैं।
मध्यकर्ण की गुहा में निम्नलिखित 6 भित्तियां होती है-

1. पाश्र्वीय या बाह्यं भित्ति: यह कर्णपटही कला से बनती हैं।

2. अग्र भित्ति: यह शंखास्थि से बनी होती हैं।

3. पश्च भित्ति: यह शंखास्थि (Temporal bone) से बनी होती है जिसमें कुछ छिद्र होते हैं, जो कर्णमूल कोटर (Mastoid antrum) में खुलते हैं। इन्हीं छिद्रों से होकर वायु कर्णमूल वायु कोशिकाओं में पहुंचती हैं।

4. ऊध्र्ववर्ती तथा अधोवर्ती भित्तियां: ये दोनो शंखास्थि से बनी होती हैं।

5. मध्यवर्ती भित्ति: मध्यवर्ती या आन्तरिक भित्ति शंखास्थि की एक पतली परत होती हैं। इसमें से दो गवाक्ष आन्तर कर्ण में खुलते हैं।

6. अण्डाकार गवाक्ष: यह तन्तुमय ऊतक की एक पतली परत से ढक़ा होता है, जिसे द्वितीयक कर्ण पटही कला भी कहा जाता हैं।

मध्यकर्ण की गुहा का सम्बन्ध श्रवणीय नली द्वारा नासा ग्रसनी से होता हैं। श्रवणीय नली श्लैष्मिक कला से ढकी 3-4 सेमी. लबी नली होती हैं। सांस के साथ ली गयी नासाग्रसनी में विद्यमान वायु मध्यकर्ण की गुहा में पहुंचती हैं। उसी प्रकार बाह्यं कर्ण-कुहर से वायु बाह्यं कर्ण में पहुंचती हैं। इस तरह कर्ण-पटह की दोनों ओर वायु दाब समान बना रहता है तथा वायुमण्डलीय दाब परिवर्तन का कर्ण पटह पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

श्रवणीय अस्थिकाएं

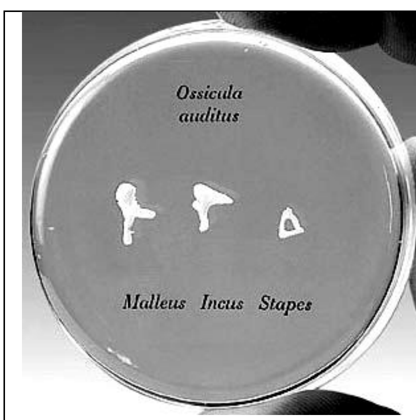

श्रवणीय अस्थिकाएं

मध्यकर्ण की गुहा में कर्णपटह से लेकर मध्यवर्ती भित्ति पर स्थित अण्डाकार गवाक्ष तक तीन बहुत छोटी-छोटी हड्डियां होती हैं। ये एक दूसरे के साथ तथा मध्यवर्ती भित्ति से जुडक़र गतिशील सन्धियों की एक श्रंखला बनाती हैं।
मैलीयस: यह हथौड़े के आकार की होती हैं। इसका हैण्डिल कर्णपटह के सम्पर्क में रहता है तथा शीर्ष इन्कस से जुड़ा रहता हैं।
इन्कस: यह निहाई के आकार की, बीच में स्थित होती हैं। यह काय द्वारा मैलीयस से तथा लम्बे प्रवर्ध द्वारा स्टैपीज से जुड़ी हैं।

स्टैपीज: यह रकाबी के आकार की हड्डी होती हैं। इसका शीर्ष इन्कस से जुड़ा रहता है तथा आधार अण्डाकार गवाक्ष में फिट रहता हैं।

3. आन्तर कर्ण

इसके दो भाग होते है-

1. अस्थिल लेबीरिंथ

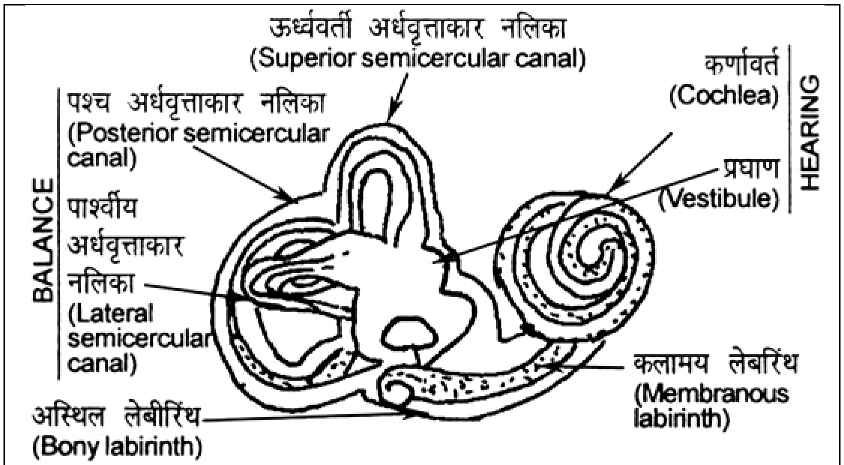

आन्तर कर्ण (Internal ear)

आन्तर कर्ण
यह शंखास्थि के भीतर अस्थि के आवरण से ढकी एक गुहा होती हैं। इसके तीन भाग होते हैं।
1. प्रघाण यह मध्यकर्ण के पास को फैला हुआ भाग होता है इसी भाग में अण्डाकार गोल गवाक्ष होते हैं। इसमें स्थित परिलसीका युक्त स्थान विशिष्टं अस्थिल प्लेट द्वारा दो भागों स्कैला टिम्पैनाई तथा स्कैला वेस्टीब्यूल मे विभाजित रहता हैं। जो शिखर पर जुड़े रहते हैं।

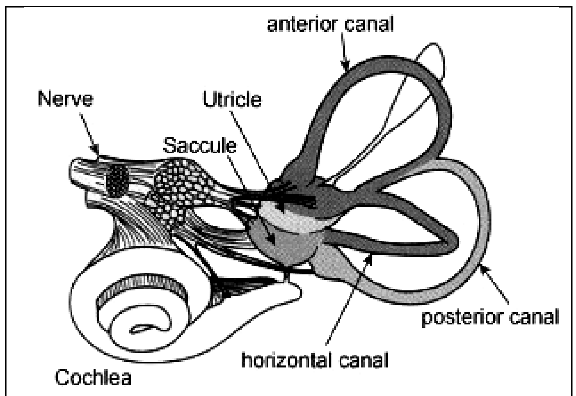

प्रघाण (Vestibule)

अनुप्रस्थ काटने पर कर्णावर्त त्रिभुजाकार दिखायी देता हैं। आधारी कला (अर्थात् त्रिभुज का आधार) पर एवं स्नायु उपकलापरक कोशिकाएं एवं तन्त्रिका तन्तु स्थित होते हैं। इनमें से बहुत सी कोशिकाएं लम्बी व संकीर्ण होती हैं तथा पास-पास सटी रहती हैं। इन कोशिकाओं तथा इनके तन्त्रिका तन्तुओं से वास्तविक श्रवण अंग का निर्माण होता हैं।

तन्त्रिका वास्तविक श्रवण अंग का निर्माण होता हैं। तन्त्रिका तन्तुओं के संयोजन से ही आठवीं कपालीय तन्त्रिका का श्रवणीय भाग) बनता है जो शंखास्थि में विद्यमान एक रन्ध्र से होकर प्रमस्तिष्क के शंखास्थि खण्ड के श्रवणीय क्षेत्र में पहुंचता हैं।

2. कर्णावर्त: यह अस्थिल लैबीरिंथ का शंक्वाकार भाग होता हैं। इसका चौड़ा आधार प्रघाण में विलीन हो जाता है तथा शिखर पतला है यह एक केन्द्रीय शंक्वाकार अस्थिल अक्ष के चारों ओर कुण्डलित होता हैं। जो घोंघे के कवच के समान दिखाई देता हैं।

3. अर्धवृत्ताकार नलिकाएं: प्रघाण के एक ऊध्ववर्ती, एक पश्चज तथा एक पाश्र्वीय तीन अर्धवृत्ताकार नलिकाएं होती हैं।

2. कलामय लैबीरिंथ:

यह आकृति में अस्थिल लैबीरिंथ के समान होता है, परन्तु उससे छोटा होता हैं। यह ट्यूब के समान अस्थिल लैबीरिंथ में फिट रहता है तथा परिलसीका द्वारा उससे अलग रहता हैं। इसमें सुनने तथा शरीर को सन्तुलित रखने से सम्बन्धित तन्त्रिकान्तांग होते हैं। इसमें अन्त: लसीका अथवा अन्त कर्णोद नामक विशेष प्रकार का तरल भरा रहता हैं। इसमें भी अस्थिल लैबीरिंथ के समान नामों वाले तीन भाग होते हैं।

श्रवण की क्रियाविधि

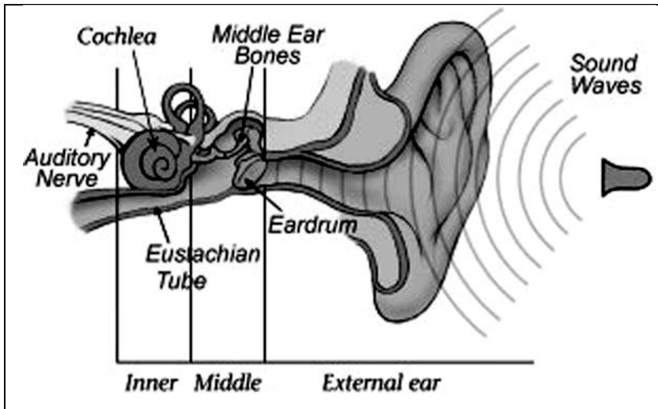

श्रवण की क्रियाविधि

जब किसी प्रकार की ध्वनि उत्पन्न होती है, तो उससे ध्वनि तरंगे निकलती है, जो लगभग 332 मीटर प्रति सेकेण्ड की गति से आगे बढ़ती हैं। कर्णपाली अपनी आकृति के कारण ध्वनि तरंगों को सकेंन्द्रित करती है और उन्हें कर्ण-कुहर को निर्देशित कर देती है , जो कर्ण पटह में कम्पन्न उत्पन्न करती हैं। एक-दूसरे से संलग्न होने के कारण कर्ण-पटह से कम्पन्न क्रमश: मैलीयस , इन्कस तथा स्टैपीज अस्थिका में पहुंच जाता हैं। अपने मध्यवर्ती सिरे पर स्टैपीज अस्थिका का आधार अण्डाकार गवाक्ष पर इधर-उधर झूलता है , जिससे परिलसीका में तरल तरंगे पैदा होती हैं। इनसे कलामय लैबीरिंथ दब जाता है, जिससे अन्त:लसीका में एक तरंग गति उत्पन्न होती है, जो वास्तविक श्रवण अंग की स्नायु उपकला परक कोशिकाओं को उद्दीप्त करती हैं। इससे तन्त्रिका आवेग उत्पन्न होते हैं , जो आठवीं कपालीय तन्त्रिका के कॉक्लियर भाग से होकर मस्तिष्क में पहुंचते हैं। अन्त में मध्य कर्ण के गोल गवाक्ष की कला में कम्पन होने से तरल तरंग का प्रभाव समाप्त हो जाता हैं। कॉक्लियर भाग के द्वारा तन्त्रिका आवेग प्रमस्तिष्क के श्रवण क्षेत्र में संचारित होते हैं जहां पर विश्लेषण होता है कि ध्वनि कैसी है- प्रिय अथवा अप्रिय, शोर अथवा संगीत की?

शरीर को सन्तुलन में रखना

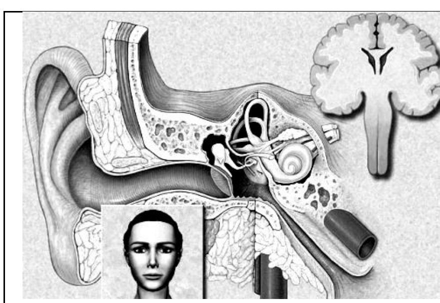
शरीर को सन्तुलन में रखना

कानों के अस्थिल व कलामय लैबीरिंथ में स्थित अर्धवृत्ताकार नलिकाएं शरीर को साम्यावस्था एवं सन्तुलन में बनाए रखने में सहायक होती हैं। ये नलिकाएं एक बाह्य अस्थिल भित्ति और आन्तरिक कलामय वाहिनियों की बनी होती हैं। कलामय वाहिनियों में अन्त:लसीका होता है, जो परिलसीका द्वारा अस्थिल भित्ति से पृथक् रहता हैं। इनमें वेस्टीबुलर तन्त्रिकाओं के अन्तांग (अन्तिम सिरे या छोर) होते हैं। जब शरीर का सन्तुलन बिगड़ता है, तो परिलसीका तथा अर्धवृत्ताकार नलिकाओं में विद्यमान अन्त:लसीका में गति होती हैं। इससे वेस्टीबुलर तन्त्रिकाओं के

अन्तिम छोर उद्दीप्त हो जाते हैं और परिणामी तन्त्रिका आवेग वेस्टीबुलर तन्त्रिकाओं द्वारा मस्तिष्क में संचारित हो जाते हैं।

जब कोई व्यक्ति अचानक एक दिशा में गिरने लगता है, तो उसके सिर की प्रवृत्ति विपरीत दिशा में मुडऩे की होती है, जिससे भार समायोजित हो जाता है और व्यक्ति गिरने से बच जाता हैं। शरीर की यह प्रतिक्रिया अर्धवृत्ताकार नलिकाओं के तरल की स्थिति में परिवर्तन से उद्दीप्त आवेग के कारण होती हैं।

12.4 **संवेदी ज्ञानेन्द्रियों के रोगों की सूची**

1. दर्शनेन्द्रिय- आँख के रोग

क्र.	हिन्दी या संस्कृत नाम	English name	क्र.	हिन्दी या संस्कृत नाम
1.	दूर दृष्टि दोष	Long sight, Hypermetropia	16.	आँख का लाल होना
2.	निकट दृष्टि दोष	Short sight, Mayopia	17.	आँख से पानी आना
3.	मोतियाबिन्द (सफेद पानी)	Cataract	18.	आँख का जाला
4.	मोतियाबिन्द (काला पानी)	Glaucoma	19.	आँख का मांडा
5.	वर्ण दृष्टि	Color blindness	20.	आँख में फुल्ली
6.	भैंगापन, द्विदृष्टि	Dabble vision	21.	अंधापन
7.	अर्द्ध दृष्टि	Parshal blindness	22.	गुहांजनी
8.	पीलिया	Jaundice	23.	रोहा
9.	आँख में आना	Conjuctivitis	24.	बरौनियों का झड़ना
10.	धुन्द या धुंधलापन	Claudyness	25.	पैनस
11.	दिनौंधी (दिन को न दिखना)		26.	आँख में फुंसी
12.	रतौंधी (रात को न दिखना)		27.	आँख में माँस बढ़ना
13.	आँख का दर्द		28.	आँख का संक्रमण
14.	आँख में सूजन			
15.	आँख में खुजली			

2. श्रवणेन्द्रिय- कान के रोग

क्र.	हिन्दी या संस्कृत नाम	क्र.	हिन्दी या संस्कृत नाम
1.	कान दर्द	5.	कान में दुर्गन्ध आना
2.	कान में व आसपास सूजन	6.	कान में गुंजन सुनाई देना, कर्णनाद
3.	कान में फोड़ा	7.	कम सुनाई देना, बहरापन
4.	कान का बहना, पीव बहना	8.	सुनाई नहीं देना

12.5 **संवेदी ज्ञानेन्द्रियों के प्रमुख रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा**

1. चश्में से मुक्ति

परिचय : आज का युवा चश्मा लगाना अधिक पसन्द करता है। कम आयु में ही नम्बर वाले चश्मा लगाने का फैशन चल पड़ा है। जिससे दिखने में तो सौ प्रतिशत सुधार लगता ही होगा , लेकिन उससे उन लोगों को एक बहुत बड़ा अप्रत्यक्ष नुकसान होता है कि वे चश्मा की वज़ह से अनेकों बार प्राकृतिक व्यायाम से वंचित रह जाते है। जिससे उनके अन्दर आँख की दृष्टि या नम्बर में और परिवर्तन होता रहता है और वे अनजाने में ही अपनी नज़र या दृष्टि को कमजोर कर बैठते है।

कारण : बचपन से ही अप्राकृतिक जीवन-शैली में खान-पान , रहन-सहन के गलत तरीके आँख की दृष्टि को कमजोर बना देते है। उनका गरिष्ठ भोजन, असंतुलित भोजन, उत्तेजक पदार्थ, ज्यादा अम्लीय, ज्यादा गरम, ज्यादा ठण्ड़ा एवं तेज मिर्च-मसालों का सेवन करने से बेवज़ह पेट के रोगों आमंत्रित करते है , जिसका सीधा असर आँखों पर पड़ता है। जल्दी-जल्दी खाना , खाते ही सो जाना , देर रात तक काम करना, सुबह देर से उठना, उठते रसायनों का सेवन करना, पेट की सफाई समय-समय पर न करना आदि दैनिक दिनचर्या के कारण आँखों की अनेकानेक समस्याएँ पैदा हो जाती है।

ऊँची एड़ी के चप्पल या जूते पहनना , लेटकर पढऩा, चलते हुए पढऩा, बस या चलते वाहनों में पढऩा , टी.वी.-कम्प्यूटर-मोबाइल पर ज्यादा काम करना, उचित व्यायाम नहीं करना, यात्रा व ड्राईविंग के समय कोमल आँखों का बचाव नहीं करना आदि कारण आँखों को रोगग्रस्त बना देते है।

यदि शरीर में विजातीय द्रव्य बढ़ता ही रहें तो स्वाभाविक है कि आँखों को नुकसान तो जरूर होगा।

प्राकृतिक चिकित्सा : जो लोग उक्त कारणों पर विशेष ध्यान रखते हुए अपनी दैनिक दिनचर्या में सुधार कर लेते है, वे आँख ही नहीं शरीर के समस्त अंग-प्रत्यंगों को स्वस्थ रखकर जीवन का आनन्द लेते है।

यदि किसी की दृष्टि वास्तव में कमजोर हो गई है या आँखों की अन्य कोई समस्या पैदा हो गई हो तो प्राकृतिक जीवन-शैली को अपनाने से सभी रोग व समस्याएँ चली जाती है। उन रोगियों को तब तक अपक्वाहार लेते रहना है जब तक उनकी समस्याएँ दूर नहीं हो जाती है।

अंकुरित अनाज जैसे- मूँग, गेहूँ, चना खायें।

फल व फलों का रस जैसे- आँवला, नीम्बू, संतरा, अनानास, अंगूर खायें।

सब्जियों व उनका रस जैसे- पत्तागोभी , पालक, टमाटर, लौकी, तुरई, टींडी, भीण्ड़ी, परवल, बथुआ, चंदलोई, चुकन्दर, शलजम, मुली, गाजर आदि मौसमानुसार सब्जियाँ खायें।

मेवें पानी में भिगोकर खाये और उसका भिगा पानी भी पीयें जैसे- खजूर , छुआरा, अंजीर, किशमिश, मुनक्का, बादाम, कालीमिर्च आदि।

देशी गाय का दूध , दही एवं छाछ पीयें। नीम की कोमल पत्तियाँ चबाकर खायें। आँखों में गुलाब जल डालें।

मानसिक तनाव से दूर रहें। शवासन करें। सूर्य तप्त हरी बोतल के पानी से आँखों को धोना चाहिए।

त्राटक, पामिंग, गर्दन व आँखों का व्यायाम, कंधों का व्यायाम, नंगे पैर हरी घास पर चलें।

उगते हुए सूर्य देव के दर्शन करना, जल अर्पण करना, सूर्य तप्त हरी बोतल से आँखों को धोना।

नंगे पैर हरी घास पर टहलें।

भ्रामरी, भस्त्रिका एवं अनुलोम-विलाम प्राणायाम करें।

प्राकृतिक उपचार जैसे- जल से आँख का उपचार (चक्षुनेति) , जल नेती, आँख पर हल्का गरम-ठण्ड़ा सेंक, आँखों का पानी उपचार, पेट व आँखों पर मिट्टी की पट्टी , एनीमा, कटिस्नान, गीली चादर लपेट, रीढ़ पर मिट्टी की पट्टी या गीली पट्टी लेवें।

2. आँख में आना

कारण : ठण्ड लगना, धुँआ लगना, उत्तेजक वस्तु या द्रव का आँख में गिरना , विजातीय द्रव्य के कारण संक्रमण होने से यह समस्या पैदा होती है।

लक्षण : आँखों में सूजन , आँखों का लाल होना, आँखों में जलन, आँखों में पानी आना, सुबह सोकर उठने पर आँखों में चिपचिपा पदार्थ होने से आँखें चिपकी होना आदि लक्षण प्रकट होते है।

प्राकृतिक चिकित्सा : रोगी को कुछ दिनों का रसाहार करना चाहिए। गाजर , पालक, संतरा, अनानास आदि का रस एवं नारियल पानी पीना चाहिए।

आँखों पर मिट्टी की पट्टी या पानी की गीली पट्टी रखनी चाहिए।

सुबह चिपकी हुई आँखों को गुनगुने पानी लगा लगाकर साफ करना चाहिए।

नीम रस या नीम्बू पानी का एनीमा लेवें।

मानसिक तनाव से दूर रहें। शवासन करें। सूर्य तप्त हरी बोतल के पानी से आँखों को धोना चाहिए।

त्राटक, पामिंग, गर्दन व आँखों का व्यायाम, कंधों का व्यायाम, नंगे पैर हरी घास पर चलें।

उगते हुए सूर्य देव के दर्शन करना, जल अर्पण करना, सूर्य तप्त हरी बोतल से आँखों को धोना।

नंगे पैर हरी घास पर टहलें।

आँखों में गुलाब जल डालें।

सूर्य तप्त हरी बोतल के पानी से आँखों को धोना चाहिए।

3. मोतियाबिन्द (सफेद पानी)

परिचय : आँख के लैंस में धुंधलापन आ जाना ही इस रोग की उपस्थिति मानी जाती है। यह हर आयु वर्ग में हो सकता है। यह बढ़ने पर अंधा बना देता है।

कारण : शरीर में विजातीय द्रव्य का बढ़ना, कब्ज रहना, अप्राकृतिक भोजन करना, दवाओं, रसायनों व उत्तेजक पदार्थो का ज्यादा उपयोग करना , रक्त की कमी होना , बारीक अक्षर पढ़ना, टी.वी.-कम्प्यूटर-मोबाइल पर ज्यादा काम करना, लेटकर पढ़ना, कम रोशनी में पढ़ना, मधुमेह व अन्य रोगों से ग्रस्त होना आदि कारणों से यह रोग तीव्र गति से प्रकट होता है।

लक्षण : धुंधला दिखाई देना , फोकस पर देखने में कठिनाई होना , अधिक रोशनी में देखने में कठिनाई होना, आँखों का नम्बर जल्दी बदलना, द्विदृष्टि हो जाना आदि लक्षण दिखते है।

प्राकृतिक चिकित्सा : लम्बे समय तक रसाहार, फलाहार करते रहने से धीरे-धीरे लाभ होना शुरू होता है। अपक्वाहार में गेहूँ के ज्वारे का रस, गाजर का रस, आँवले का रस, नीम्बू का रस, अनानास का रस, संतरे का रस एवं हरी सब्जियों का रस तथा नारियल पानी , नीम्बू-पानी-शहद आदि का भरपूर सेवन करना चाहिए।

उगते हुए सूर्य देव के दर्शन करना, जल अर्पण करना, सूर्य तप्त हरी बोतल से आँखों को धोना।

आँवला रस-शहद, तुलसी रस-शहद एवं बादाम, काली मिर्च एवं शहद का पेस्ट बनाकर चाटना।

जल नेती, आँख पर हल्का गरम-ठण्ड़ा सेंक , आँखों का पानी उपचार, पेट व आँखों पर मिट्टी की पट्टी , एनीमा, कटिस्नान, रीढ़ पर मिट्टी की पट्टी या गीली पट्टी लेवें।

मानसिक तनाव से दूर रहें। शवासन करें। सूर्य तप्त हरी बोतल के पानी से आँखों को धोना चाहिए।

त्राटक, पामिंग, गर्दन व आँखों का व्यायाम, कंधों का व्यायाम, नंगे पैर हरी घास पर चलें।

4. मोतियाबिन्द (काला पानी)

कारण : आँखों में नेत्रोद तरल बनता रहता है और आँख से निकलता भी रहता है। इसकी एक नियत मात्रा आँख में रहनी चाहिए। यदि अपशिष्ट के कारण यह तरल बाहर नहीं निकल पाये तो आँख में इसकी अधिकता के कारण नेत्र गोलक में तनाव बढ़ जाता है। जिसकी वज़ह से नेत्र तंत्रिकाओं को हानि होकर अंधापन हो जाता है। आँखों में रूकावट अप्राकृतिक भोजन, औषधियों के प्रयोग, तेज रोशनी में देखना, अधिक पढन्ना, छोटे अक्षर पढन्ना, तनाव बना रहना, मधुमेह, एलर्जी, स्नायु संस्थान के असंतुलन आदि के कारण से यह समस्या पैदा होती है।

लक्षण : आँख में अति आद्रता के कारण नेत्रगोलक में तनाव होकर आँखें सख्त हो जाती है। भौंहे, माथा एवं आँख के क्षेत्र में तनाव रहता है। प्रकाश की तरफ देखने पर रंगीन घेरे से दिखाई देते है। अंतत: रोगी की दृष्टि कम होकर अंधापन आ जाता है।

प्राकृतिक चिकित्सा : दस-पन्द्रह दिनों का रसाहार नीम्बू आँवला, संतरा, अनानास, गातर, पालक आदि के रस पर रहें।

रोज एनीमा लेवें, पेट व आँखों पर मिट्टी पट्टी, कटिस्नान, गीली चादर लपेट, आँखों पर हल्का गर्म-ठण्ड़ा सेंक करें।

नीम की कोमल पत्तियाँ चबाकर खायें।

जब तक समस्या दूर न हो जाये। यही उपचार व रसाहार पर ही रहें।

5. कान के रोग

कारण : कान में मैल एकत्र होकर सूख जाने , कान में अनाज का दाना पडक़र फूल जाना , कान मे कोई छोटा कीट घुसकर मर जाना , बार-बार टॉन्सिल होना, दंत रोग होना, ध्वनि प्रदूषण के माहौल में रहना , कान में चोट लगना , कान कुरेदना, कान में पानी भर जाना , रक्त का विकृत हो जाना , खाना न पचना आदि के कारण कान की समस्याएँ पैदा होती है।

लक्षण : कान में दर्द , सूजन या लालीपन, फोड़ा, पीव आना, गुंजन होना, दुर्गन्ध आना, कम सुनाई देना एवं सुनाई नहीं देना आदि कई समस्याएँ पैदा हो सकती है।

प्राकृतिक चिकित्सा : कान की जटिल समस्या या पुराना रोग हो तो कान में रूई लगाकर भाप देकर फिर मिट्टी का मोटा लेप करें। गौमूत्र कान में डालें। सप्ताहभर उपवास करें। फिर रसाहार व फलाहार क्षमतानुसार करें। अंकुरित चना जरूर खायें।

कान में दर्द , पीव बहता हो या बहरापन हो तो पीपल-नीम-तुलसी की कोमल पत्तियों के रस के साथ शहद मिलाकर कान में डालना चाहिए।

कान में दर्द हो तो प्याज का रस गर्म करके छानकर डालना चाहिए।

कान में फोड़ा-फुंसियाँ हो तो लहसुन , नमक व सरसों तेल को गर्म करके गुनगुना होने पर सहने लायक कान में डाल कर कान के आसपास सेंक दिन भर में 3-4 बार करनी चाहिए।

कान में गुंजन या भनभनाहट या कर्णनाद हो तो सप्ताहभर गर्म पानी का एनीमा लेकर पेट साफ करें।

कान में कोई कीट या कीड़ा घुस जाये तो कान में तुरन्त पानी या गुनगुना तेल डालें। वह बाहर निकल जायेगा या मर भी सकता है।

एनीमा, कुंजल एवं जल नेति करें।

भ्रामरी, भस्त्रिका एवं अनुलोम-विलाम प्राणायाम करें।

प्रतिदिन नियमित नहाने के बाद कान साफ जरूर कर लेवें।

12.6 सारांश

प्रस्तुत पुस्तक का मूल उद्देश्य मानव मात्र के स्वास्थ्य में उत्कृष्ट ïता लाना है। यहाँ मानव शरीर के समस्त संस्थानों के प्रत्येक अंग-प्रत्यंग की रचना एवं क्रिया का सचित्र स्पष्ट ï विश्लेषण करते हुए रोगग्रस्त अंगों के कारणों एवं उत्पन्न लक्षणों को भलीभाँति समझाया गया है। स्वस्थ व आनन्दमय जीवन जीने के लिए हर मनुष्य को अपनी शरीर की रचना व क्रिया का ज्ञान होना चाहिए, रोग की उत्पति का कारण एवं शरीर में प्रकट होने वाले प्रत्यक्ष व परोक्ष लक्षणों को समझने की पहचान होनी चाहिए तथा समस्या , व्याधि, दर्द एवं रोग को जड़ से ठीक करने के लिए प्राकृतिक उपचार की सरल व सटिक विधियों की जानकारी होना नितान्त आवश्यक है। जिसकी पूर्ति कराने में यह पुस्तक आपकी पूरी मदद करेगी।

हम यह जानते है कि रोग तभी उत्पन्न होता है जब हमारा रक्त दूषित और विषाक्त हो जाये। रक्त का दूषित होना निर्भर करता है, हमारे खान-पान, रहन-सहन और आचार-विचार पर।

आज दुनिया में लोग भौतिक सुख-सुविधाओं के साथ-साथ शारीरिक रूग्णता एवं मानसिक तनावों से भी त्रस्त होकर बुरी तरह परेशान है और वे अपने जीवन के मूल उद्देश्य से विमुख होते जा रहे है। जिसका प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष प्रभाव राष्ट्र के विकास को भी प्रभावित करता है। हमें ऐसी विकट परिस्थितियों में उनकी दैहिक एवं मानसिक पीड़ाओं, तनावों तथा कुण्ठाओं को दूर करने एवं स्वस्थ सकारात्मक चिन्तन का विकास करने में यह पुस्तक सहायक होगी। इसकी सहायता से कोई भी व्यक्ति अपने शरीर के साथ-साथ आन्तरिक व बाहरी संरचना, तीव्र व जीर्ण रोगों के सम्बन्ध में पूरी जानकारी प्राप्त कर अपने जीवन को सरल, सकारात्मक और परिस्थितियों के अनुकूल ढ़ालते हुए स्वस्थ एवं आनन्दपूर्वक जीवन जी सकता है।

आज सम्पूर्ण विश्व का जनमानस भारतीय योग पद्धतियों एवं प्राकृतिक सिद्धान्तों के लाभों से प्रभावित होकर इस ओर आकर्षित हो रहा है। इस क्षेत्र में आपको भी अपने स्वयं के जीवन के प्रति समय-समय पर जागरूकता लाना चाहिए। जिससे हम स्वस्थ होंगे तो हमारा परिवार स्वस्थ और हमारा राष्ट्र स्वस्थ बनेगा।

12.7 बोधात्मक प्रश्न

1. ज्ञानेन्द्रियों की विशेषता बताइये?

2. मानव शरीर में कुल कितनी ज्ञानेन्द्रियाँ पायी जाती हैं? उनके नाम के साथ काम लिखिए।
3. नेत्र भित्तियाँ ऊतक की कितनी परतों से मिलकर बनी होती है? वर्णन कीजिए।
4. नेत्र गोलक के भीतर की रचनाओं का वर्णन कीजिए?
5. नेत्र की बाह्य पेशियों का वर्णन करो?
6. नेत्र के कौन-कौन से उपांग होते है? वर्णन कीजिए?
7. नेत्र का अश्रुप्रवाही उपकरण को समझाइये?
8. नेत्र की क्रियाविधि को समझाइये?
9. निम्न पर टिप्पणी कीजिए-
    1. श्वेत पटल 4. प्रघाण
    2. उपतारा 5. कर्णावर्त
    3. नेत्र काचाभ द्रव
10. कानों का क्या-क्या कार्य है तथा इसके कितने भाग होते है? वर्णन कीजिए।
11. श्रवणीय अस्थिकाएँ कौन-कौन सी है? सचित्र वर्णन करो।
12. श्रवण की क्रियाविधि को समझाइए?
13. कानों का कौन-सा अंग शरीर को साम्यावस्था एवं सन्तुलन में बनाए रखने में सहायक होती हैं तथा कैसे कार्य करता है? समझाइए।
14. सभी संवेदी ज्ञानेन्द्रियों के कोई दो-दो रोगों के नाम बताइये?
15. चश्में से मुक्ति के कारण व लक्षणों का वर्णन करते हुए प्राकृतिक चिकित्सा बताइए?
16. आँख में आना के कारण व लक्षणों का वर्णन करते हुए प्राकृतिक चिकित्सा बताइए?
17. मोतियाबिन्द (सफेद पानी) के कारण व लक्षणों का वर्णन करते हुए प्राकृतिक चिकित्सा बताइए?
18. मोतियाबिन्द (काला पानी) के कारण व लक्षणों का वर्णन करते हुए प्राकृतिक चिकित्सा बताइए?
19. कान के रोग के कारण व लक्षणों का वर्णन करते हुए प्राकृतिक चिकित्सा बताइए?

12.8 **संदर्भ ग्रंथों की सूची**

संदर्भ ग्रंथों की सूची में सम्मिलित ग्रन्थों एवं उनकी सहायक सामग्री का उपयोग हमने इस ग्रन्थ के निर्माण में सहायक के रूप में किया है। हम इन संदर्भित ग्रन्थों, उनके लेखकों, प्रकाशकों एवं संस्थाओं के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करते हैं।

क्र	संदर्भ साहित्य	लेखक	क्र	संदर्भ साहित्य	लेखक
1.	जीव-विज्ञान भाग-1	बी. एस. राम दास, देव ज्योति दास	27.	प्राकृतिक चिकित्सा एवं स्वास्थ्य	डॉ. महेन्द्र कुमार जाजपुरा
2.	जीव-विज्ञान भाग-2	ओसवाल ट्यूटोरियल	28.	मानव शरीर रचना एवं क्रिया-विज्ञान	डॉ. महेन्द्र कुमार जाजपुरा

3.	शरीर रचना एवं क्रिया-विज्ञान	डॉ. विमल कुमार मोदी	29.	रोग, उनके कारण, लक्षण एवं उपचार	डॉ. महेन्द्र कुमार जाजपुरा
4.	बिना दवा परफेक्ट हेल्थ	डॉ. बलराम पटेल	30.	प्राण शक्ति उपचार; प्राचीन विज्ञान कला	चौ. कोक सुई
5.	नवीन मेडिकल प्रवेश परीक्षा	नवीन ग्रुप ऑफ पब्लिकेशन्स्- इलाहाबाद	31.	जीवनी शक्ति कैसे जगायें	डॉ. चन्द्र दीप सिंह
6.	मानव शरीर रचना एवं क्रिया-विज्ञान	डॉ. अनन्त प्रकाश गुप्ता	32.	आपका आरोग्य आपके हाथ में	देवेन्द्र वोरा
7.	प्राकृतिक स्वास्थ्य एवं योग	डॉ. बृज भूषण गोयल	33.	प्राकृतिक चिकित्सा एवं योग वैज्ञानिक प्रयोग	डॉ. नागेन्द्र कुमार नीरज
8.	प्राकृतिक आयुर्विज्ञान	डॉ. राकेश जिन्दल	34.	जीवेम् शरद शतम्	पं. श्री राम शर्मा आचार्य वाङ्मय
9.	वृहद प्राकृतिक चिकित्सा	डॉ. ओ. पी. सक्सेना	35.	बिना औषधियों के कायाकल्प	पं. श्री राम शर्मा आचार्य
10.	स्वस्थवृत विज्ञान	प्रो. रामहर्ष सिंह	36.	निरोग जीवन का राज मार्ग	पं. श्री राम शर्मा आचार्य
11.	प्राकृतिक स्वास्थ्य शास्त्र	आचार्य शेषांद्रि स्वामीनाथन	37.	दीर्घ जीवन की प्राप्ति	पं. श्री राम शर्मा आचार्य
12.	आदिऊर्जा प्राण	अमश्ता भारती	38.	पंच तत्वों द्वारा सम्पूर्ण रोगों का निवारण	पं. श्री राम शर्मा आचार्य
13.	स्वास्थ्य के सोपान	धनरूपमल सुराणा	39.	रोगों की सरल चिकित्सा	विट्ठलदास मोदी
14.	सरल प्राकृतिक चिकित्सा	डॉ. लक्ष्मी नारायण शर्मा	40.	जीने की कला	विट्ठलदास मोदी
15.	पातंजली योगसूत्र	स्वामी विवेकानंद	41.	आरोग्य प्रकाश	वैद्यराज पं. रामनारायण शर्मा
16.	प्राकृतिक चिकित्सा एवं योग	श्रीमत्ती राज कुमारी गुप्ता	42.	मौलिक चिकित्सा कौन सी?	डॉ. चंचलमल चोरडिया
17.	प्राकृतिक जीवन की ओर	श्री एडोल्फ जस्ट	43.	100 वर्ष कैसे जीयें	आचार्य श्याम सुन्दर सुमन
18.	100 वर्ष निरोगी रहिए	माणेक लाल म. पटेल	44.	प्राकृतिक चिकित्सा दर्शन	हेनरी लिंडलार
19.	रोगों की अचूक चिकित्सा	जानकी शरण वर्मा	45.	Fasting can sour your life	H.N. Shelton
20.	प्रकृति से मैत्री	प्रकाशन विभाग	46.	उपवास चिकित्सा	बर्नर मैकफेडन
21.	आरोग्य की कुंजी	राष्ट्रपिता महात्मा गांधी	47.	प्राकृतिक चिकित्सा	डॉ. सतीश गोयल
22.	कुदरती चिकित्सा	राष्ट्रपिता महात्मा गांधी	48.	Diet and diet reform	Sebastian kneipp
23.	प्रेक्टिकल नेचर क्योर	डॉ. के. लक्ष्मण शर्मा	49.	Food combining made easy	Dr. Herbert m. Shelton
24.	The true healing art	R. T. Trall	50.	The new science of healing, The doctrine of unity of diseases	Louis Kuhne and Benedict Lust
25.	Mucusless diet healing system	Arnold ehret	51.	A complete handbook of nature Cure – edition 4	Dr. H. K. Bakhru
26.	Fasting can save your life	Dr. Herbert m. Shelton	52.	My water-cure	Sebastian kneipp

इकाई – 13

प्राकृतिक चिकित्सा का योग एवं आयुर्वेद से संबंध

इकाई की रूपरेखा

13.1 परिचय

13.2 उद्देश्य

13.5 योग प्राकृतिक चिकित्सा एवं आयुर्वेद-षटकर्म-पंचकर्म

13.6 रोग का कारण भाग्य को देना या भगवान के कोष का प्रकोप मानना स्वंय को धोखा देना

13.7 रोग का कारण कीटाणु, विषाणु, वायरस, बैक्टीरिया, फंगस

13.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

13.9 महत्वपूर्ण प्रश्न

13.1 परिचय

प्राकृतिक एवं आयुर्वेद चिकित्सा लाभ पृथ्वी् पर मानव के विकास से भी पूर्व जीव जगत में मिलता रहा है। जो जीव प्रकष्ति के जितना सन्निकट होता है वह उतना ही प्राकृतिक चिकित्सा लाभ प्राप्त करता है। सूर्य की धूप के अनुसार पौधे का फूल-पत्ती ैजड़, तना अपनी स्थिति में परिवर्तन करता है। पशुओं और पक्षियों को जब जितनी मिट्टी, धूप, हवा, पानी अथवा आकाश की आवश्यकता होती है वह ग्रहण करने का प्रयास करता है। ये जीव अपना मिट्टी स्नान, टब स्नान, सूर्य स्नान, घर्षण स्नान, व्यायाम एवं अन्य नैसर्गिक क्रियाएं अपनी आवश्यकता के अनुसार करते रहते है।

जिस प्रकार प्रकृति के निकट रहने वाले जीव प्राकृतिक चिकित्सा लाभ करते रहते है। उसी प्रकार ये जीव पौधों, एवं प्रकृति में स्थित द्रव्यों का आयुर्वेदिक प्रयोग ये जीव करते रहते है। बिल्ली कुत्ता भी एक पेट खराब की स्थिति में एक प्रकार की घास खाकर कुछ देर पश्चात मुंह के द्वारा उसे वापस बाहर निकाल देता है। बहुत से जीव प्रकृति में स्थित रसायनों का आयुर्वेदिक प्रयोग नैसर्गिक रूप से जानते है। एवं निरोगी रहते है। क्योंकि आयुर्वेदिक शास्त्रीय ज्ञान के अनुसार प्रकृति में स्थित प्रत्येक द्रव्य वस्तुत :कोई न कोई औषधीय गुण सम्पन्न होती है।

13.2 उद्देश्य

इस इकाई का मूल उद्देश्य यह है कि पाठ्यक्रम प्राकृतिक चिकित्सा विद्याथ्री मूल भूत रूप से आयुर्वेद एवं प्राकृतिक चिकित्सा के अन्तर, समानता एवं समन्वय से भली भांती परीचित हो सकें। इस इकाई में प्राकृतिक एवं आयुर्वेदिक सिद्धान्त, आहार विज्ञान षट्कर्म एवं पंचकर्म के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे। समय, आत्मानुशासन, इन्द्रिय नियंत्रण योग आयुर्वेदिक चिकित्सा में जितना अधिक आवश्यक है

प्राकृतिक चिकित्सा में उससे भी अधिक जरूरी है। एक आयुर्वेदिक चिकित्सक को भी चाहिए कि उसे प्राकृतिक चिकित्सा का आधारभूत ज्ञान हो और प्राकृतिक चिकित्सा को भी चाहिए उसे आयुर्वेद का भी ज्ञान हो क्योंकि दोनो चिकित्सा पद्यतियों की मात्रा रेल की पटरियों की भांति है जो किसी भी स्टेशन, अथवा जंक्शन पर मिलती रहती है। दोनों का उद्देश्य एक है कि समाज सुखी, स्वस्थ एवं आनन्दित जीवन जी सके एवं भोजन की मात्रा पर रहे।

प्राकृतिक चिकित्सा का विकास प्रकृति के साथ हुआ है। जैसे प्रकृति अनादि है वैसे ही यह चिकित्सा भी अनाधि है। इसी प्रकार आयुर्वेद भी अनादि हैं। प्राकृतिक चिकित्सा आयुर्वेद तथा योग अपौरूषेय है यानि मनुष्युकश्त नही है। जिस प्रकार चारों वेद को अपोरूषेय कहते है उसी प्रकार प्राकृतिक चिकित्सा आयुर्वेद एवं योग अपोरूषेय है। ये तीनों पद्धतियां आदि और अनन्त है जिसका सटीक सविस्तार वर्णन वेदों में उपलब्ध है। महायोगेश्वर भगवान श्री कृष्णकी गीता, पतंजलि, कशिष के योग दर्शन, चरक संहिता आदि आयुर्वेदिक ग्रंथों में उपलब्ध है जिसका वर्णन आगे किया गया है।

अस्तित्व के दो रूप है। जड और चेतना जड़ से चेतन के विकास वनस्पति सजीव के दो वर्ग वनस्पति तथा प्राणी मुख्य है। चेतन सजीवों वनस्पति तथा प्राणी के उद्भव के साथ उनमें स्वास्थ्य रक्षक एवं रोग निवारक शक्ति जीवनी शक्ति वायटलिटी का विकास हुआ जो अब तक समस्त सजीवों की रोगों से रक्षा करते हुए आरोग्य प्रदान करती रही है। जीने की चाहत जो जिविषा तथा जीवनी शक्ति एक दूसरे के लिए प्रेरक का कार्य कर हर मुसीबतों एवं रोगों पर जो लिखा यानि जीतने की इच्छा हेतु ये सतत् प्रयत्नशील रहती है।

जीवन के विकास सम्बन्धित अनेक धारणायें है। अलग-अलग मिथकों एवं सम्प्रदाओं की पृथक मान्यताएं है। उन सम्बन्धों में हम यह चर्चा नहीं करेंगे। हम यहां वैज्ञानिक मान्यता की चर्चा करेंगे कि कैंसे स्वस्थ रखने वाली जीवनी शक्ति एवं जिविषा का विकास हुआ।

अरबों वर्ष पूर्व ब्रह्माण्ड में एवं अपूर्व एवं अद्वितीय घटना घटी। सूर्य का एक टुकडा अलग हो गया, यही कालान्तर में पृथ्वीकहलाई। पृथ्वीकी गोला थी। धीरे-धीरे उसका बाह्य हिस्सा ठण्डा होने लगा, तापमान कम होने से पृथ्वीके चारों ओर के आसमान में हाइड्रोजन ऑक्सीजन आदि गैसें मिलकर एक निश्चित अनुकूल तापमान एवं दबाव में रासायनिक प्रतिक्रिया से भाप एवं बादल बन गये। करोडों बरसों तक मुसलाधार बारिश होती रही। सारी पृथ्वीजलमग्न हो गयी। जिधर देखो उधर जल ही जल था। पृथ्वीके ठण्डे विशाल गहरे पृष्ठा पर प्रचुरता से जल इकट्ठा हो गये, यही बाद में महासागर कहलाये। आकाश धुलकर निर्मल निरभ्र स्वच्छ हो गया। अभी भी पृथ्वीके आन्तरिक भाग धधकते पिघले द्रव की स्थिति में है जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण सक्रिय ज्वाला मुखी से निकलते लावा है। धीरे-धीरे वायुमंडल का निर्माण हुआ। वातावरण में मौजूद अनेक रासायनिक परिवर्तन हुए जिनसे शर्करा, एल्कोहल, एल्डिहाइड आदि अनेक रासायनिक तत्वों का निर्माण हुआ। ये सभी बरसात के जल में घुलकर सागर में पहुंचे। सागर के ज्वार भाटे की लहरों से इनका घोल बन गया जो जीवन के आदिम (primiral) सूप कहलाये। इनमें परमाणुओं की संख्या पर्याप्त होने से उनमें स्थायित्व पैदा हुआ। अपने को बचाये रखने की तीव्र लालसा का निर्माण हुआ। तीव्र जिजीविषा की प्रबलता के चलते आदि कालीन सागर में मौजूद रसायन शर्करायें,

वसायें, एमिनो एसिड ;प्रोटीनद्ध तथा कोशिक जनक फॉस्फोलिपिडस आदि सर्र्वोत्कश्'ट संरचनाओं ने आत्म सुरक्षा के लिए एक झिल्ली निर्माण कर लिया।

प्रकृति का यह अद्वितीय महान प्रारम्भिक जैव सश्जन जीवन का जिजीविषा तथा सुरक्षा की दृष्टि से अपने आप में अद्भूत मिसाल तथा कमाल था। झिल्लियों में बन्द होकर यह अनोखा जैव सश्जन आदिकालिन समुद्र से पृथक अस्तित्व बना लिया। वे समुद्र में रह कर भी सागर से भिन्न थे। बाद में अनेक हिम युग आये, मौसम बदला, सागरों की संरचना बदली, वातावरण बदले लेकिन इन सबका कोई विशेष प्रभाव झिल्लियों मे बन्द इन पुराने सागरों पर नहीं हुआ। झिल्ली मे बन्द इन जैव रसायनों से जीवन का प्रारम्भिक विकास हुआ। इस प्रकार एककोशीय जीव का सश्जन हुआ। एककोशीय जीव के जीने के लिए आवश्यक था पोषक तत्वों की आपूर्ति। इसके लिए भूख की अनुभूति हुई। भूख से मुक्ति के लिए आहार की खोज प्रारम्भ हुई, उनमें संघर्ष एवं तनाव पैदा हुआ। जो कोशिका ऊर्जा का उपयोग करने में सक्षम हो गई, उनकी संख्या बढ़ने लगी। कमजोर एवं काटिल कोशिकाऐं नष्ट होने के के लिए अभिशप्त थी। सशक्त एवं प्रभत्व का प्रथम बार युद्ध प्रारम्भ हो गया। एक जाति की कोशिका दुसरी जाति को खाने लगी। अशक्त एवं आलसी कोशिकाएं समाप्त होने लगी। जो जवाबी हमला करने मे सामथ्र्यवान थी, वे बच गयी। इस प्रकार शक्तिशाली कोशिकाओं की संख्या बढती रही। डार्विन के नेचुरल सेलेक्शन के सिद्धान्त के अनुसार किसी भी क्षेत्र में जो फिट था वही हिट हुआ। इस प्रकार सर्वप्रथम जीवनीशक्ति का प्राणियों में प्रादुर्भाव हुआ। आज भी हमारे शरीर परिवार एवं समाज में यही गुण धर्म विद्यमान है। गुणात्मक दृष्टि से शक्तिशाली कोशिकाओं का साम्राज्य होता है। जब भी किसी प्रकार के शत्रु रोगाणुओं का प्रहार हमारे शरीर पर होता है, शरीर की स्वस्थ खरबों कोशिकाऐं रासायनिक विषों की वर्षा कर तथा अन्य अनेक तरीकों से उनके संहार में लग जाती है, शरीर के ये नन्हें-नन्हें जीव जो सात माइक्रोन ;मि.मी. का हजारवां भागद्ध से भी छोटे होते है अपनी आत्म रक्षा में निरन्तर प्रयत्नशील रहतें है।

गुणात्मक दृष्टि से शरीर का जीव द्रव भी आदिम महासागर की तरह ही किंचित क्षारीय है, वैसा ही युद्ध आज भी चल रहा हैं जैसा आदिम महासागर में चलता रहा है। जब हमारे अन्दर सुस्त, कटिल तथा रूग्ण कोशिकाएं होती है तभी हम शत्रु रोगाणुओं के शिकार बनते है। कुछ घातक रोगों जैसे कम्वाइण्ड इम्यूनोडिफिसिएन्सी, एक्वायर इम्यूनडेफिशिएंसी सिंड्रोम प्रभावशाली होकर हमें नष्ट करने के लिए तुल जाता है। प्राकृतिक चिकित्सा, आयुर्वेद तथा योग शरीर को स्वस्थ एवं दीर्घजीवी बनाने के लिए रोग प्रतिरक्षात्मक प्रणाली जीवनी शक्ति को शौर्यशाली, शक्तिमान, एवं साहसी बनाने पर बल देती है ताकि प्रत्येक कोशिका रोगाणुओं से लडने में सक्षम हो सके। इसके लिए सम्यक आहार, सम्यक विचार, सम्यक विहार, सम्यक व्यवहार, सम्यक श्रम ;आसन, प्राणायाम, ध्यानद्ध, सम्यक खान-पान, सम्यक जीवन शैली तथा प्रकृति का उन्मुक्त किन्तु सम्यक सेवन पर बल देती है।

13.3 योग प्राकृतिक चिकित्सा एवं आयुर्वेद-षटकर्म-पंचकर्म

प्राकृतिक चिकित्सा योग एवं आयुर्वेद में मल तथा विजातीय पदार्थ को निकाल कर बाहर करने के लिए पंच तत्व चिकित्सा षट्कर्म एवं पंचकर्म को विधान है। पंचकर्म का मूल उद्देश्य शरीर के संचित विकृत

दोषों को निकाल बाहर करना है। चरक में आयुर्वेद में चिकित्सा एवं योग का सुन्दर समन्वय किया गया है।

चतुष्प्रकाश संशुद्धि, पिपासा, मारूतातयौ।

पाचनान्युपवासश्च व्यायामश्चेति लंघनम।।

प्राकृतिक चिकित्सा में वमन विरेचन, एनिमा (वस्ति), मालिश (स्नेहन) भाप स्वान, जल, वायु, अग्नि (सूर्य), उपवास (आकाश), व्यायाम, योगासन, प्राणायामादि का प्रयोग होता है।

आयुर्वेद के पंचकर्म के अन्तर्रगत(क) पूर्व कर्म से (1) पाचन के अन्र्तनगतक्वाथ, रस, पेय, चूर्ण आदि निरापद वनौषधि फल सब्जी जो दीपन भूख को ठीक करने वाला एवं पाचन हो का प्रयोग होता है (2) स्नेहन के अन्र्तमगततेल मालिश (3) स्वेदन के अन्र्तनगतभाव सावनादि स्नान है। (ख) प्रधान कर्म के अन्र्तगत (1) वमन-कुंजन आदि यौगिक षढ़कर्म द्वारा वमन कराते है। (2) विरेचन के अन्र्तरगतप्राकृतिक यौगिक चिकित्सा के अन्र्तगत शंख प्रत्तालन कराते है जिसके ऊपर से पानी पिलाकर अधोमार्ग से सारी गन्दगी को विरेचन करते है। (3) वस्ति-पूर्व जमाने में आयुर्वेद में वस्ति के अन्तर्गत जानवरों के मूत्राशय (uninary bladder) द्वारा गुर्दा द्वार से पानी क्वाथ या स्नेह पेट में पहुंचाया जाता था योग मे वस्ति के लिए मोशीजन बांस की पतली नली गुदा द्वार से नौली क्रिया द्वारा झील, तालाब के अन्दर पेट का सकार्य एवं विस्थापित करके जल को पेट में ले जाकर पेट की सफाई करते थे। इन दोनो क्रियाओं के अपेक्षा वर्तमान का एनिमा उपकरण ज्यादा हाइजनिक एवं वैज्ञानिक है। (4) नस्य नेति या शिरो विरेचन के अन्तमर्गतप्राकृतिक चिकित्सा एवं योग में जलनेति, रबर नेति, सूत्र नेति, स्नेह नेति आदि का प्रयोग करके नासिका एवं सिर सम्बन्धी रोग को ठीक किया जाता है। (5) रक्तशोधन एवं रक्त माक्षण के अन्र्तगत प्राकृतिक चिकित्सा में निरापद डिटॉक्सी फाइंग आहार व पंच तत्व चिकित्सा के द्वारा रक्त का शोधन किया जाता है। आयुर्वेद में श्रृंग एवं जलौकावचारण का प्रयोग होता रहा है। वर्तमान निडल द्वारा भी जमे खून को निकाला जाता हैं। (ग)पश्चात के अन्तर्गत - (1) संसर्जन कर्म यानि शरीर का प्राकृतिक योग चिकित्सा मिट्टी पानी धूप, हवा, आकाश (लंघन उपवास), ध्यान, आसन, प्राणायाम, षट्कर्मोदि द्वारा शरीर का संशोधन करने के पश्चात संसर्जन क्रम में रस, सूप, उबली सब्जी शीघ्र सुपाच्य आहार देते है। ताकि उपर्युक्त चिकित्सा से पेट शैथिल्यावस्था में होता है अचानक ठोस आहार देना अहित होता है। तत्पश्चात दलिया, खिचडी आदि देते हुए शने-शनै ठोस आहार पर लायें (2) रसायन आदि क्रम में प्राकृतिक फलों अनार, चीकू, सेव आदि मौसम के अनुसार दें (3) शमन प्रयोग - सबसे अन्त में तीसरा पश्चात कर्म शमन तथा संवर्पण अर्थात रोगी को रोग मुक्ति की संतुष्टि एवं तृप्ति प्राप्त हों। वास्तव में प्राकृतिक चिकित्सा में रोगों का दमन नहीं शमन होता हैं। सही में प्राकृतिक चिकित्सा के द्वारा शरीर के सप्त धातु रस-रक्त मांस मद अस्थि, संधि, मज्जा मेद वीर्य, वात पित, कफ, मल, मूत्र सभी साम्यावस्था में लाकर रोगी को तृप्ति प्रदान करते है। तन एवं मन को शक्ति वृहत्य उत्पन्न कर वृहण बनाते है। बल प्राकृतिक योग पंच करके सम्यक शुद्ध सात्विक प्रयोग से शनै-शनै रोगी बलशाली एवं शक्ति शाली हो जाता है।

वाग्भट्ट ने भी अष्टांग हृदय में अपतर्पण या लंघन को शोधन और वमन में विभक्त किया है। शमन के दीपन पाचन, सुध, तृषा (जल) व्यायाम, आनप सेवन (सूर्य) और वायु सेवन सात प्रकार है। वमन, विरेक, निरूह, शिरोविरेचन और अस्त्र विस्त्रुति पांच शोधन के प्रकार है।

शोधनं शमन चेति द्विधा तत्रापि लंघनम्।

पंचधा शोधनं च तत्-निरूहो वमनं काय शिरोरे कास्त्रविस्तुति:।।

यमनं तच्च सप्तधा-पाचनं दीपनं क्षुतद् व्यायामतपमारूत:।।

चरकने दोष संचय में पंचकर्म के लिए वसंत-फाल्गुन श्रेष्ठ बताया है। वैशाख में मना किया है) तुक्रमेण फाल्गुन चैत्रो वसंतो भवति। न वैशाख:

शाड्गचर और भाव प्रकाश ने भी चरक की तरह (1) वमन (2)विरेचन (3)निरूद्ध आस्थापन (4) अनुवासन (5) शिरो विरेच यानस्य बताया है।

भा. प्र. के अनुसार - प्रथमं वमन पश्चात विरेकश्चानुवासनम्।

एतानि पंच कर्माणि निरूहो नावनं तथा।।

शाड्गधर के अनुसार - वमनं रेचनं नस्य निरूहश्चातु वासनम।।

एतानि पंचकर्माणि कयितानि मुनीखरै:।।

पंचकर्म के अन्तर्गत जिससे विभिन्न अंगो का शोधन हो उन कर्मो जैसे गेड्ष, निष्ठीव, कर्णधावण, आश्चोतन, नेत्रतर्पण, नेत्रांजन आदि भी जोडे गये है। हालांकि निष्जीवन एवं नेत्राजन शोधन कर्म नहीं है। परन्तु मूत्र के आहार मूत्र शोधन करती है इन्हें पंचकर्म मे समावेश कर सकते है। आयुर्वेद के पंचकर्म कर्म की प्राधन्यता है, औषधि का नहीं है।

सही आयुर्वेद में प्राकृतिक चिकित्सा की तरह पंचकर्म ;चतवबमेद्ध विजातीय पदार्थो को निकाल बाहर करने की निराप्रद प्रक्रिया है। (panch karm are detoxyfying process nature friendly treat ment) दोषों का संचय उसका प्रकोप प्रसार स्थान संश्रय होता है। जिससे रोगो की पूर्व रूपोत्पति होती है इसके लिए पूर्व कर्म रोगोत्पति के बाद प्रधान कर्म तथा रोगोत्पति के बाद रोग का पुनरूर्वि यानि लौटकर (recurrence) नहीं आये इसके लिए पश्चात कर्म का विधान है। इसके लिए सर्वोत्तम _rq मार्च-अप्रेल वसंत फाल्गुन के नवरात्रा के समय तथा सितम्बर-अक्टूबर अश्विन नवरात्रा के समय सर्वोत्तम होता है। यही कारण है कि हमारे पुरखों ने नवरात्रि में स्वास्थ्य शक्ति शोर्य साहस एवं सौन्दर्य की देवी मां दुर्गा की स्थापना एवं 9 दिन रोगमुक्ति एवं आरोग्य प्राप्ति हेतु लंघनादि की अनुष्ठान किया जाता है।

वास्तव में आयुर्वेद प्राकृतिक चिकित्सा एवं योग का एक ही लक्ष्य एवं ध्येय है रोगी को बिना किसी दवा के निरापद तरीके से समस्त दोषों को निकाल बाहर करके सही चिकित्सा की जाये निरामय बनाया जाये। अभय प्रदान किया जाये। क्योंकि औषधियों द्वारा दवायें एवं शान्त किये गये विकार एवं रोग मे कभी भी उमड सकते हैं लौट सकते है लेकिन जो रोग दोष संशोधन द्वारा निकाल दिए जाते है वे पुन: लौट कर नहीं आते है।

दोषा: कदाचित् कुप्यन्ति जिता लंघन पाचनै:।

जितु: संशोधनैर्यषु न तेषां पुनरूर्वल च. स. 16-20

औषधियों द्वारा रोग को ठीक करने को चिकित्सा कहना उचित नही है, क्योंकि सभी रोगों की चिकित्सा पंच कर्म के प्रयोग करने से होता है।

भगवन पंच कर्माणि समस्तानि पृथक तथा।

निर्दिष्टन्याम याना हि सर्वेषामेव भेषजम्।।

दोषजो·स्त्यामयै: कश्चित यस्य तानि भिषग्वर। च. चि. 27 -5-6,7

नस्यु शक्तानि शमने साध्यस्य क्रिमया सत:।

वास्तव में पंच कर्मादि शोधन द्वारा चिकित्सा करना ही सत्य चिकित्सा है। आयुर्वेद का मुख्य लक्ष्य ही "दोष संशोधन" वाली चिकित्सा की रही है जैसे कि बताया गया है याहयु दीर्ण शमयति नान्यं व्याधि करोति च।

सा क्रिया न तु या व्याधि हरित्यन्यमुदीरमेत।।

दोष संशोधन चिकित्सा से सभी रोग नष्ट हो जाते है। उनका दमन नहीं बल्कि शमन हो जाता है इसलिए नये रोग पैदा नहीं होते है। औषधियों के दुष्प्रभाव से होने वाले रोग का डर भी नहीं रहता है। संशोधन चिकित्सा से रोग एवं दोष जड-मूल से नष्ट हो जाता है।

संशोधन चिकित्सा से और कितने लाभ होते है इसका बडा ही वैज्ञानिक वर्णन च. स. 16,17 ,18 ,19 , में किया गया हैं ।

एवं विशुद्धं कोष्ठस्य कायाग्निरभिवर्(ते ।

व्याधयोश्चोपशाम्यते प्रकृतिश्चानुवर्तते।।

इन्द्रियाणि मनोबुद्धि वर्णश्चास्य प्रसीदति।

बलं पुष्टि रपत्यंच वशषता चास्य जायते।।

जयं कुच्छरेण लभते चिरंजीव व्यनामय:।

(1) कायाग्नि जठराग्नि तीक्ष्ण होती हैं।

(2) कोष्ठ स्त्रोत पवित्र विशुद्ध हो जाता है

(3) व्याधियां प्रशमित होती है।

(4) प्रकृति व स्वास्थ्य का अनुवर्तन होता है

(5) समस्त इन्द्रियां प्रसन्न होती है।

(6) मन और बुद्धि के कार्यो का विकास व प्रकर्ष होता है।

(7) त्वचा का रंग खिल जाता है। वर्ण प्रसादन होता है।

(8) बल बढता है

(9) शरीर पुष्ट होता है

(10) अपत्य या संतानोत्पति की शक्ति बढ जाती है

(11) वीर्य की वृद्धि होती है। शुक्राणु एवं अंडाणु शक्ति शाली होते है।

(12) वश्द्धावस्था पर रोक लग जाता है, देर से आती है।

(13) रोग रहित दीर्घ आयुष्य प्राप्त होता है।

शल्य कर्म का प्राचीनतम ग्रंथ सुश्रुत में भी शल्य कर्म अस्त्र चिकित्सा को नही बल्कि दोष संशोधन ;पंचकर्मद्ध द्वारा चिकित्सा को श्रेष्ठ प्रतिपादित किया जाता है। स्पष्ट उल्लेख है कि चिकित्सा का मतलब ही दोष संशोधन है। न तो औषधि प्रयोग और न शल्य शस्त्र कर्म है-

द्विविधास्तु व्याधय: शस्त्र साध्या स्नेहादिभिर्यो साध्यश्च।

तत्र शस्त्र साध्येषु स्नेहादिभिर्यो न प्रतिषिध्यतं,

स्नेहादिभिर्यो साध्येषु शस्त्र कर्म न क्रियते- सु. सू. 24

13.6 रोग का कारण भाग्य को देना या भगवान के कोष का प्रकोप मानना स्वंय को धोखा देना।

रोग का कारण भाग्य को देना या भगवान के कोष का प्रकोप मानना स्वंय को धोखा देना। वातावरण कीटाणु तथा अन्य कारकों को रोग या दु:ख का कारण बताना अपने उत्तरदायित्व से बचाना है। स्वंय को नकारना है। रोग होने पर भाग्य एवं विधाता को दोष देना स्वंय के द्वारा किये गलत कार्यो से अपना बचाव करना है। गलत आहार विहार विचार करते समय कहां सोचते है कि मैं ही ऐसा क्यों कर रहा हुं। जब बीमारी या कोई दुर्घटना होती है तो उस समय हम ऐसे सोचते है कि हे प्रभु! यह मेरे साथ ही ऐसा क्यों हो रहा है यदि हम करने में सावधान होते है आज जो स्थिति है वैसा नहीं होता है, योगेश्वर श्री कृष्णोने भी कहा है-

उद्धरेदात्मनालानं नात्मानमवसादयेत।

आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव विपुरात्मन:। गीता 615

अपने द्वारा अपना उद्दार करें। अपन पतन न करें। क्योंकि आप स्वंय ही आप ही अपना मित्र है और स्वंय आप ही अपने दुश्मन है। आप स्वंय अपने चिकित्सक एवं उपधारक है। आपके अन्दर चिकित्सक विद्यमान है। तत्व ज्ञान भी विद्यमान है। आप स्वंय अपने चिकित्सक है वैद्य है आपके अन्दर उपचार की सारी शक्तियां, नाना प्रकार की औषधियां सन्निहित है। योग का मूल मंत्र यही बुद्ध हो या महावीर हो पतंजलि हो या कणाद हो शंकर हो या श्याम हो योगियों मुनियों का एक ही संदेश है रोग एवं दु:ख के

कारण हम स्वंय है। रोग और स्वास्थ्य निजी मामला है। यह मनुष्य की स्वतंत्रता है। अज्ञान एवं असंयम के चलते प्रकृति के नियमों को तोडने से ही रोग होता है। प्रकृति के नियमों के अनुसार चलने से हम स्वस्थ रहते है।

प्रकृति के नियम के अनुसार चलने के लिए आत्मसंयम एवं आत्मनुशासन की जरूरत होती हैं। आहार विहार एवं विचार में जहां संयम टूटता है वहीं रोगों का बीमारोपण हो जाता है। इसलिए पंतजलि _षि योग दर्शन का प्रारम्भ ही "अथ योगानुशासंन" तथा योग्श्चित्रवश्ति निरोध: से प्रारम्भ हो जाता है। अर्थात अनुशासन यानि प्रकृति एवं परमात्मा के नियमों तथा योगाचार्य महार्षियों के प्रवचनों आचारों एवं अनुभूत परम्पराओं के अनुसार एवं अनुकूल आचरण या आत्मशासन ही योग का अनुशासन है। जो इस अनुशासन के अनुकूल आचरण करता है वह निरोगी तथा स्वस्थ होगा ही। चितवृत्ति निरोध यानि अपने चित की व रंगो तथा मन की वश्त्तियों के प्रति जो जाग जाता है वह सदा स्वस्थ एवं सुखी रहता है। यहां निरोध का अर्थ दमन नहीं है दमन तो दवाइयां करती है। यहां निरोध का अर्थ शमन एवं जागरण से है। चित्त वश्त्तियों एवं मन की तंरगों के प्रति सतत जागृति का विज्ञान योग है। "संयमाद्विवेकजं ज्ञानम्" संयम से विवेक जन्य ज्ञान का उद्भव होता है। जहां विवेक जन्य ज्ञान है वहां आहार विहार विचार एवं व्यवहार के प्रति गलतियां नहीं होती है रोग का स्वत: निराकरण एवं निर्वासन आरोग्य का उद्भव एवं पुनरूद्भव होता है। योगेश्वरश्री कृष्णाका कथन

बन्धुरात्मात्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जित:।

अनात्मनस्तु: शत्रु त्वे वर्तेवात्मैव शत्रुवत- गीता 616

जो संयमी जितेन्द्रिय यानि अपने आपसे अपने आपको जीत लिया इसके लिए वह स्वंय ही अपना बन्धु है, वह कभी बीमार तथा रोगी नहीं होगा वह सदा स्वं में स्थित स्वस्थ एवं सुखी होगा और जिसने अपने आप को नही जीता है वह असंयम होकर आहारादि में अराजकता एवं गलतियां करेगा बीमार एवं दु:खी होगा। इस प्रकार ऐसे लोग स्वंय अपने से शत्रु जैसा बत्र्ताव करते है। ऐसे अनात्मा की आत्मा ही शत्रुता में शत्रु की तरह वत्र्ताव करता है।

अत: रोग एवं दु:ख के लिए अपने भाग्य एवं भगवान कभी न कोसें संयम एवं अनुशासन धारण करें, सदा रोग से मुक्त होंगे।

13.7 रोग का कारण कीटाणु, विषाणु, वायरस, बैक्टीरिया, फंगस

रोग का कारण कीटाणु, विषाणु, वायरस, बैक्टीरिया, फंगस आदि होते है यह वक्तव्य मात्र मान्यता एवं सिद्धान्त सत्य नही है। आम सिद्धान्तिहै कि जहां जिन्दगी होगी वहीं पर रोगाणु पनपते है। रोगाणओं को पनपने के लिए अनुकूल वातावरण होना चाहिए, चाहे वह गन्दगी शरीर के अन्दर हो या शरीर के बाहर हो।

उन रोगाणुओं को मारने वाली सभी दवाइयां रोग प्र्रतिरोधक क्षमता को सम्वर्द्धन एवं संरक्षण करने वाली कोशिकाओं को भी नष्ट करने लग जाती है। यही कारण है मल्टीड्रग्स रेजिस्टेन्ट वाले मेथिसिलिन एवं

जिस्टेन्ट स्केफिलोकोकस ऑरियस ;एम. आर. एस. ए.द्ध जैसी खतरनाक सुपर बग बैक्टिरीयाओं का विकास हो गया है। जिन पर किसी प्रकार की दवा का भी प्रभाव नहीं होता है।

प्राकृतिक चिकित्सा आयुर्वेद एवं योग विज्ञान के अनुसार प्रकृति मे जो कुछ भी होता है कार्य (effect) एवं कारण (law of effect and cause), क्रिया प्रतिक्रिया (law of action and reaction), रोग उन्मूलक उमाड़ (law of healing crisis), रचनात्मक सश्जनात्मक एवं विनाशक विध्वंसक (law of creation construction nad destruction)] उपशमक उमाड़ (law of curative crisis), विध्वंसक कारक रोग संकट (law of destructive disease crisis), नियम के अनुसार होता है।

कारण दूर होने पर कार्य स्वत: दूर होने लगता है। रोग, रोग की चिकित्सा एवं आरोग्य की उपलब्धि अचानक नही होती हैं सभी उपर्युक्त नियमों के अनुसार उचित एवं नियत समय पर होती है। जीवन के हर क्षेत्र में बार-बार किये गये भूल एवं गलतियों का परिणाम होता है। आत्मजागरण से भूलो की पुनरावश्त्ति नही होने आरोग्य प्राप्ति में साथ होता है।

लगातार तनाव, क्रोध, चिन्ता, ईर्ष्या़्द्वेष, अहंकार, लोभ, लालच, भय, कामुकता, घृणा निराशा, क्षोभ आदि दुष्प्रवश्त्तियां रोग पैदा करती है। इन मन: स्थितियों में रक्त में एड्निलिन, कोर्टिसोल, ऐनिन, एन्जियोटेन्सिन एल्डेस्टेरॉन, 5 एच. आइ. ए. ए., कॉक्सोंसल लेंक्टिक एसिड आदि जैव रसायनों का स्त्राव एवं सक्रियता बढ जाती है जिससे शरीर की अनेक प्रक्रियाओं विक्षुब्ध हो जाती है। रोग प्रतिरक्षात्मक प्रणाली अस्त व्यस्त हो जाती है। जिससे जुकाम से लेकर ॰दय रोग मधुमेह कैंसर तक बीमारी होने की संभावना बढ़ जाती है।

सारी दुष्ट चित्त वश्त्तियां एक ही परिवार के सदस्य होते है, इनके नाम अनेक है फिर भी ये एक ही है। जिस प्रकार शरीर में संचित विकार विविध रोगों के रूप में कमजोर अंगो से बाहर निकलते है और उन अंगो की विकश्ति के अनुसार रोगों का नामकरण हो जाता है उसी प्रकार मन में एक विकार होने पर अनेक रूपों में प्रकट होकर रोग उत्पन्न होता है। योगीराज भगवान श्री कृष्ण् ने भी कहा है -

ध्याय तो विषयान्युंस: सस्तेषूप जायते।

संत्सन्जायते काम: कामात्कोधो·भिजायते।। गीता 2- 6211

क्रोधार्वयतिसम्मोह: सम्मोहत्स्मश्ति विभ्राम:।

स्मृधतिभ्रंशाब्रुद्धि नाश त्प्रणश्यति।। गीता 2- 63 11

जो व्यक्ति जिस विषय ;सोचद्ध का चिन्तन करता है, उसी में उसकी आसक्ति सम्बन्ध पैदा हो जाता है। आसक्ति से कामना पैदा होती है। कामना में बाधा अड़चन पैदा होने से क्रोध पैदा होता है। क्रोध होने पर व्यक्ति बेहोशी मुच्र्छा सम्मोह मूर्खता में फंस जाता है जिससे स्मृ तिभ्रष्ट हो जाती है स्मृहतिभ्रष्ट होने से बुद्धि विवेक, सही गलत, निर्णय लेने की क्षमता खत्म हो जाती है जिससे मनुष्य का पतन प्रारम्भ हो जाता है परिणाम स्वरूप व्यक्ति नाना प्रकार शारीरिक मानसिक रोगों के चंगुल में फंसता चला जाता हैं। विभिन्न विकृत विषयों का चिन्तन भी भोगने से कम नहीं है।

इसका निराकरण भी योगी श्री कृष्णने बताया है जो कि प्राकृतिक चिकित्सा एवं आयुर्वेद का मूल मंत्र है

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन ।

आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति।। 2-64 ।।

प्रसादे सर्वदु:खानां हनिरस्योपजायते।

प्रसन्नचेतसो हासु बुद्धि: पर्यवतिष्ठते।। 2-65।।

यदि होश एवं जागृति के साथ कोई साधक साक्षी भाव से इन्द्रियों के द्वारा विषयों का सेवन करता है तो वह साक्षी भाव के कारण स्वत: राग द्वेष से रहित अन्त:करण की निर्मलता को प्राप्त हो जाता है। वह वशीभूत अन्त: करण वाला सही कर्मयोगी साधक होता है। अन्त: करण की निर्मलता प्राप्त होने पर साधक से सम्पूर्ण दु:खों का नाश हो जाता है। ऐसे शुद्ध प्रसन्न चित्त वाले साधक की बुद्धि नि:सन्देह बहुत जल्दी परमात्मा में स्थिर हो जाती है। राग बुद्धि होने के कारण ही साधक भोगों का सेवन करते हुए पतनोन्मुख होते है, विषयों में बुद्धि न हो तो शास्त्र विहित भोगों का सेवन करते हुए भी साधक का पतन नही उत्थान ही होता है। ऐसे साधक भोगते हुए भी नहीं भोगता है।

प्राकृतिक चिकित्सा योग एवं आयुर्वेद मानव जीवन को बोधपूर्ण सम्यक बनाती है। इसके सिद्धान्त सार्वसौम सत्य, शाश्वत एवं सनातन है। हर काल, परिवेश, देश एवं परिस्थिति में अपरिवर्तनीय है।

प्रकृति स्वंय चिकित्सक है। जंगली जानवरों पेड़ पौधों को बाहरी औषधि, कीटनाशी आदि रसायनों की आवश्यकता नहीं होती है क्योंकि उनमें प्राकृतिक रूप में जीवनी शक्ति प्रतिरोधक प्रणाली एवं उपचारात्मक विकसित रहती है। जिन प्राणियों पौधों एवं मनुष्यों का रिश्ता प्रकृति से टूट गया उन्हीं के लिए कश्त्रिम संश्लिष्ट रसायनों की दवा की जरूरत होती है। कश्त्रिम रसायन शरीर के कभी अनुकूल नहीं होते है इसलिए उनके साइड इफेक्ट के कारण अनेक बीमारियां होती है। जिस प्रकार एड्स फैला है उसी प्रकार की एक और नई बीमारी एड्स (adverse effect of drugs) यानि औषधियों के पाश्र्व दुष्प्रभाव अन्य बीमारियां तेजी से फैल रही है। वन्य प्राणियों के लिए कौन दवा, इन्जेक्शन, टीका, ऑपरेशन का प्रयोग करता है। कोई आवश्यकता नहीं होती है, वे नैसर्गिक जीवन जीते है और स्वस्थ रहते है। उन जानवरों के स्वास्थ्य की दुर्गति हो गयी जो मनुष्य के सम्पर्क में आये।

रोग को अंग्रेजी में डिजीज (disease) डिसआर्डर (disorder) आदि विभिन्न नामों से जाना जाता है। dis+ ease या dis + order यानि शरीर की चैन, व्यवस्था लय ताल जब खो जाती है तो भांति-भांति की बीमारियां होती है। गलत आहार मेल, प्रदुषित, परिशोधित, डिब्बा बन्द, प्रोसेस किया हुआ, कृत्रिम रसायन जैसे प्रिजरवेटिव ;सुरक्षाकारकद्ध फ्लेवर्ड, कलरेन्ट आदि मिले हुए आहार, तले हुए नमकीनादि कॉफी शराब, तम्बाकू नारकोटिक ड्रग्स कोलादि सॉफ्टपेय, दर्दनाशक, उत्तेज, गर्भनिरोधक, एण्टीबायोटिक्स आदि दवाइयों का दुरूपयोग, अनेक प्रकार के मानसिक तनाव, अतिश्रम, देर रात तक जागना, अपर्याप्त एवं विक्षुब्ध नींद एवं विश्राम, आत्मनिंदा, परनिंदा व्यायाम तथा श्रम का अभाव उपयोगी विटामिन, यिनरल तथा अन्य बायो एक्टिव माइक्रो न्यूट्रिएन्ट की कमी वाला आहार से शरीर की रोग निवारण जीवनी शक्ति कमजोर हो जाती है। प्राकृतिक चिकित्सा योग एवं आयुर्वेद का एक ही लक्ष्य है प्राकृतिक साधनों द्वारा रोगों का उपचार करने के बाद नैसर्गिक जीवन बीमा नैसर्गिक जीवन के अर्न्तीगत दिनचर्चा, रात्रि चर्या तुचर्या द्वारा आहार विहार विचार एवं व्यवहार को कुदरत के कानून का पालन करते

हुए disease-dis=ease या disorder-dis=order आदि को उद्घाटित या प्रकट करना है। dis लैटिन शब्द है जिसका अर्थ होता है पृथकता (sepration, removal, negativeness) पैदा करना उपरोक्त गलत जीवन शैली आरोग्य से अलग कर बीमारी disease पैदा करती है।

स्वास्थ्य जैसा शब्द किसी भी भाषा के शब्द कोष में नहीं है। स्वास्थ्य का अर्थ ही होता है स्वास्मिन तिष्ठति स्वस्थ: अर्थात जो अपने अन्दर प्रवेश कर 'स्व' में स्थित हो गया है "that one who has reached himself वही स्वस्थ है। जब बाहर एवं अन्दर का लय ताल, संगीत, हार्मोनी, रिद्म एवं नृत्य के मध्य संतुलन पैदा होता है तो सही में व्यक्ति चैन अमन शान्ति एवं स्वास्थ्य के अहसास से भर जाता है। स्वास्थ्य को अंग्रजी में हेल्थ कहते है जो हील (heal) शब्द से बना है जिसका अर्थ सुरक्षित, सुव्यवस्थित सुस्थित (safe and sound) होता हैं। चित, मन, तन, परिवार समाज के मध्य संतुलन का नाम स्वास्थ्य है। स्वास्थ्य की अनेक परिभाषाएं है किन्तु ये बेमानी हो जाती है क्योंकि स्वास्थ्य की परिभाषा नहीं बल्कि अहसास एवं अनुभूति होती है। स्वास्थ्य अव्याख्य है। रोग एवं बीमारियों की व्याख्या एवं परिभाषाएं होती है।

प्राकृतिक चिकित्सा योग एवं आयुर्वेद में रोग की नहीं रोगी के पुरे शरीर की चिकित्सा होती है। not treat the disease, only treat the patient । अन्य चिकित्सा पद्धति में जिन्हें रोग कहा जाता है और उनकी लाक्षणिक चिकित्सा दी जाती है, सिर्फ लक्षणों को दबाव दिया जाता है। जब कि प्राकृतिक योग एवं आयुर्वेद में जो रोग लक्षण एवं चिन्ह परिलक्षित होते हैं वे सिर्फ संचित दमित विकृत दुषित दोष एवं विकार है जिन्हें शरीर की जीवनी शक्ति निकाल बाहर कर स्वत: स्वस्थ होने का प्रयास कर रही है। रोगी की उम्र, उसकी जीवनी शक्ति, संचित विकार की मात्रा, धैर्य, विश्वा, समय, रोग की स्थिति, आत्मनियंत्रण एवं संयम की क्षमता, आनुवांशिकता, संस्कार आदि पर रोगी की चिकित्सा एवं आरोग्यता निर्भर करती है।

प्राकृतिक चिकित्सा में रोग के साथ शत्रुवत नहीं मित्रवत व्यवहार किया जाता है। खास करके तीव्र रोग सर्दी जुकाम, खांसी बुखार, दर्द, दस्त आदि सिर्फ ये सूचना देते है कि शरीर में संचित विकार शरीर के बरदाश्त करने की सहनीय क्षमता (threshold power) से अधिक हो गया। यह खतरे की घंटी (red signal) है। आहार, विहार एवं विचार के प्रति जाग जाओ। उसमें सुधार करों। दो हजार वर्ष पूर्व तीव्र रोगों का सम्राट "ज्वर एवं बुखार" के लिए हिप्पोक्रेटस का वक्तव्य "Give me the power to create a fever and i shall cure any disease" मनन करने योग्य है। यदि तीव्र रोगों को प्रकृति के पंच महाभूत चिकित्सा आहार उपवासादि द्वारा शरीर के विकार को निकाल दिया जाता है तो भविष्य में जीर्ण एवं मारक घातक रोग होने की संभावना समाप्त हो जाती है।

स्वास्थ्य यानि स्व में स्थित वहीं हो सकता है जो शारीरिक मानसिक एवं बौद्धिक एवं आत्मिक दृष्टि से सशक्त समृद्ध शक्तिशाली एवं संतुलित हो। प्रसिद्ध विश्व कोष वेबस्टर कॉलिजियेट डिक्शनरी में स्वास्थ्य हैल्थ की परिभाषा इस प्रकार दी जाती है।

"The state of being hale and sound in body mind or sow especially from physical disease or pain" यानि शरीर मन या आत्मा के मध्य समन्वय, सशक्त, शक्तिशाली सुव्यवस्थित स्थिति ही स्वास्थ्य है। स्वास्थ्य की स्थिति में किसी प्रकार शारीरिक रोग एवं पीडा नहीं होती है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) के अनुसार "state of complete physical, mental, social well being and not merely the absence of disease or infirnity" अर्थात सिर्फ बीमारी, शारीरिक एवं मानसिक निर्बलता से मुक्ति ही स्वास्थ्य नही है। बल्कि व्यक्ति की शारीरिक मानसिक एवं सामाजिक स्तर पर शक्तिशाली जीवन यापन एवं संतुलन ही स्वास्थ्य है।

आयुर्वेद के अनुसार सम दोष: सम अग्निश्च: सम धातु मलक्रिप:। प्रसन्नात्मेन्द्रियमना: स्वस्थ इत्यामि धीयत।। अर्थात शरीर में सभी दोष, 13 अग्नि, सप्त धातु, 3 प्रकार के मल आदि समयानि उदासीन एवं संतुलन में होते है सभी इन्द्रियां मन चित्र एवं आत्मा साम्यावस्था में रहकर प्रसन्न एवं अपने-अपने कार्य करते है आनन्दित रहते है। शरीर की इस स्थिति को स्वास्थ्य कहते है। धर्मार्थ काम मोक्षणामारोग्यं मूल मूत्तमम यानि स्वस्थ होने पर ही जीवन के चार अनिवार्य कर्म धर्म अर्थ काम और मोक्ष सफलता से सम्पादित होते है। और इसके लिए आयुर्वेद आयु का ज्ञान कराता है तदायुर्वेद तीत्यायुर्वेद: हमारी आयु कैसी होनी चाहिए इसे भी चरक ने वर्णन किया है - हिताहितं सुखं दु:खमायुस्तस्य हिताहितम

हितकारी अहित कारी, सुखमय आयु दु:ख मय आयु के लिए किस प्रकार आहार विहार विचार एवं व्यवहार यानि पथ्य होना चाहिए। इन सबका ज्ञान देने वाला एवं पथ प्रशस्त करने वाला प्राकृतिक चिकित्सा योग एवं आयुर्वेद ही है।

अत: प्राकृतिक चिकित्सा योग एवं आयुर्वेद आरोग्य का शाश्वत स्वंय सिद्ध सनातन अनादि एवं अनन्त विज्ञान है इनका अर्न्तेसम्बन्ध भी अनादि और सनातन शाश्वत है इनके सत्य प्रभाव से व्यक्ति रोगमुक्त होकर अपने सही स्वभाव स्वास्थ्य में स्थित हो जाता है। गलत मान्यता और दुश्चिन्ताओं से मुक्त होकर आरोग्य के नित्यभाव में लीन रहते हुए अपने सही स्वभाव को प्राप्त होता है।

सोय·मायुर्वेद: शाश्वतो निर्दिश्यते अनादित्वात।

स्वभावसंसिहलक्षणत्वात भावस्वभावनित्यत्वाच्च।।

प्राकृतिक चिकित्सा में निरापद जीवनोंपयोगी वनौषधियों जैसे आंवला, धश्तकुमारी, अश्वगंधा, अर्जुन, अशोक, हरड़, हल्दी, चिरायत, कुटकी आदि का प्रयोग किया जाता है किन्तु कुचलाख् धतूरा, भांगादि विषैले, नशे वाले औषधियों का प्रयोग उचित नहीं है। रसरसायन एवं धात्विक भस्मादि चिकित्सा का प्रयोग वर्णित है। आयुर्वेद का मूल सिद्धान्ता दोष प्रशमनं पर प्राकृतिक चिकित्सा का कार्य करती हैं। इसलिए प्राकृतिक चिकित्सा में निरापद पंचकर्म एवं योग के षट्कर्म का अच्छा समन्वय है। प्राकृतिक चिकित्सा में पंचभूतात्मक मिट्टी पानी धूप आकाश हवा आहार एवं प्रकृति मित्र (nature friendly) निरापद औषधि प्राकृतिक चिकित्सा के समग्र रूप से सक्षम एवं सशक्त बनाती है।

सारांश

प्रस्तुत इकाई में योग प्राकृतिक चिकित्सा एवं आयुर्वेद-षटकर्म-पंचकर्म, रोग का कारण भाग्य को देना या भगवान के कोष का प्रकोप मानना स्वंय को धोखा देना , रोग का कारण कीटाणु , विषाणु, वायरस, बैक्टीरिया, फंगस आदि का स्वास्थ्य की दृष्टि से संक्षेप में वर्णन किया गया है।

13.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

- आयुर्वेद सिद्धान्त रहस्य - आचार्य बाल कृष्णZम दिव्य प्रकाशन, दिव्य योग मंदिट्रस्ट पतंजलियोग पीठ, हरिद्वार
- प्राकृतिक चिकित्सा एवं योग - डॉ नागेन्द्र कुमार नीरज मां सीता स्मृ तिप्रकाश न माला 3 3 /153 मानसरोवर जयपुर
- रोगों की सही चिकित्सा - डॉ नागेन्द्र कुमार नीरज डॉ मंजु नीरज जयपुर बुक हाउस, जयपुर
- आयुर्वेदीय पंचकर्म विज्ञान - वैद्य हरीदास श्री धर कस्तुरे श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि.
- प्राकृतिक आयुर्विज्ञान - सम्पादक डॉ राकेश निन्दक डॉ गंगा प्रसाद गौड "नाहर" आरोग्य सेवा प्रकाशन उमेश पार्क मोडीस
- मेरा आहार मेरा स्वास्थ्य I, II & III भाग - डॉ नागेन्द्र कुमार नीरज पापुलर बुक डिपो, जयपुर
- change your brain change your body- daniel G. A. men m.d. three rivers press.com
- गीता प्रबोधनी - स्वामी रामसुखदास, गीता प्रेस गोरखपुर
- आर्य योग प्रदीपिका ;पतन्जल योग दर्शनद्ध - स्वामी ब्रह्ममूनि परिवाजक सत्यधर्म प्रकाशन, रोहतक लेखक - डॉ. नागेन्द्र कुमार नीरज

13.9 महत्वपूर्ण प्रश्न

1. प्राकृतिक चिकित्सा, षट्कर्म एवं पंचकर्म का रोगहरण में कैसे प्रयोग किया जाता है?
4. चिकित्सा में आत्मानुशासन की कितनी आवश्यकता है? प्राकृतिक एवं आयुर्वेदिक चिकित्सा के सन्दर्भ में समझाइये।
5. स्वस्थ एवं सुखी जीवन जीने के लिए चिकित्सा का महत्व समझाइये।

इकाई - 14

विजातीय द्रव्य का सिद्धांत एवं रोग के कारण

इकाई की संरचना

14.1 उद्देश्य

14.2 विजातीय द्रव्य का अर्थ व सिद्धान्त

14.3 विजातीय द्रव्य से बचाव के बिन्दु

14.4 रोग के कारण

14.5 रोग का वर्गीकरण

14.6 रोग की चिकित्सा हेतु मुख्य बिन्दु

14.7 बोधात्मक प्रश्नावली

14.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

14.1 उद्देश्य

विजातीय द्रव्य शरीर में जाना सांसारिक गतिविधियों की एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। यह प्रक्रिया दिन प्रतिदिन के खानपान, रहन-सहन, कार्य क्षेत्र का वातावरण, अपने व परिवार-रिश्तेदारों के संबंधों का नकारात्मक प्रभाव तथा मुख्य रूप से हम कह सकते हैं कि जीवन शैली के बदलाव के अप्राकृतिक पहलु के द्वारा शरीर में कुछ अनावश्यक व अहितकारी द्रव्यों का जन्म देती हैं, जिनको हम विजातीय द्रव्य के नाम से जानते हैं। रोग की प्रारम्भिक अवस्था का जो भी रूप नाम हैं वही विजातीय द्रव्य है। इसी अध्ययन को विस्तार से समझाने, विजातीय द्रव्य कब रोग के रूप में अर्थात् लक्षण बन कर सामने आते हैं।

ये लक्षण शरीर के किस अंग विशेष में आते हैं। इसी अवलोकन के आधार पर दूसरी पद्धतियां रोग का नामकरण करती हैं। परन्तु प्राकृतिक चिकित्सा में ''एक ही रोग एक ही कारण तथा एक ही उपचार'' का सिद्धान्त पर सब कुछ आधारित है। इस कारण रोग के मूल विजातीय द्रव्य का यहां अध्ययन करना आवश्यक है। यह विजातीय द्रव्य - मल - मूत्र -पसीना, ईर्ष्याद्विेश, जुदाई, लोभ, हिंसा के रूप में शरीर में आकार रोग उत्पन्न करते हैं। रोग के शरीर में आने के कारण क्या हैं? रोगों के शरीर में प्रवेश करने के साधन अथवा प्रकार कितने हैं? इस जानकारी का अध्ययन करके हम समझ पाएगे कि विजातीय द्रव्य तथा रोगों के कारणों से किस प्रकार दूर रह सकते हैं। इस प्रकार अच्छे स्वास्थ्य की ओर अग्रसर होने के लिए हमें रोगों के प्रकार समझ कर उनकी अनुपस्थिति की स्थिति कैसे बन सकती हैं अर्थात् स्वास्थ्य का आधार ही रोगों के उन्मूलन से प्रारम्भ होता है। आइये इसका पूर्ण अध्ययन हेतु आगे विवेचन को समझने का प्रयास करें।

14.2 विजातीय द्रव्य का अर्थ व सिद्धान्त

मानव शरीर में खान-पान रहन-सहन वातावरण इत्यादि का प्रभाव सर्वथा आता जाता रहता है। उसी के फल स्वरूप में खान-पान के द्वारा एवं श्वातसलेने की प्रक्रिया में किसी प्रकार की भी त्रुटि पाई जाती है तो वही बुद्धि हमारे शरीर में प्रविष्ट होके विजातीय द्रव्य के रूप में शरीर के किसी भी भाग को प्रभावित कर देती है। यह अवांछित द्रव्य शरीर के अन्य द्रव्यों से मल नहीं खाता, इस कारण शरीर के विभिन्न भागों में रोग आने के लक्षण दिखाई देने लगते है। जिससे हमें रोग का आने का संकेत भी प्राप्त होता है। यही विजातीय द्रव्य दिन प्रतिदिन की क्रियाओं में स्वाभाविक रूप से शरीर में जमा होते रहते है। और शरीर के विभिन्न संस्थान उनको मल, मूत्र, पसीना एवं श्वाभस निष्कागसद्वारा शरीर से बाहर निकालते रहते हैं जब इसके निकालने के सभी मार्ग अवरूद्ध हो जाते है। तभी रोगों की उपस्थिति बन जाती है। अर्थात् यही विजातीय द्रव्य शरीर में जमा होकर हरकत में आ जाते है और उपद्रव शुरू कर देते है। विजातीय द्रव्य का शरीर में जिस भी अवयव पर प्रभाव पड़ता है। उसी अवयव (अंग) के नाम से रोग का नाम दिया जाता है। उपरोक्त जानकारी से पता चलता है कि केवल गलत खान पान से ही विजातीय द्रव्य शरीर में नहीं जाते है। अपितु अन्य मार्ग से भी ये शरीर में प्रविष्टखकरते है जिनमें से अप्राकृतिक जीवन शैली, प्रदूषण या गन्दे स्थान पर श्वा स लेने से अथवा किसी जहरीले कीटाणु के काट लेने से या फिर अत्यधिक अनियमित दवाओं के सेवन से मानसिक कुविचार अनियमित भोग विलास, आराम दायक या आलस्य पूर्ण दिनचर्या इत्यादि से भी विजातीय द्रव्य शरीर में एकत्र होते रहते है। इन्ही विजातीय द्रव्य को आयुर्वेद में दोष कहा जाता है। प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति विजातीय द्रव्य की ही सर्वोत्तम चिकित्सा है।

प्राय: यह माना जाता है कि विजातीय द्रव्य कमजोर व्यक्ति में जल्दी पनपते है। किन्तु यह कमजोर व्यक्ति शरीर में कमजोर ना होकर उसकी जीवनी शक्ति का कमजोर होना पाया जाता है। जब शरीर में जीवनी शक्ति कमजोर हो जाती है उस अवस्था में शरीर से विजातीय द्रव्य का निष्का।सनप्रभावित होता है। अर्थात् शक्ति हीन शरीर में जमा हुये कचरें को बाहर निकालकर शरीर को निर्मल न हो बना सकता। अत: विजातीय द्रव्यों के कारण शारीरिक सौन्दर्य एवं आकर्षण व बनावट प्रभावित होती है, स्वभाव चिड़चिडा हो जाता है बात बात पर क्रोध उमड़ता है भूख मर जाती है शरीर थुल थुल हो जाता है। अत: उसकी नीद हराम हो जाती है। इन सबके पीछे रात्रि में जागना, चिंताओं से घिरे रहना, किसी अति प्रिय को भूल न पाना, रात की शिफ्ट में नौकरी करना, शारीरिक क्षमता बैठाने के लिये औषधियों का प्रयोग करना, श्रमव्हीन जीवन चर्या व्याधियां। वाग भट ने भी कहा है - ''दोष ऐवहि सर्वेषाम रोगाणाम कर्ण में अर्थात सभी रोगों का कारण एक ही है जिसे दोष या विजातीय द्रव्य कहा जाता है। विजातीय द्रव्य तो एक ही है लेकिन उससे पैदा होने वाले लक्षण एवं रोग अनेकों पैदा हो जाते है। अर्थात् रोग एक होते हुये भी उसके रूप भिन्न - भिन्न पाये जाते है यह एक बहुत बड़ा तथ्य सामने आता है कि विभिन्न रोगों को उत्पति में कीटाणु नहीं होते अपितु विजातीय द्रव्य शरीर में भरे होने से उनमें रोग के कीटाणु पनपते है अथार्थ बाहरी वातावरण के कीटाणुओं को शरीर में प्रविष्ट होने से तब तक रोग नहीं पाते जब तक शरीर में उनको पनपते के लिए गन्दगी नहीं मिल जाती। यदि शरीर में गन्दगी नही है तो शरीर की जीवनी शक्ति कुछ कीटाणुओं के शरीर में आने का प्रभाव नष्ट कर सकती है अत: हम कह सकते है कि बाहरी कीटाणुओं को शरीर में प्रविष्टक्होने से तब तक रोग नही आते जब तक शरीर में उनको पनपने के लिए गन्दगी नहीं

मिल जाती। यदि शरीर में गन्दगी नहीं हैं तो शरीर में आने का प्रभाव नष्ट कर सकती है। अत: हम कह सकते है कि बाहरी कीटाणु शरीर में प्रविष्ट होकर भी शरीर में रोग पैदा नहीं कर सकते। जब तक जीवनी शक्ति प्रबल है। यही जीवनी शक्ति प्रत्येक शरीर में अलग अलग पायी जा रही है। अर्थात् किसी भी जीवनी शक्ति बहुत अच्छी होती है किसी की कम होती है इसी कारण हमारे शरीर के चारों ओर कीटाणु होने से कुछ को रोग होते है तथा अन्य को नहीं क्योंकि जिनकी जीवनी शक्ति प्रबल है वो कीटाणुओं के शरीर में आते ही वे असर कर देती है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि विजातीय द्रव्य ही रोगों का प्रमुख कारण है तथा तीव्र रोगों का जन्मदाता है। इसी के कारण आज विश्व में एक प्राकृतिक जीवन शैली का प्रभाव चारों और छाया हुआ है केन्सर, हृदय, रोग, उच्च रक्त चाप, मधुमेह, जोड़ों के दर्द व एड्स जैसी दुखद एवं जानलेवा बीमारियों का समाना करना पड़ रहा है। परन्तु प्राकृतिक चिकित्सा के सिद्धान्त व नियम आज भी अचूक सिद्ध होते जा रहे है क्योंकि मानव शरीर छित, जल, पावक, गगन, समीरा रूपी महाभूत की देने है। इन्हीं को उपयोगी व गुणवान मानते हुए प्राकृतिक चिकित्सा का अस्तित्व सशक्त है तथा अन्य चिकित्सा प्रणालियां मनुष्य कश्ति होने के कारण कुछ चीजों का छोड़ के शेष रोगों में मिथक बनती जा रही है। निष्कर्ष के तौर पर जीवन शैली एवं प्राकृतिक चिकित्सा के नियम व सिद्धान्त ही विजातीय द्रव्य से बचाकर स्वास्थ्य प्रदान कर सकती है अन्यथा रोगी से पीड़ित रहना निश्चित होता है।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि विजातीय द्रव्य को शरीर में पैदा होने से रोकना है तो अहितकर भोजन जो निम्न प्रकार है।

14.3 विजातीय द्रव्य से बचाव के बिन्दु

1 संयुक्त भोजन - जब एक ही समय पर विभिन्न खाद्य द्रव्यों का समावेश करके अर्थात् रोटी, दाल, चावल के साथ खीर दूध अचार घी इत्यादि का सेवन संयुक्त रूप से नहीं करना चाहिए।

2 मासाहारी भोजन

3 मिर्च मसाले व तला भुना भोजन

7 वासी व सड़ा गला भोजन

5 मृतभोजन - इस श्रेणी में चाय, केक, बिस्किट सफेद, चीनी, मिठाइयां नशीली व उत्तेजक खाद्य वस्तुऐं म्रत या निश्प्राण भोजन के अन्तर्गत आती है। इससे लाभ की अपेक्षा विजातीय द्रव्य पैदा होते है।

6 वेमेल भोजन - वे मेल अर्थात् विपरीत द्रव्यों को मिश्रित करके ग्रहण करने से वह भोजन नहीं विष बन जाता है। उदाहरण के लिए दाल-भात के साथ मांस का सेवन अथवा घी व शहद का बराबर बराबर मात्रा में खाने से मृत्युपतक हो सकती है।

इन सभी वे मेल द्रव्यों के सेवन से शरीर में विजातीय द्रव्य पनपते है संक्षेप में हम कह सकते हैं विजातीय द्र्रव्य रूपी रोग के स्वरूप को दूर रखना चाहते है तो उपरोक्त का सेवन कदापि नहीं करना चाहिए।

रोग का तात्पर्य है शरीर की तथा मन की विकार युक्त अवस्था रोग कोई बाहरी तत्व नहीं है जो शरीर पर आक्रमण करके विकार युक्त बनने के लिए बाध्य करे रोग शरीर के आंत्रिक भाग में विजातीय द्रव्यों की उपस्थिति का नाम है। शरीर के कष्टदपूर्ण लक्षणों का अथवा पीड़ा युक्त लक्षणों को दबाते रहने को डॉ. एलेक्सिस ने (कश्त्रिम स्वास्थ्य) का नाम दिया है ऐसे लक्षणों को दबाकर रहने वाला व्यक्ति पीडामय से सदा भयभीत रहता है इसी लिए वह कभी भी रोग मुक्त नहीं हो पाता अर्थात् भय से रहित व्यक्ति ही स्वस्थ हो सकता है।

डॉ. जैसमीमसर गेहमन के अनुसार स्वास्थ्य परिवर्तित अवस्था को ही रोग कहते है शारीरिक धर्म अथवा स्वास्थ्य के विरूद्ध आचरण करना अनिश्कारी मनोवश्तियों का असंगत प्रयोग अहितकर चिन्तन इत्यादि ही रोग का कारण होते हैं। प्रकृति एवं प्राकृतिक नियमों का पालन न करना हा रोगों को जन्म देता है।

रोग शरीर में कही भी किसी न किसी अवस्था में छिपा रहता है उस अवस्था में उसका कोई आकार या सकल नहीं पहचानी जा सकती लेकिन जब वह विकराल रूप धारण कर निकलने के लिए अपना रूप बदलता है त बवह आकार या नाम के रूप में पहचाना जा सकता है इन्ही नामों में से कुछ नाम जैसे चेचेक, बुखार, दस्त, फोड़े, उल्टी, कमर दर्द, सिर दर्द इत्यादि के रूप में देखने को मिलते है अर्थात् शरीर में संचित मल कभी ना कभी इन रूपों की दो अवस्थाएं अथवा रूप में जो जो रोगों के विभिन्न लक्षणों के आने से पहले की अवस्था है दूसरा साकार रूप जो रोगों के विभिन्न नामों से जाने जाते हैं अर्थात विभिन्न अंगों तथा विभिन्न रूप के रूप् से जाने जाते हैं अर्थात् विभिन्न अंगों तथा विभिन्न रूप के रूप् में देखे जात सकते हैं किसी का भी शरीर देखने से स्वस्थ दिखाई पड़ सकता है। लेकिन यह आवश्यक नही कि वह व्यक्ति वास्तव में भी स्वस्थ क्योंकि रोग के शुरू होने अर्थात् विजातीय द्रव्य का एकत्र होने उसके पनपने और उसके बाद उसके निकलने में काफी समय लग जाता है जब तक वह शरीर के अन्दर निराकार रूप में पनप रहा था तब तक बाहर से व्यक्ति स्वस्थ दिखाई देता है। परन्तु अन्दर रोग बढता जा रहा होता है। इससे निष्कर्ष निकलता है कि रोग अपना सामने आने में कई बार बहुत समय लग जाता है लेकिन ऐसी अवस्था बहुत भयानक व प्राण घातक सिद्ध होती है।

वर्शों के अनियमित खान-पान, रहन-सहन, प्रतिकूल जलवायु इत्यादि के कारण शरीर में विजातीय द्रव्य रूपी जहर बूंद बूंद करके बढ़ता रहता है बाद में यही बूद बीज का काम करके एक विषाल पेड रूपी रोग को जन्म देती है। कभी कभी कुछ बूंदों के जमा होते ही तीव्र रोग आ जाते है जिससे विजातीय द्रव्य की वह बूंद जो जहर रूपी बीज बनने जा रही थी वह तीव्र रोग के द्वारा बाहर निकालती है। इस प्रकार यदि हम ये कहें कि तीव्र रोग हमें स्वास्थ्य प्रदान करने के लिए आते है तो बड़ा अटपटा सा लगता है कि रोग से स्वास्थ्य कैसे मिल सकता है परन्तु यह बात पूर्णत: सत प्रतिशत ठीक है क्योंकि विजातीय द्रव्य के श्रीर में बडा रोग आने से बचा जा सकता है। अब बात यह उठती है कि वह विजातीय द्रव्य रूपी जहर शरीर में क्यों आया। जब भी हम प्रकृति से दूर होकर नियमों की परवा न करके नियम विरूद्ध आहार - विहार लेते है वही इस जहर के लिए जिम्मेदार होता है स्वास्थ्य सिद्धान्तों को अनदेखी करना और अपने विचारों को संयमित न करना इसका मुख्य कारण है अग्रेज कवि मिल्टन के अनुसार म नही मनुष्य के रोगों का कारण है क्योंकि रोग सबसे मन में ही पैदा होते है फिर शरीर पर लक्षण दिखाई पड़ते है।

14.4 रोग के कारण

रोग का मुख्य कारण तो प्राकृतिक स्वास्थ्य शास्त्र के नियमों का उल्लघंन है पूरी दुनिया में रोग जीवन शैली गलत होने के कारण व्यापक रूप ले रहे है जेकिन इसका अभिप्राय: ये नहीं है कि सभी को बीमार पड़ना अनिवार्य है यदि निम्न बातों को अथवा स्वास्थ्य नाशक आदतों को ध्यान में रखें तो हम रोगों से बच सकते है ऐसी ही रोग कारक आदतें निम्न प्रकार है -

1 रोगों का भय - महामारी, हेजा, प्लेग, डेगूं इत्यादि रोगों से उतनी ज्यादा मौते नही होती जितनी की रोगी उस रोग के भय से मन में भय पैदा कर लेता है और मृत्युख्को प्राप्त होता है चरक के अनुसार भी काल बडी इन्द्रीय विषयम आदि के मिथ्या, योग, अयोग, और अतियोग होना भी शारीरिक मानसिक व्याधियों का कारण है।

2 अप्राकृतिक जीवन यापन - डॉ. ए. जुस्ट ने कहा है कि बहुत लोग सोचते है कि अकाल मृत्युय तथा रोग भगवान की देन है किन्तु ऐसा बिलकुल नहीं है इसका मुख्य कारण तो हमारी जीवन शैली के मुख्य घटक ही है जो इस प्रकार है -

1 बिना चबाये भोजन करना

2 बिना भूख के भोजन करना

3 दिन में बार-बार बिना समय खाते रहना

4 एक बार के भोजन में ठूस कर खा लेना

5 संयोग विरूद्ध आहार का सेवन करना

6 खाद्यय पदार्थों को तेल घी में गलत ढंग से पकाना

7 छोटी - छोटी श्वासें लेना

8 व्यायाम व शारीरिक श्रम का अभाव होना

9 वे ढंग से टाइट तंग व मोटे कपड़ों को पहनना।

10 अत्यधिक सौन्दर्य प्रसाधनों को शरीर पर लगाना

11 चलने बैठने व काम करने के ढंग में शारीरिक स्थिति का गलत प्रयोग करना

12 लालच व अत्यधिक क्रोध व ईर्ष्यारजैसी मानसिक स्वास्थ्य खराब करने वाली प्रवश्त्तियों से ग्रस्त होना।

13 परिवार व समाज के प्रति तनाव पूर्ण रिश्ते से दैनिक कार्यों में समस्याऐं बढ़ा लेना या रूचि न लेना।

3 प्रतिरोधक क्षमता का ह्रास - शरीर में दिन प्रतिदिन के धूल व गलत आहार-विहार से जो विजातीय द्रव्य शरीर में आते है उनको बाहर करने का काकम जीवनी शक्ति ही करती है जिसको प्रतिरोधक क्षमता

भी कहा जा है यही जीवनी शक्ति5 यदि कमजोर हो जाती है तो वह विजातीय द्रव्य को बाहर निकलने में असमर्थ हो जाती है जिसके कारण स्वभव चिडचिडा होना भूख न लगना, ठहक से नींद न आना, चेहरा निस्तेज होना इत्यादि लक्षणों के फलस्वरूप रोगों का आना जाना बना रहता है इसलिए अत्यधिक औषधियों का सेवन रात में कम करना या जागना तनाव इत्यादि से घिरे रहना शक्ति से अधिक कार्य करने से बचना बहुत जरूरी है क्योंकि ये सभी चीजें प्रतिरोधक क्षमता को घटाती है।

4 पैत्रिक परम्परा - वंश के अनुसार माता पिता के खून के प्रभाव से अथवा गर्भाधान के समय रज और वीर्य माता पिता के दोष सन्तान में आना स्वभाविक है अत: ऐसे परम्परा एवं संस्कारों से प्रभावित व्यक्ति को प्रारम्भ से ही अपने शरीर में विजातीय द्रव्य पैदा होने से पहले ही प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा बाहार करते रहने का प्रयास करना चाहिए।

5गलत उपचार - विजातीय द्रव्य के सिद्धान्त के अनुसार शरीर में संचित अनावश्यक मल जमा होना ही रोगों का मुख्य कारण है इसलिए इस मल का उल्टी दस्त के मुख्य कारण है इसलिए उसे रोकने के लिए दबा रूपी विष का प्रयोग करना गलत उपचार की श्रेणी में आता है क्योंकि दुशित मल बाहर निकालने की जीवन शक्ति का प्रयास निष्फल करना वह भी औषधयों के द्वारा गलत है इससे जीवनी शक्ति कमजोर हो जाती है तथा वह आगे आने वाले समय के लिए विजातीय द्रव्यों को बाहर निकालने में असफल हो जाती है।

6बाहरी दुर्घटना - किसी भी चोट या दुर्घटना के कारण अचानक शल्य चिकित्सा करनी पडे अथवा हड्डी टूट जाने के कारण रोग की अवस्था बन जाना इसके अन्तर्गत आता है।

7 कीटाणुओं के कारण रोग - प्राकृतिक चिकित्सा अनुसार रोग उत्पति में कीटाणु कभी भी प्रारंभिक कारण नहीं बनते अपितु शरीर में जमा मल में कीटाणु पनपते है अर्थात रोग का प्राथमिक कारण प्राकृतिक चिकित्सा अनुसार विजातीय द्रव्य ही है उसके बाद कीटाणु रोग को बढ़ाने में सहायक बन सकते है क्योंकि जीवाणु मल को खाकर मल को सड़ाने का काम करते है और उसी सडन से अपनी संख्या में वृद्धि करते है। इसी कारण महामारी के दौरान रोग फैलने की गति बहुत तेज हो जाती है क्योंकि अधिकतर लोगों के शरीर में मल संचित रहता है जिसमें बाहिरी कीटाणु प्रवेश करके जल्दी पनपने लगते है।

14.5 रोग का वर्गीकरण

विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार व्यक्ति आध्यात्मिक मानसिक सामाजिक एवं शारीरिक रूप से स्वस्थ न होने की स्थिति में रोगी कहलाता है। अर्थात ऊपर बताई गयी चार अवस्थाओं में से किसी एक अवस्था में भी स्वस्थ न होना रोगी बना देता है। अत: रोग को उनके वर्गीकरण अनुसार समझने के लिए भारतीय शास्त्रों के अनुसार औधिदैविक, आधि दैहिक और आधि भौतिक ये तीन प्रकार के वर्गीकरणों की व्याख्या है जिसमें कुछ व्याधियां दैविक प्रकोप अथवा भाग्य से उत्पन्न होती है तो कुछ हमारे गलत खान-पान से होती है और तीसरे प्रकार की व्याधि सांप या किसी जानकवर अथवा भूत प्रेत की पीडाओं से होती है उपरोक्त विश्व स्वास्थ्य संगठन की परिभाषा के अनुसार रोगों के चार भाग का अध्ययन हम निम्न प्रकार से कह रहे है -

1आध्यात्मिक रोग - जिस प्रकार आत्मा व शरीर दो अलग अलग जीचें है इस कारण किसी एक में भी रोग आने से उसका प्रभाव दूसरे पर आना स्वाभाविक है शरीर, मन और आत्मा तीनों किसी न किसी रूप से एक दूसरे से जुड़े हुए है लेकिन उन तीनों के अनुसार अलग अलग है उदाहरण के लिए त्यार किसी शरीर से नहीं किया जा उसकी आत्मा अर्थात् उसके अच्छे व्यवहार अच्छी आदतों को ही पसन्द किया जाता है न कि उसके शरीर के आकर्शक को किसी व्यक्ति के शरीर को अच्छे बुरे के संज्ञा उसकी आत्मा द्वारा किये गये अच्छे कार्यों पर आधारित होती है उसी प्रकार प्रभु ने अविश्वास करना एक आध्यात्मिक रोग का स्वरूप माना जाता है ऐसे रोगों की चिकित्सा के लिए महात्मा गांधी जी ने पांच तत्व की चिकित्सा के साथ साथ छटा तत्व रामनाम आवश्यक बताया है चिकित्सा में राम नाम तत्व को हटाकर पंच महा भूत चिकित्सा द्वारा रोगों को ठीक करना असम्भव है अत: हम कह सकते है आध्यात्मिकता का अभाव रोग उत्पति का कारक बनता है।

2मानसिक रोग - मानसिक रोग इतनी छोटी छोटी बातों से उत्पन्न हो जाते है जिनकी हम दिन प्रतिदिन को गतिविधियों में अनदेखी करते रहते है। यदि थोडा सा भी ध्यान और विवके रखा जाय तो उनसे बचना जितना आसान हो जाता है उतना ही इनमें लापरवाही करना भयानक एवं अनिश्ठकारी बन जाता है मानसिक रोग शारीरिक रोगों से ज्यादा खतरनाक होते है इस तरह की व्याधियों में निराशा, अहंकार, लोभ, चिन्ता, ईर्ष्याॖ्घृणा, द्वेश अहिंसा, भय, अज्ञान स्वार्थ अविश्वास बहम पागलपन आदि रोग आते है लुई कुने के अनुसार विजातीय द्रव्य की मात्रा बढकर पीठ में होते हुए रीड की हड्डी को प्रभावित करते हुए दियांग की नाजुक ज्ञान इन्द्रियों जकड लेता है क्योंकि इसका मुख्य प्रभाव सुषुम्नाक्षाडी पर अधिक आता है यह रोग स्त्रियों की अपेक्षा पुरूषों में अधिक आता है क्योंकि पुरूष शराब, सिगरेट इत्यादि संयम नहीं कर पाते है साथ ही साथ बचपन से ही आर्थिक अभाव उदास घर का वातावरण वेमेल विवाह अर्मानों का पूरा न होना लम्बी बीमारी अथवा बार बार बीमार होना अत्यधिक काम करना बच्चों का माता-पिता के प्रति अथवा माता पिता का बच्चों के प्रति लगाव कम होने से भी बच्चे आने वाले समय में चोर, अपराधी, बतमीज, क्रोधी और झूठे आसानी से बन जाते है। मानसिक रोगों को शरीर के स्नायु के मार्गों में बादा बनते हुए शरीर के तन्तुओं को नष्ट कर देते है। जिससे शरीर की प्रतिरोधक शक्ति कमजोर हो जाती है और शरीर से मल रूपी विजातीय द्रव्य पूरी तरह से नहीं निकाल पाते विदेशी मनोवैज्ञानिकों ने लक्वा रक्त की कमी टीबी जैसे जान लेवा रोगों में 9 0 प्रतिशत भाग मनोविकार से शुरू होता है एक उदाहरण से मन में भय होने से कैसे रोग आते है यह आसानी से समझा जा सकता है एक बार रेडियों पर शेर के गर्जने की आवाज सुनकर एक बच्चा बेहाश होकर जमीन पर गिर गया दो घण्टे बाद जब उस बच्चे को होश आया तो देखा कि उसे दस्त व उल्टियां शुरू हो गयी इससे स्पष्ट हो जाता है कि मन में भय आने से किस प्रकार विभिन्न बीमारियां आसानी से आ जाती है ऐसे बहुत से उदाहरण जैसे भूत प्रेत का भय तथा रस्सी को सांप समझ लेने का भय व्यक्ति को वर्शों तक बीमार बनाये रखता है इसी प्रकार चिन्ता आज का प्रमुख मानसिक रोग है जो भय से उत्पन्न होती है चिंता के द्वारा खून में रासायनिक परिर्वतन होने शुरू हो जाते है जिससे रक्त में विकार आ करके रक्त सूखना शुरू हो जाता है और शरीर कमजोर पकडकर क्रान्तिहीन हो जाता है और यह अवस्था गहरी व लम्बी हो जाय तो मनुष्य चिन्ता से चिता तक पहुंच जाता है ऐसे रोगियों के मूह गाल पिचक करके रात को बार बार नीद टूट जाती है, और उसका पाचन खराब हो जाता है यह वह कीडा है जो शरीर रूपी पेड को जड़ से खोखला कर देता है जो

शरीर रूपी पेड को जड से खोखला कर देता है एक शोध के अनुसार मानसिक असन्तुलन से विशेषकर ईर्ष्या से खून में जहर बन जाता है जो बात या वायु रोग में परिवर्तित हो जाता है इससे स्नायु प्रणाली सिकुड जाती है जोड जकड जाते है।

जिससे खून का प्रवाह धीमा होकर विभिन्न अंगों को सुन कर देता है ठीक इसी तरह से मोह और वासना जिसको हम गलती से प्रेम कहते है से चिडचिडा पन हीन भावना इत्यादि रोग शरीर को धुन की तरह लग जाते है इसलिए उग्रता लाना उत्तेजित होना हर बात में बहस करना दूसरे को डरा धमका कर अपनी बात ऊपर रखना तथा अपनी इच्छा की पूर्ति करना दूसरों पर अधिकार जमाना इत्यादि से दूर रहना ही मानसिक रोगों को बचाव है मन चंचल होने पर एक गिलास ठंडा पानी पीने अथवा रामनाम का जाप कर ले या अपने को वहां से हटाकर दूसरी जगह ले जायें।

3 शारीरिक रोग - शारीरिक रोगों में दो प्रकार के रोग माने जाते हैं एक तीव्र रोग जो प्रकट होने के साथ साथ भी उग्र रूप धारण कर लेते हैं उदाहरण के लिए हैजा, जुकाम, दस्त, उल्टी, सिस दर्द, आदि इसके अन्तर्गत आते है डॉ. लिण्डल्हार के अनुसार इसकी पांच अवस्थायें बताई गयी है पहली अवस्था में शरीर के किसी भाग में भर जाने से उत्तेजना के द्वारा धीरे धीरे या कभी कभी जल्दी एक वि शेश रूप धारण कर लेते है दूसरी अवस्था में रोग का वह रूप बढ कर कष्टधकारक हो जाता है रोगी सूजन बुखार इत्यादि से कमजोरी महसूस करता है तीसरी अवस्था में रोग का रूप बढ कर कष्टक्कारक हो जाता है रोगी सूजन बुखार इत्यादि से कमजोरी महसूस करता है तीसरी अवस्था में रोग से प्रभावित स्थान के कण नष्ट होने से घाव बन जाता है मवाद पड जाती है तथा रक्त बहना शुरू हो जाता है रोग की यही जोखिम की दशा होती है इस घडी को पार करने पर शरीर रोग मुक्त होना प्रारम्भ करता है उसी को चौथी अवस्था भी कहते है जिसमें रोग खत्म होना शुरू होता है व उसके लक्षण एक एक करके कम होते जाते है पांचवे व अंतिम अवस्था में रोग के मूल कारण विजातीय द्रव्य पूरी तरह से शरीर से बाहर होने शुरू हो जाते है और शरीर पुन: अपने स्वाभाविक रूप में आना शुरू हो जाते है।

2. जीर्ण (पुराने रोग) - विजातीय द्रव्य तीव्र या उग्र होकर के निकलने के बजाय दवाओं से या किसी अन्य कारण से दबे रहेकर शरीर के भीतर भाग में बने रहते है जो लम्बे समय तक हल्का हल्का कष्टक्देते हुए शरीर में बने रहते है जिनको हम जीन रोग के नाम से पुकारते है ये रोग तीव्र रोगों के द्वारा विजातीय द्रव्यों को पूरी तरह निकालने में असमर्थ होने अथवा उनको निकालने में बाधा उत्पन्न होने से पैदा होते है उदाहरण के लिए बार बार बुखार होने पर उसको दवाओं से दवाते रहने से एक्समा रोग (टीवी) हो जाती है तथा बार बार जुकाम होने से एन्टीर बायोटिक्खाकर दबा देने से अस्थमा हो जाता है अर्थात श्वाहसकी बीमारी लग जाती है तीव्र रोगों में पीडा अधिक होती है लेकिन जीर्ण रोगों में पीडा कम हो करके ज्यादा अवधि तक बनी रहती है जिससे पूरा जीवन असहनीय व दुर्लभ हो जाता है और रोगी धैर्य खोकर के निराश हो जाता है ऐसे रोगों को दूर करने के लिए रोगी को चिकित्सक पर पूरा विश्वास करते हुए प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा उपचार लेना चाहिए जिसके अन्तर्गत विभिन्न उपचारों के माध्यम से उसकी जीवनी शक्ति को मजबूत बनाना होता है तथा उसके बाद जीर्ण रोगों को उभाइ लाकर तीव्र रोग की स्थिति पैदा करते हुए विजातीय द्रव्यों को बाहर निकालकर रोग को ही नहीं उसकी मूल अवस्था को भी

दूर कर दिया जाता है। लेकिन इसमें स्थिति भयानक होकर के खतरा पैदा कर सकती है। इस लिए ऐसे रोगों की चिकित्सा में थोड़ा टाइम अधिक लग जाता है परन्तु रोग जड़ से चला जाता है।

14.6 रोग की चिकित्सा हेतु मुख्य बिन्दु

1 **रामनाम -** इस चिकित्सा पद्धति में उपचार के साथ साथ रोग को दूर करने की इच्छा नियमों का पालन और पंच तत्व चिकित्सा के साथ साथ मन में ठीक होने का दृढ विश्वास ही चिकित्सा का रोग रहित प्रभाव मिल सकता है अर्थात रामनाम रूपी श्रद्धा व्यक्ति के अन्दर बसने वाली शक्ति में उत्पन्न होनी आव श्यक है यही शक्ति आरोग्य प्रदान करती है जिसको कोई जीवनी शक्ति कहता है कोई परमात्मा कोई अन्तर आत्मा कोई उपासना अथवा प्रार्थना कहता है।

2 **मन की सोच -** यह बात बिल्कुल सत्य है कि रोग की अवस्था में मन में जैसे विचार होगे उसी के अनुसार रोग का घटना या बढ़ना आधारित होता है इसलिए आवश्यक हैं रोगी ऐसे वातावरण में रहे जहां उसके मन में रोग के ठीक होने की अनुभूति अथवा क्रोध भय, चिन्ता इत्यादि वेग उत्पन्न ना होने दे सुधार के लक्षणों का अवलोकन करते हुए अपने विचारों को सकारात्मक रूप प्रदान करें।

3 **संयम -** जैसा कि कहा गया है कि अकेला परहेज सौ रोगों की एक मात्र दवा है साथ ही सर्वप्रथम उपचार भी है। जिसका दूसरा नाम संयम है इसके बिना बढिया से बढिया उपचार भी उतना अच्छा परिणाम नहीं दे सकता जितना संयम के परिणाम आते है महात्मा गांधी जी ने संयम ही जीवन को बिना नीम का घर बताया संयम ही सभी प्रकार के शारीरिक मानसिक व आध्यात्मिक रोगों की सबसे अच्छी औषधि अथवा उपचार है।

4 **सम्पूर्ण आराम (विश्राम) -** रोग की अवस्था में शीघ्र स्वास्थ्य प्राप्त करने हेतु यह आवश्यक हो जाता है कि शरीर में अनावश्यक ऐसे कार्यो में न लगाये जिससे जीवन शक्ति का कार्य वांछित हो क्योंकि उस समय जीवनी शक्ति का कार्य वाछित हो क्योंकि उस समय जीवनी शक्ति को एक मात्र काम विजातीय द्रव्य बाहर करना जरूरी होता है इसके लिए आवश्यक हो जाता है कि रोगी पूरी तरह से आराम करें।

5 **मन प्रसन्न रखना -** जब तक भी हम प्रसन्न होते है तब हमारे शरीर में सिरेटोनिन का स्त्रागवबढ जाता है जिसके कारण शरीर का विद्युत प्रभा बढ़ जाता है इसी के द्वारा शरीर में ऊर्जा बढती है और सकारात्मक विचार आने प्रारम्भ हो जाते है।

6 **गहरी निद्रा -** प्राकृतिक चिकित्सा के अनुसार माना जाता है कि रोगी की आवश्यकता आहार से अधिक नीद की होती है रोगी को कम से कम 8 से 10 घण्टे गहरी नींद सोना आवश्यक है नीद के द्वारा उसका स्नायु मण्डल तनाव रहित होकर पूरे शरीर को तनाव मुक्त कर देता है।

7 **मनोरंजन -** रोग की अवस्था से निकलने के लिए सदा प्रसन्न होना आवश्यक है तथा बार बार रोग के बारे में सोचने से बचना आवश्यक हे जिसके लिए रोगी को मनोरंजन जैसे कुछ गतिविधियों से जुड़े रहने की आवश्यकता है।

निष्कर्ष

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि विजातीय द्रव्य ही सभी रोगों की जननी है इसलिए इनको समझना उतना ही आवश्यक है जितना रोगों के आने के बाद उनका उपचार करना रोग न आने देना उतना कठिन काम नहीं है जितना कठिन काम रोग आने के बाद उनको ठीक करना है इसलिए समय समय पर विजातीय द्रव्य को बाहर निकालने हेतु पंच महाभूत चिकित्सा की सहायता लेनी चाहिए यही एक मात्र ऐसी चिकित्सा पद्धति है जो रोगों के बिना भी की जा सकती है अर्थात रोगो के बिना भी कि जा सकती है अर्थात रोग आये ही नही ऐसा केवल इसी पद्धति में संभव है। यद्यपि रोग आ भी जाये तो उसके कारणों व लक्षणों को समझते हुए रोग को दबाये बिना ठीक किया जा सकता है अर्थात जीवन शैली में बदलाव लाकर रोग के द्वारा आने से भी रोका जा सकता है। इसी चिकित्सा पद्धति के माध्यम से और जीवन शैली के परिवर्तन से शारीरिक - मानसिक आध्यात्मिक आदि सभी रो दूर किये जा सकते है।

14.7 बोधात्मक प्रश्नावली

1 विजातीय द्रव्य के सिद्धान्त से आप क्या समझते है? विजातीय द्रव्य का रोग से क्या संबंध है।

2 रोग का अर्थ एवं परिभाषा का वर्णन करते हुए विभिन्न रोगों का वर्गीकरण समझाइए?

3 रोग के कारण व लक्षण का वर्णन कीजिए?

4 रोग की चिकित्सा हेतु आवश्यक बिन्दुओं की व्याख्या करें?

14.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

- प्राकृतिक आयुविर्ज्ञान - राकेश जिन्दल
- प्राकृतिक स्वास्थ्य शास्त्र - आचार्य शेशाद्रि स्वामिनाथन
- वृहद प्राकृतिक चिकित्सा - डॉ. ओ.पी. सक्सेना

इकाई - 15

रोग निदान (आकृति - मल - मूत्र- पसीना एवं जिव्हा)

इकाई की संरचना

15.1 प्रस्तावना

15.2 उद्देश्य

15.3 निदान के अर्थ एवं परिभाषा

15.4 आकृति निदान, चेहरे द्वारा निदान

15.5 हड्डियों के द्वारा निदान, आँखों के द्वारा निदान

15.6 बालों के द्वारा निदान, अंगुलियों द्वारा निदान

15.7 नाखूनों द्वारा निदान, त्वचा द्वारा निदान

15.8 श्लेष्मा (थूक) द्वारा निदान, जीभ द्वारा निदान

15.9 मल द्वारा निदान, पसीने द्वारा निदान

15.10 मूत्र द्वारा निदान

15.11 सारांश

15.12 बोधात्मक प्रश्न

15.13 संदर्भ ग्रंथ सूची

15.1 प्रस्तावना

प्राकृतिक चिकित्सा एक ऐसी चिकित्सा पद्धति है जिसको एक सामान्य साधारण व्यक्ति भी आसानी से समझ समता है। तथा थोड़ी सी जानकारी से भी स्वत: उपचार कर सकता है। इसके बाद इसमें किसी प्रकार के रोग के लक्षणों के अनुसार उपचार नहीं दिया जाता अपितु शरीर में एकत्र विजातीय द्रव्यों को बाहर करने हेतु पंच महाभूत का सहारा लिया जाता है। पंच महाभूत द्वारा शरीर का शोधन कर उसे निरोगी बनाया जाता है। इसमें रोग का उपचार किया जाता है। न कि रोग के लक्षणों का दूसरी ओर अन्य चिकित्सा पद्धतियों में (आयुर्वेद को छोड़कर) रोग के लक्षणों का उपचार किया जाता है। रोग के लक्षण जिस भी अंग में पनपते है। उसी अंग के नाम से रोग का नामकरण कर दिया जाता है। उदाहरण के लिए सिर दर्द Headach होने को कमर दर्द Backach को आदि नामों से पुकारा जाता है।

आज के वैज्ञानिक युग में शिक्षित मानव बिना निदान के कोई भी उपचार देने को लोक सम्मत नहीं मानते इसलिए निदान को प्राकृतिक चिकित्सा में भी स्वीकारा है। परन्तु आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में निदान

प्रक्रिया मल, मूत्र, रक्त की जांच रसायनों द्वारा की जाती है। परन्तु प्राकृतिक चिकित्सा में मल, मूत्र, आकृति, नाखून आंखे, जीभ को देख कर किया जाता है। जो स्वयं चिकित्सक ही करता है। परन्तु रसायन द्वारा जांच का कार्य रसायन विशेषज्ञ द्वारा ही किया जाता है तथा उसकी रिपोर्ट पर डॉक्टर या चिकित्सक दवा देता है। इन्हीं मुख्य बिन्दुओं के द्वारा प्राकृतिक चिकित्सा में निदान निर्धारण करना हम इस इकाई में करेगें।

15.2 उद्देश्य

- आकृति द्वारा निदान का अध्ययन
- चेहरे द्वारा निदान
- हड्डियों द्वारा निदान
- आंखों द्वारा निदान
- बालों का निदान
- अंगुलियों द्वारा निदान
- नाखून द्वारा निदान
- त्वचा द्वारा निदान
- श्लेश्मा (थूक) द्वारा निदान
- जीभ द्वारा निदान
- मल द्वारा निदान
- पसीने द्वारा निदान
- मूत्र द्वारा निदान

15.3 निदान के अर्थ एवं परिभाषा

रोग की प्रारम्भिक अवस्था ही तीव्र रोग के रूप में आती है जो शरीर की जीवनीय शक्ति द्वारा जमा हुए विजातीय द्रव्य को बाहर निकालने की प्रक्रिया शुरू होती है इस प्रारम्भिक अवस्था में लगभग निदान स्पष्ट नजर आता है जो बुखार, जुकाम, खांसी, दस्त, निमोनिया एवं टायफाइड आदि के रूप में पनपता है यदि इस अवस्था को हमद दबा दे तो कालान्तर में मार्क रोग अथवा जीर्ण रोग के नाम से जाने जाते है। पंचमहाभूत का शरीर में अधिक या कम होना पाया जाता है प्रत्येक व्यक्ति के शरीर का आकार स्वभाव खानपान की आदतें खाद्य पदार्थों के खाद इत्यादि भी एक दूसरे से अलग होना इन्हीं पंचमहाभूत के कारण नियमित रूप से विजातीय द्रव्यों को शरीर से बाहर निकालने में असमर्थ हो जाती है तो विजातीय द्रव्य एकत्र होकर रोग का रूप धारण कर देते है। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान द्वारा किये जाने वाले निदान प्रक्रिया में एक्सरे अल्ट्रासाउण्ड जैसी कुछ ऐसी प्रक्रियायें है जो बार बार करने से शरीर को नुकसान भी करती है। प्राकृतिक चिकित्सा में मूलभूत सिद्धान्त है कि ''निदान की कोई आवश्यकता ही नहीं है''

आधुनिक चिकित्सा पद्धति में रक्त के नमूने द्वारा की जाने वाली जांच उस के नमूने के अनुसार ही होती है और उसी के आधार पर निदार कर उपचार शुरू कर दिया जाता है । परन्तु रक्त के नमूने लेने के बाद जांच होने से लेकर चिकित्सक तक पहुंचने के बीच के समय में रक्त के अन्दर अन्दर कीटाणुओं की मात्रा एवं अन्य जटिलताऐं बढ़कर शरीर के किसी दूसरे भाग में भी कुछ लक्षण बढ़ा देती है।

ऐसी स्थिति में जांच के आधार पर किया गया उपचार अधूरा रह जाता है जबकि प्राकृतिक चिकित्सा की निदान प्रक्रिया रोगी के सामने रहने के कारण क्षण प्रतिक्षण चलती रहती है साथ ही इसमें रोग का मूल कारण एकमात्र विजातीय द्रव्य को ही माना जाता है। और उस का उपचार भी विजातीय द्रव्य को शरीर से बाहर निकालने की प्रक्रिया ही है।

साधारणतया किसी समस्या के भारी। लक्षणों का अध्ययन कर उसके मूल कारकों में समझ लेना ही निदान कहलात है दूसरे शब्दों में हम कह सकते है कष्ट दायक लक्षणों का उभाड़ आने के कारण उत्पन्न हुई विकृति को समझना निदान कहलाता है प्राकृतिक चिकित्सा विधि में जो निदान किया जाता है नि:सन्देह उसे मौलिक कारण भी स्पष्ट हो जाता है। इसे रोगी के तत्कालीन स्वास्थ्य पर उसके खान पान रहन सहन अथवा उसकी विभिन्न प्रकार की आदतों का विश्लेशण भी साथ में किया जाता है। जो रोग मुक्ति के लिए सबसे बड़े निदान का कार्य करता है। क्योंकि इस पद्धति में जीवन शैली से जुड़ी सभी आदतों में बदलाव लाना उपचार की पहली आवश्यकता है। इसमें सुधार के पश्चात विजातीय द्रव्य को आगे बड़ने से रोकने की प्रक्रिया शुरू होती है। विजातीय द्रव्यों को शरीर में बढ़ने से रोककर शरीर में पहले से जमा हुए विजातीय द्रव्य को बाहर करने हेतु नियमित रूप से जीवनी शक्ति करती रहती है, ओर जब जीवनी शक्ति पूर्ण रूप से जमा होने की प्रक्रिया रोक नहीं पाती उस समय प्राकृतिक चिकित्सा की आवश्यकता पड़ती है। जो मल मूत्र पसीने, बलगम (थूक) एवं कार्बन-डाई-ऑक्साइड के रूप में श्वाीस द्वारा शरीर शुद्धिकरण करते हुए स्वास्थ्य प्रदान करने में सहायक सिद्ध होती है। वास्तव मे रोग के निदान का अर्थ है कि रोगी को अपनी पीडा के कारणों के बारे में सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त हो सके। इसके अभाव में रोगी का मन पूर्ण रूप से न तो रोग के लिए गंभीर हो पाता है और न ही चिकित्सक के प्रति उसका विश्वास दृढ़ हो पाता है। जिसे रोगी पर दिया जाने वाला उपचार का प्रभाव भी कम ही हो पाता है। जैसा कि गांधीजी ने लिखा है कि पंचमहाभूत चिकित्सा तब तक कारगर साबित नहीं हो सकती। जब तक पंचमहाभूत चिकित्सा के अतिरिक्त रामनाम (महत्व) तत्व का सम्मिलित होना अति आवश्यक है। जिसके प्रभाव से रोगी का विश्वास चिकित्सक में पूर्ण रूप से आ जाता है। तथा उसमें ठीक होने की आशा के रूप में सकारात्मक विचार उत्पन्न होकर के रोगों को ठीक करने में एक विशेष भूमिका प्रदान करते है।

विजातीय द्रव्य बाहर होने से शरीर पर शुद्धि प्रक्रिया पूर्ण होने पर जो निदान प्रकृति अपनाई गई थी उसको समझने के बाद रोगी स्वयं प्रशिक्षित हो जाता है जिसे मानसिक तौर पर समझने के पश्चात उसी जीवन शैली को अपनाकर अपने को स्वस्थ रख सकता है। आइये हम विभिन्न प्रकार के निदानों के विषय में अध्ययन करेंगे -

15.4 आकृति निदान, चेहरे द्वारा निदान

किसी के शरीर को देखकर ही रोग का निदान किया जा सकता है चीन में भी चिकित्सा पद्धति के अन्तर्गत रोग निदान के लिए रंगों को शरीर के अंगों का प्रतिनिधि माना गया है। उनके अनुसार

1काला रंग - यह रंग गुर्दे, मूत्राशय ग्रंथियों तथा काम वासना के असन्तुलन को प्रदर्शित करता है।

2लाल रंग - लाल रंग हृदय मस्तिष्क और रक्त वाहिकाओं को दर्शाता है।

3 सफेद रंग - सफेद रंग फेफडे, त्वचा और श्वास प्रणाली को प्रदर्शित करता है।

4 पीला रंग - पीला रंग पलीहा, अग्नाशय, पेट और लिम्फेटिक प्रणाली को प्रदर्शित करता है।

5 हरा रंग - हरा रंग यकश्त और नाडी संस्थान को प्रदर्शित करता है। उपरोक्त रंगों के अनुसार अंग विशेष में रोग के विषय में पता लगाया जाता है इससे अनुभव की आवश्यकता है धीरे धीरे विभिन्न प्रकार के रोगियों को प्रतिदिन देखने व परीक्षण से यह दक्षता हासिल की जा सकती है।

चेहरे द्वारा निदान

1	चहरे पर हीनता होना, पलकों का झुका झुका तथा आंखों का धंसा होना	क्षय रोग और तपेदिक रोग के लक्षण
2	प्राकृतिक रूप से चेहरे का हीन लगना	छाती के रोग और जोडो के दर्द होना।
3	चेहरे पर झेप और शर्मिलापन होना	शरीर में उर्जा की कमी होना
4	चेहरे पर थकान दिखना	कब्ज तथा तनाव होना
5	होठो का नीला पड़ना	हैजा रोग तथा यकृत के विकार होना
6	गर्भवती स्त्री के चेहरे का मुरझाना	गर्भ का गिरना तथा गर्भ स्राव अवस्था का होना
7	चेहरे का सूना सूना होना	शरीर में भयंकर रोग होने की सम्भावना
8	चेहरे का लाल तथा धब्बे वाला होना	खसरा तथा रक्त विकार होना
9	चेहरे का पीला पड़ना	पीलिया रोग तथा रक्त हीनता होना
10	चेहरे व पलको का सूजना	गुर्दों की सूजन होना
11	चेहरे का फीका पड़ना	तपेदिक रोग तथा ज्वर का पाया जाना
12	चेहरे का घबराहट का दिखना	मानसिक तनाव होना

13	मुंह से बार बार सांस लेना	श्वास संबंधित रोगों का होना तथा श्वास प्रणाली में विकार उत्पन्न होना
14	कान में खुजली होना	कान के रोग की सम्भावना
15	आंखों को बार बार खुजलाना	हृदय व यकृत के रोग

15.5 हड्डियों के द्वारा निदान, आँखों के द्वारा निदान

1	हड्डियों के जोड़ों को देखने से विकृति का अनुभव करना	गठिया रोग की उपस्थिति होना
2	हड्डियों के जोड पर सूजन व दर्द	संधिवात होना
3	हड्डियों का टेढा होना	कैल्शियम की कमी का सूचक है।
4	हड्डियों का सामान्य आकार से बढ जाना	हड्डियों के साथ यूरिक एसिड का जमना

आँखों के द्वारा निदान

1	आँखों का अन्दर धस जाना	श्वेत प्रदर, प्रमेह रोग, दुर्बलता रक्त स्राव का बढ़ना, स्वप्न दोष आदि
2	आँखों की सूजन	यकृत, गुर्दों व हृदय रोग के लक्षण है।
3	आँखों का उभरा हुआ लगना	सिर में रसौली होना
4	आँख की पुतलियों का फैलना	मोतिया बिन्द, मिर्गी तथा साप का काटे जाना
5	आँख की पुतलियों का सिकुड़ना	अफीम का नशा करना
6	आँखों का लाल होना	नजला, जुकाम, उच्च रक्तचाप, तेज बुखार, आंखों मं संक्रमण आदि
7	आँखों की झिल्ली सफेद होना	रक्त हीनता होना
8	आँखों के आगे अन्धेरा छाना	बेहोशी, सिरदर्द, चक्कर आना, रक्त संचार में अवरोध, हृदय धड़कन का बढ़ना आदि
9	आँखों के चारों ओर काले घेरे पड़ना	पेट के रोग होना
10	आँखों में दर्द होना	पित्त बढ़ना, हृदय रोग होना

11	आँखों में खुजली होना	लीवर तथा हृदय से संबंधित रोग
12	आँखों से धुंधला दिखना	खून की अशुद्धि पाई जाना
13	आँखों से एक का दो दिखना	लीवर, गुर्दों तथा पेन्क्रियाल में विकार होना तथा मधुमय रोग में शुगर बढना
14	सोने के बाद बच्चे की आँख का थोड़ा खुला रहना	लीवर में रक्त का स्राव ठीक ढंग से न होना तथा स्पलीन का खून कम बनाना
15	व्यस्क की सोने के बाद आँख खुली रह जाना	लीवर में स्पलीन के रक्त कम बनाने के कारण रक्त का संचार सही ढंग से न होना

15.6 बालों के द्वारा निदान, अंगुलियों द्वारा निदान

1	बालों का रूखा तथा शुश्क होना	गुदोर्ं का रोग
2	बालों का सफेद होना	नजला, जुकाम, दमा तथा श्वास संबंधित रोग
3	बल झड़ना	पिट्यूटरी की क्रियाशीलता का कम होना, सिर में रक्त का संचार कम होना
4	बालों का झड़ना तथा कमजोर होना	पाचन संस्थान की गड़बड़

अंगुलियों द्वारा निदान

1	अगुंलियों के जोड़ों में दर्द होना	संधिवात
2	अगुंलियों में विकृति	गठिया
3	अगुंलियों में पीलापन या लाली कम दिखना	रक्त अलापता

15.7 नाखूनों द्वारा निदान, त्वचा का निदान

1	बड़े नाखून होना	फेफड़े, हृदय और मस्तिष्क विकार
2	छोटे नाखून होना	आंतों के रोग होना तथा रक्त विकार। पैर व कमर के निचले हिस्से में दर्द आदि
3	पतले नाखून वाले	शरीर का कमजोर, दुर्बल सुस्त तथा हृदय रोग की सम्भावना

4	मुडे हुए नाखून	रीढ की हड्डी में विकार होना
5	नाखून का एक ओर कम और दुसरी और ज्यादा चौडा होना	संधिवात की सम्भावना
6	नाखूनो का झुर झुर तथा टुटना	कैल्शियम की कमी होना
7	नाखून का कांच की तरह टूटना	स्नायुविक रोग
8	नाखून पर पीले धब्बे होना	पीलिया तथा पाण्डु रोग होना
9	नाखून नुकीले तथा चपटे होना	लकवा तथा पक्षाघात
10	नाखून पर उभरी हुई धारिया	यकृत का विकार पाया जाना

त्वचा द्वारा निदान

1	त्वचा का रूखा होना	आंतों में विकार तथा शरीर में जल की कमी होना
2	त्वचा का गर्म होना	बुखार होना और शरीर में विजातीय द्रव्य का प्रकोप होना
3	त्वचा पर खुजली होना	छोटी तथा बड़ी आंत में खुश्की होना
4	त्वचा पर दाने तथा मुहासे होना	रक्त अशुद्धता तथा हामोर्नस का असन्तुलित होना
5	त्वचा पर काले धब्बे पड़ना	रक्त विकार तथा यकृत विकार होना
6	त्वचा पर पसीना ज्यादा आना	टी.बी. की बीमारी होना

15.8 श्लेष्मा (थूक) द्वारा निदान, जीभ द्वारा निदान

1	थूक का पतला होना	शरीर में पानी की अधिकता तथा सर्दी के कारण
2	थूक का बदबूदार होना	मुंह के तथा दांतों के रोग होना। इसके अतिरिक्त पाचन संस्थान में गडबड होना
3	थूक का पीपयुक्त होना	फेफड़ों में सूजन तथा फोडा होना
4	थूक का गाढा अधिक होना	पेट, गुर्दों तथा स्पलीन की कमजोरी
5	थूक चिकना होना	अपच तथा प्लीहा का विकार होना
6	थूक का हरा दिखना	पीलिया रोग या यकृत दारापित्त अधिक बनाना।
7	थूक का रंग नारंगी तथा मटमैला होना	श्लेश्मिक सन्निपात

8	थूक में झाग-झाग आना	वात विकार होना
9	थूक के साथ रक्त के कंठ आना	टी.बी. या फेफडो के रोग
10	थूक का चिपचिपा होना	ब्रोकाइटस

जीभ द्वारा निदान

1	जीभ का लाल रंग होना	शरीर में गर्मी बढ़ना तथा मूत्र विकार होना
2	जीभ का काला होना	टाइफाइड रोग का होना
3	जीभ की लाली कम होना	खून की कमी होना
4	जीभ का रंग सीसे जैसा होना	फेफडे तथा पक्वाश्य के रोग तथा हैजा होना आदि
5	जीभ का खुश्क होना	पानी की कमी होना
6	जीभ पर छाले होना	पाचन विकार होना तथा मूत्र में गर्मी और कब्ज होना
7	जीभ की जड़ में सफेदी का होना	आंतों के रोग तथा पाचन संस्थान में कमजोरी होना
8	जीभ का नीला होना	हृदय रोग तथा हृदय में विकार होना
9	जीभ पर दांतों के निशान होना	लीवर में विकार होना
10	जीभ का तीखा व नुकीला होना	मस्तिष्क विकार तथा स्नायुविक तंत्र का कमजोर होना
11	जीभ का टेढा या घुम जाना	पक्षाघात के कारण
12	जीभ का लम्बा होना	मस्तिष्क रोग
13	जीभ पर काली तहका जमना	चेचक रोग तथा यकृत रोग के कारण मृत्यु की सूचना
14	जीभ का सीसे जैसा होना तथा उस पर छाले पड़ जाना	मृत्यु होने की सम्भावना होना
15	जीभ का कांपना तथा लडखडाना	शारीरिक कमजोरी होना
16	जीभ सुन्न होना	स्नायु विकार होना

15.9 मल द्वारा निदान, पसीने द्वारा निदान -

मल की सही सही परिभाषा की बात की जाए तो कह सकते है कि जब एक निश्चित समय पर परवान जाते ही मल रस्सी की तरह बंध हुआ तथा साफ रंग का होता है तो वह स्वस्थ पुरूष के लक्षण है। परन्तु अनियंत्रित तथा आधुनिक जीवन शैली के चलते मल का सही रूप में शरीर से बाहर न आना कई रोगों का सूचक है।

मल का पतला, झागदार, श्लेष्मा युक्त, काला, पीला, लाल सख्त होना निश्चित रूप से बीमारियों का शरीर में होना माना जाता है। जैसे पीलिया, बावासीर, कब्ज, पेचिश, आव, अल्सर अथवा आंतों से संबंधित रोग होना।

पसीने द्वारा निदान -

शरीर की त्वचा पर असंख्य रोमछिद्र होते है। जिनके द्वारा शरीर के भीतर का विजातीय द्रव्य पसीने के रूप में शरीर से बाहर निकाल दिया जाता है तथा हमारे शरीर में विजातीय द्रव्यों का निष्कातसन्स्रोत भी है। किसी व्यक्ति को पसीना कम आता है या ज्यादा अर्थात् कितना आता है, सर्दी में भी पसीना आता है अथवा गर्मी में भी नहीं आता या बिल्कुल कम आता है, बहुत अधिक मात्रा में आता है, पसीना कपड़े पर दाग छोड़ता है, पसीना बदबुदार तो नहीं है पसीने से त्वचा पर विकार तो उत्पन्न नहीं होते खुजली तो नहीं होती इत्यादि विभिन्न रोगों के सूचक है। शरीर में पसीना ज्यादा आना । शरीर की अत्यधिक उर्जा का हास होना है तथा शरीर में विजातीय द्रव्य जैसे यूरिक एसिड आदि का अधिक मात्रा में होना भी हो सकता है।

15.10 मूत्र द्वारा निदान

किसी भी व्यक्ति द्वारा जल की जो मात्रा ली जाती है उसके अनुसार पेशाब के रूप में उसका शरीर से निकल जाना स्वास्थ्य लक्षणों का संकेत है तथा इसी के आधार पर ही हम यह जान सकते है कि उसे कौन से रोग हो सकते है अथवा किस रोग के आने के संकेत मिल रहे है।

पेशाब की मात्रा, उसका रंग, वेग, उसका गाढ़ापन, मिश्रण, गन्ध आदि द्वारा विभिन्न रोगों की जानकारी का सरलता से ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। जैसे पैशाब का पीला होने पर लीवर रोग अथवा पीलिया रोग की संभावना होना माना जाता है। पेशाब में जलन या दर्द होना पथरी अथवा मूत्रमार्ग में संक्रमण होना पाया जाता है। पेशाब में एल्ब्यूयिन आना, पेशाब पर चीटी आ जाना, मधुमेह जैसे रोग के लक्षण हे। इसके अतिरिक्त मूत्र द्वारा रोग निदान के लिए मूत्र की जांच रासायनिक प्रयोगशालाओं में विशेषज्ञों द्वारा भी कराई जाती है। जिससे रोग का ज्ञान प्राप्त कर उसका सही सही उपचार किया जा सके।

15.11 सारांश

इस इकाई में हमने पढ़ा कि शरीर के विभिन्न अंगों पर उभरने वाले प्रभावों एवं लक्षणों को देखकर रोग का निदान कर सकते है। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में किसी निदान हेतु पैसा व समय दोनों ही लगते है जबकि प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा किया गया निदान स्वयं चिकित्सक द्वारा तथा बिना समय और धन के ही किया जा सकता है। निदान की जानकारी रोगी के ही देने से उसकी मानसिक संतुष्टि भी हो जाती है। लक्षणों का सामान्य ज्ञान इतना सरल है कि कोई भी व्यक्ति बिना किसी विशेष योग्यता के भी घर में स्वयं निदान जान कर तुरन्त चिकित्सा सहायता के लिए चिकित्सक के पास पहुंच जाता है। आधुनिक जीवन

शैली से उत्पन्न होने वाले रोग ओर समय के अभाव के कारण आज जांच का समय निकालना भी कठिन हो गया है। ऐसे में इस सरल निदान का महत्व ओर अधिक बढ़ जाता है।

15.12 बोधात्मक प्रश्न

1 निदान का अर्थ एवं महत्व को समझाते हुए मल मूत्र एवं पसीने द्वारा निदान कैसे किए जाता है।

2 आकृति निदान के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालिए।

3 जिव्हा एवं नाखून द्वारा निदान के विभिन्न बिन्दुओं का विवेचन कीजिए।

15.13 संदर्भ ग्रंथ सूची

- आकृति से रोग की पहचान - डॉ. लुई कुने
- प्राकृतिक आर्युविज्ञान - राकेश जिन्दल